स्थायी ग्राहकों की क्रमशः नामावली

२८ सांकलचंदजी पुखराजजी मझगॉव बंबई २९ हीराचंदजी पता ग्रा० नं० (२८ ३० पूनमचंदजी पता ग्रा० नं० (२८) ३१ वरदीचंदजी पता ग्रा० नं० (२८) ३२ खींवराजजी भेराजी मझगॉव बंबई ३३ फौजमलजी देवीचंदजी मझगॉव बंबई ३४ जेठमलजी कानमलजी सातार पाखड़ी बंबई (१०) ३५ दलीचंदजी मगनीरामजी सादड़ी ३६ मोनराजजी नरसिंहजी हरजी गुड़ा बालोतां ३७ अचलदासजी जीतमलजी ४९ दागीना बाजार बंबई (२) ३८ हीराचंदजी चुन्नीलालजी खारा कुआ बंबई (२) ३९ हिम्मतमलजी मेसमलजी ११६५ रविवार पेठ पूना ४० बस्तीमलजी अचलदासजी ६५९ रविवार पेठ पूना ४१ गुलाबचंदजी चतरींगजी ११४६ रविवार पेठ पूना ४२ हंसाजी जीताजी ११३९ रविवार पेठ पूना ४३ राम भरोसे ११६० रविवार पेठ पूना ४४ लालचंदजी रतनचंदजी सोलापुर बाजार पूना केम्प ४५ रामचंदजी ताराचंदजी सोलापुर बाजार पूना केम्प ४६ पुखराजजी थानमलजी सोलापुर बाजार पूना केम्प ४७ हीराचंदजी रतनचंदजी धोबीतालाव बंबई (२) ४८ नथमलजी रतनचंदजी धोबीतालाव बंबई ४९ जीवराजजी वीरचंदजी एलफिस्टन रोड बंबई (१३) ५० पुखराजजी गुलाबचंदजी एलफिस्टन रोड बंबई ५१ कालूरामजी नाथूलालजी आदेराव मार्मूदा ५२ जसराजजी भगाजी एलफिस्टन रोड बंबई (१३) ५३ किशनाजी कानजी केडल रोड आगर बाजार बंबई (२३) ५४ मूलचंदजी जीताजी ६ दागीना बाजार बंबई (२) ५५ नगराजजी मेहता गेमावतों का बास बाली मारवाड़ ५६ मुलतानमलजी राजमलजी ५९ दागीना बाजार बंबई (२) ५७ फूडाजी भीखाजी नई हनुमान गली बंबई (२) ५८ गुमानमलजी हिम्मतमलजी चंपागली बंबई (२) ५९ श्री [illegible] पुस्तकालय ब्रह्मपुरी जोधपुर (शेष तीसरे ट्रेक्ट में देखिये)

ग्राम सुधार कैसे हो ?
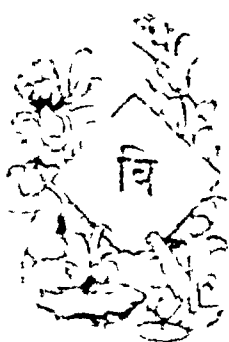
गड़े दूध को मथने से मक्खन नहीं निकलता यह एक सर्वमान्य सच्चा अनुभव है। पर ऐसे समय में चतुर स्वामी का धर्म है कि दूध जो बिगड़ा सो बिगड़ा उसे आगे बिगड़ने से तो बचाये। ऐसा न हो उसकी दुर्गन्ध से सारा घर भर जाये और अन्य खाद्य पदार्थों में भी दुर्गन्ध मय खटास उत्पन्न हो जाये।

बिगड़े मक्खन की भांति हमारे ग्राम्य-जीवन का शरीर भी बिगड़ चला है समाज के वे करोड़ों गूंगे जो अपने कड़ाचूर परिश्रम से मर खप कर दूसरों का पेट पालते हैं स्वयं निस्सहाय, नंगे, नीच और मरभुखे हैं। रहने को घर नहीं, खाने को दाने, कौड़ी कौड़ी को तरसना पड़ता है। सांसारिक बोझ से गर्दन झुकी हुई है। पेट कमर से मिल अंतड़ियों से बात कर रहा है: कमर मुड़ कर दोलड़ हो चुकी है और हाथ पैर कभी के जवाब दे चुके हैं फिर भी ज्येष्ठ की खिलखिलाती दुपहरी और पूष-माह का कड़कड़ाता शीत इन बूढ़े तपस्वियों को खेत में जाने से नहीं रोक सकते।

ज़माने ने करवट बदली। ग्राम जीवन ने भी नया रूप

धारण किया। जहां पहिले भीमकाय अड़ंत बलवान पुरुषों की टोली मिलती थी वहाँ अब एक भी पुरानी हड्डी नज़र नहीं आती। फ़ैशन के भूत ने यहां भी अपना रंग चढ़ाना आरम्भ कर दिया। यानि एक तो कड़वी थी फिर नीम चढ़ी। भगवान् ही रक्षक है। जिस सोने की खान से अग्नि में तपने वाले निखरे सोने के निकलने की आशा थी उससे अब निकलती हैं रंग बिरंगी पतली दुबली तितलियां जो पर निकलते ही घोंसला छोड़ने की फ़िक्र में रहती हैं! कैसा विपरीत परिवर्तन है! कौन कह सकता है कि बम्बई कलकत्ता अपने प्राचीन गांवों के खिंचे हुए सत नहीं हैं। मेरी समझ में तो नवीन सभ्यता के सत खिंच कर बचे खोप का नाम ही 'ग्राम' है। प्रथम तो गांवों मे पढ़े लिखों की संख्या ही उंगली पर गिनने लायक है पर कहीं भाग्य से दस पांच मिल भी गये तो उनके लिये 'मुकदमे बाज़' 'अधकचरे बैरिस्टर' और 'नीम हकीम' जैसे नाम ही उपयुक्त होंगे। ये अन्धों में काणे सरदार ग्राम की सुखमय शान्ति को भंग करने मे और भी सहायक होते हैं!

देश के ९० प्रति सैकड़ा पुरुष, जिनमें ७५ प्रति सैकड़ा हमारे अन्नदाता हों, यदि इस प्रकार आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक पतन को पहुंच गये हों, तो उस समय हमारा एक नागरिक की हैसियत से क्या कर्तव्य है? यह एक मोटा सा प्रश्न हमारे सामने आता है। क्या इस शुष्क और मृत-प्राय जनता से हमारा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है? क्या शिक्षित समाज की उधर से उदासीनता उनकी सामाजिक कुरीतियों, भयंकर गरीबी और अज्ञानता

है। इस अभाव का हमारे चरित्र पर भी गहरा असर पड़ता है।

यह तो रही केवल अक्षर-ज्ञान की बात, सार्वजनिक शिक्षा के अभाव ने तो और भी समस्या को जटिल बना दिया है। रूढ़िवाद, कट्टरपन्थी—संकुचित—विचार, अविवेक, तर्कहीनता और परतन्त्रता इसके ज़हरीले फल हैं। इस अभाव के कारण ही ग्रामीणों में न अपनी सामर्थ है न उच्च अभिलाषा। वे यहां तक गिर चुके हैं कि घोर अत्याचार का विरोध भी करना नहीं जानते। पतितों के समस्त प्रधान गुण उनके घर डट कर अगड़ाई तोड़ रहे हैं। अर्थात् अपने से दुर्बल को सताना वा अनुचित व्यवहार करना, अन्याय वा अपकर्म द्वारा लाभ उठाना, उन्नति का कोई उपाय न सोचना और बताये हुए सुन्दर ढंग के अनुसार आचरण न करना इत्यादि। उन्हें अपना भविष्य निराशामय ही नहीं वरन् बिलकुल अन्धकार-मय प्रतीत होता है। संक्षिप्त मे बात यह है कि वास्तविक शिक्षा के इस अभाव में उनके भारतीय जीवन का आदर्श ही गिर चुका है। फल यह निकला कि उनकी रहन सहन नीची श्रेणी की हो गई और उत्पादक शक्ति घट कर नहीं के बराबर रह गई। यह देश व्यापी प्रभाव इतना बढ़ा कि ९० प्रतिशत मनुष्यों की निम्न रहन-सहन और अल्प आय के कारण सारा राष्ट्र ही भिखमगों, दरिद्रों, गवारों और मूर्खों का प्रतिनिधि बन गया। राष्ट्र की जब इतनी बड़ी संख्या दरिद्रता के घोर सागर में हिलोरें ले रही हो तब १० प्रतिशत सभ्य नागरिक (!) कहलाने वाले भद्र पुरुष कहाँ तक

हाथ पैर पीट सकते थे । कुछ प्रयत्न किये भी गये मगर सब बेकार। बस—' मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की ।

इसके पश्चात् क्या हुआ ? नीची श्रेणी की रहन सहन ने उत्पादन शक्ति तो कम कर ही दी दूसरा बड़ा भारी गज़ब यह ढाया कि शक्ति को असंगठित कर दिया । साथ ही कमज़ोर, कमसमझ और अयोग्य लोगों की संख्या बढ़ी जिनमें न दिल है न दिमाग न शक्ति है न साहसः न उच्च आकांक्षा है न उच्च शिक्षा। गरज़ यह है कि थोड़े समय में ही राष्ट्र का वह नंगा रूप सम्मुख आया जो अब भी अपना विकट रूप धारण किये हुए है ।

आप ऊब कर मुझसे प्रश्न करेंगे कि इस समस्त राम कहानी से मेरा अभिप्राय क्या है ? बात यह है कि यदि अन्य सब सम्बन्धों को छोड़ कर भी हम केवल नागरिकता के नाते ही ग्राम-जीवन की इस कठिन समस्या पर गंभीरता के साथ विचार करे तो सर्व प्रथम हमारे सम्मुख यही प्रश्न उपस्थित होते हैं—आधुनिक ग्राम-जीवन क्या है? मर्ज़ का कारण क्या है ? अब तक मर्ज़ किस रूप में है? क्या रोगी का किसी प्रकार छुटकारा हो सकता है ? पहिले तीन प्रश्नों पर मैंने पिछले पन्नों में संक्षिप्त में विचार किया है। अब केवल चौथा प्रश्न सम्मुख है। वह है—ग्राम सुधार कैसे हो? कारण ज्ञात होने पर रोग को दूर भगाने के साधन सोचने स्वाभाविक ही हैं क्योंकि मृतशैय्या पर पड़े ग्राम-जीवन के इस शव के सम्बन्ध में केवल दो विचार धारायें ही उत्पन्न हो सकती हैं । या तो इन ग्रामों का

है। इस अभाव का हमारे चरित्र पर भी गहरा असर पड़ता है।

यह तो रही केवल अक्षर-ज्ञान की बात, सार्वजनिक शिक्षा के अभाव ने तो और भी समस्या को जटिल बना दिया है। रूढ़िवाद, कट्टरपन्थी—संकुचित—विचार, अविवेक, तर्कहीनता और परतन्त्रता इसके ज़हरीले फल हैं। इस अभाव के कारण ही ग्रामीणों में न अपनी सामर्थ है न उच्च अभिलाषा। वे यहां तक गिर चुके हैं कि घोर अत्याचार का विरोध भी करना नहीं जानते। पतितों के समस्त प्रधान गुण उनके घर डट कर अंगड़ाई तोड़ रहे हैं। अर्थात् अपने से दुर्बल को सताना वा अनुचित व्यवहार करना, अन्याय वा अपकर्म द्वारा लाभ उठाना, उन्नति का कोई उपाय न सोचना और बताये हुए सुन्दर ढंग के अनुसार आचरण न करना इत्यादि। उन्हें अपना भविष्य निराशामय ही नहीं वरन् बिल्कुल अन्धकार-मय प्रतीत होता है। संक्षिप्त मे बात यह है कि वास्तविक शिक्षा के इस अभाव में उनके भारतीय जीवन का आदर्श ही गिर चुका है। फल यह निकला कि उनकी रहन सहन नीची श्रेणी की हो गई और उत्पादक शक्ति घट कर नहीं के बराबर रह गई। यह देश व्यापी प्रभाव इतना बढ़ा कि ६० प्रतिशत मनुष्यों की निम्न रहन-सहन और अल्प आय के कारण सारा राष्ट्र ही भिखमंगों, दरिद्रों, गवारों और मूर्खों का प्रतिनिधि बन गया। राष्ट्र की जब इतनी बड़ी संख्या दरिद्रता के घोर सागर में हिलोरें ले रही हो तब १० प्रतिशत सभ्य नागरिक (!) कहलाने वाले भद्र पुरुष कहाँ तक

हाथ पैर पीट सकते थे । कुछ प्रयत्न किये भी गये मगर सब बेकार। बस—' मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की '।

इसके पश्चात् क्या हुआ ? नीची श्रेणी की रहन सहन ने उत्पादन शक्ति तो कम कर ही दी दूसरा बड़ा भारी ग़ज़ब यह ढाया कि शक्ति को असंगठित कर दिया । साथ ही कमज़ोर, कमसमझ और अयोग्य लोगों की संख्या बढ़ी जिनमें न दिल है न दिमाग़: न शक्ति है न साहस; न उच्च आकांक्षा है न उच्च शिक्षा। ग़रज़ यह है कि थोड़े समय में ही राष्ट्र का वह नंगा रूप सम्मुख आया जो अब भी अपना विकट रूप धारण किये हुए है।

आप ऊब कर मुझसे प्रश्न करेंगे कि इस समस्त राम कहानी से मेरा अभिप्राय क्या है ? बात यह है कि यदि अन्य सब सम्बन्धों को छोड़ कर भी हम केवल नागरिकता के नाते ही ग्राम-जीवन की इस कठिन समस्या पर गंभीरता के साथ विचार करें तो सर्व प्रथम हमारे सम्मुख यही प्रश्न उपस्थित होते हैं—आधुनिक ग्राम-जीवन क्या है ? मर्ज़ का कारण क्या है ? अब तक मर्ज़ किस रूप में है ? क्या रोगी का किसी प्रकार छुटकारा हो सकता है ? पहिले तीन प्रश्नों पर मैंने पिछले पन्नों में संक्षिप्त में विचार किया है। अब केवल चौथा प्रश्न सम्मुख है। वह है—ग्राम सुधार कैसे हो ? कारण ज्ञात होने पर रोग को दूर भगाने के साधन सोचने स्वाभाविक ही हैं क्योंकि मृतशैय्या पर पड़े ग्राम-जीवन के इस शव के सम्बन्ध में केवल दो विचार धारायें ही उत्पन्न हो सकती हैं । या तो इन ग्रामों का

अस्तित्व ही मिट जाना चाहिये या फिर उनमें किसी प्रकार नव-जीवन संचार हो । हमारी समझ में दूसरी विचार धारा पर विचार करना ही श्रेयस्कर सिद्ध होगा ।

हां तो, फिर पिछले कारणों को देख कर हमें क्या करना चाहिये कि जिससे ग्रामों के समस्त अहितकर मार्ग बन्द होकर एक स्वच्छ विस्तरित सुखदायक मार्ग उनके सम्मुख प्रकट हो जाये । मेरी समझ में उन्हे स्वावलम्बी बना कर उनमें आत्मनिर्भरता लानी अत्यावश्यक है । इसका उपाय क्या है-'ग्राम संगठन'-केवल 'ग्राम संगठन' ।

'ग्राम संगठन' पर बड़े बड़े लेक्चर झाड़ने से, बैठे बैठे लम्बी चौड़ी योजना बनाने से, उनके गन्दे वातावरण को कोसने भर से काम नहीं चलेगा । वरन् ग्रामीणों का मनो वैज्ञानिक अध्ययन करके, उन जैसा गंवार बनकर, उनकी कठिनाइयों का अनुभव करके, उनके दुख मे शरीक होकर ही कुछ प्रयोगात्मक ठोस कार्य्य किया जा सकता है आप झल्ला कर पूछेंगे इस ठोस कार्य का भी तो कुछ कार्य्य क्रम होगा ? बेशक, होगा क्यों नहीं । निज बुद्धिनुसार मै इसी कार्य्य-क्रम का ब्योरा देता हूं । ब्योरा देने के पूर्व भारतीय-ग्राम-दीनता के मोटे मोटे कारणों का निर्देश करने के साथ ग्रामों के मुख्य व्यवसाय कृषि की ओर दृष्टि डाल लेना भी आवश्यक ही नहीं अत्यावश्यक है । कृषि की हीनता के मुख्य कारण दो हैं—अभाव (Want) और अपव्यय (Waste) । एक ओर निपुण संगठित आयोजना की कमी, परिश्रम और मूलधन मे संगठन की कमी और

आर्थिक परिमाण में खेती के रकबे के न होने की कमी है। दूसरी ओर बर्बादी है। असंगठित परिश्रम और दकियानूसी औज़ारों के कारण समय और शक्ति की बर्बादी, परिश्रम-शक्ति की बर्बादी प्रस्तुत सामग्री का सदुपयोग न करने के कारण सामग्री की बर्बादी। इस प्रकार इधर बर्बादी उधर बर्बादी चारों ओर बर्बादी ही बर्बादी है। तभी तो ग़रीब किसान की आत्मा चारों ओर की चिन्ताओं से ऊब कभी कभी धीमे स्वर मे गुनगुनाया करती है—

'एक मेरी जान है और गम के नश्तर सैकड़ों'।

तो इन पूर्व कथित समस्त रोगों की अमोघ औषधि क्या हो सकती है? वही पूर्व कथित 'ग्राम संगठन'। ग्राम संगठन में होगा क्या? 'शिक्षा' और 'सहयोगी संस्थाओं' का प्रचार। प्रचार-योजना इस प्रकार होगी:—

(अ) शिक्षा—आदर्श शिक्षापद्धति के कुछ मूल मुख्य सिद्धान्त ये हैं—

(१) सर्व प्रथम पता लगाया जाये कि विद्यार्थी की रुचि किस विषय में और किस मात्रा में है? उसकी रुचि के अनुसार ही शिक्षा दी जाये। ठोक पीट कर वैद्यराज बनाने का फल प्रत्यक्ष है।

(२) दूसरी अवस्था मे विद्यार्थी की रुचि का पूर्णतः विकास हो अर्थात् अपने विषय का वह पूर्ण पंडित हो। यदि प्रथम अवस्था में अक्षर ज्ञान से लेकर भाषा, गणित, भूगोल प्राकृतिक निरीक्षण और स्वास्थ्य शास्त्र आदि का

कुछ प्रारम्भिक ज्ञान आवश्यक है तो दूसरी अवस्था में विषय विशेष की पूर्ण जानकारी हो; पर इसके भी साथ में किसी हस्त कौशल वा कारीगरी का काम सिखाना अत्यावश्यक है। जैसे बाग़बानी, लकड़ी का काम, कांच का काम इत्यादि।

(३) विद्यार्थी जो कुछ सीखें उसमें मौलिकता का विकास हो। ऐसा न हो कि वे लकीर के फ़कीर बन आवश्यक अध्ययन बन्द करदें। उनमें ऐसा चाव उत्पन्न हो कि वे प्रत्येक कार्य्य की अच्छाई बुराई को देख अन्तिम फल निकालना सीख जायें। आत्म विश्वास के साथ तुलनात्मक अध्ययन इस सिद्धान्त की जान समझनी चाहिये।

(४) शिक्षा कोरी किताबी न हो वरन् उससे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास हो।

(५) स्थायी और आवश्यक प्रभाव शिक्षा का यह पड़े कि छात्र अपने आप को आप समझने लगे। मैं क्या हूं? दूसरे क्या हैं? क्या मैं भी उन्नति कर सकता हूं?—ये विचार उसके हृदय में उत्पन्न होने आवश्यक हैं। स्वाभिमान और देश-प्रेम आदर्श शिक्षा का आदर्श सिद्धान्त है।

शिक्षा की इस पद्धति का फल प्रत्यक्ष है—उच्च जीवन और उच्च रहन सहन, इसके अतिरिक्त उनको वही शिक्षा दी जाये जो उन्हें सच्चा खेतिहर बना सके। सच्चे खेतिहर को निम्नांकित बातें जाननी आवश्यक हैं.—

१ खेती का नवीन और प्राचीन तुलनात्मक ढंगः—

यद्यपि खेती के बहुत से प्राचीन नियम बड़े अच्छे और उपयोगी हैं तो भी उनमें कुछ दोष आने से वे इस समय इतने लाभदायक सिद्ध नहीं हो रहे हैं जितने कि होने चाहिये थे। क्यों न ऐसे कुछ नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों का पूर्ण अध्ययन किया जाये जिनसे हमें थोड़े समय में अधिक उपज की आशा है। भारतीय हल ही लीजिये; उनकी अपेक्षा अंग्रेजी हल कहीं अधिक मिट्टी ऊपर उलटते हैं। क्यों न हम उन हलों का प्रचार करें ? वा क्यों न वैसे ही हल भारतीय ग्रामीणों के द्वारा तैयार करा लिये जायें। दूसरी बात इस सम्बन्ध में खाद का उपयुक्त प्रयोग है। यदि कह दिया जाये कि हमारे ग्रामीण महापुरुष न तो अभी खाद के असली तत्व को ही समझे हैं, न वे भिन्न भिन्न प्रकार से खाद बनाना ही जानते हैं, तो कोई अत्युक्ति न होगी !

(२) व्यवहारिक ज्ञान——हम कौन हैं ? हमारी स्थिति क्या है ? किस प्रकार हम अपनी स्थिति सुधार सकते हैं ? ये शायद ऐसे प्रश्न हैं जो भारतीय किसान को स्वप्न में भी नहीं सूझते ! सूझें भी कहां से ? बीमारी, मालगुज़ारी, ज़मींदार की चापलूसी ही उन्हें करवट नहीं लेने देतीं। करें क्या स्थिति ही ऐसी है। स्वास्थ्य रक्षा, सफ़ाई, गृह धन्धे इत्यादि वे 'भोलों के भगवान' के आधार पर छोड़ते आये हैं और छोड़ते हैं। यह है उनके व्यवहारिक ज्ञान का कच्चा चिट्ठा !!!

आदर्श-शिक्षा के द्वारा क्या उपर्युक्त ज्ञान-प्रचार

नितान्त और शीघ्र वांछनीय नहीं है ? क्या उपर्युक्त बातों को भाग्य के भरोसे आगे को धकेल कर हमारे भोले अन्नदाता बीसवीं शताब्दि के भयंकर संघर्ष में क्षण भर भी ठहरने का साहस कर सकते हैं ? आये, और कोई माई का लाल इस प्रश्न का उत्तर दे ।

आप पूछेंगे—तो किया क्या जाये ? आइये सुनिये:—

एक 'शिक्षा—विभाग' खोला जाये उसके तीन उपविभाग हों —

(१) शिक्षा—परिषद्—

क—प्रारम्भिक ग्राम पाठशालाएँ आवश्यकतानुसार खुलवाई जायें। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य्य कर दी जाये। ग्राम निवासियों को शिक्षा भार प्रतीत न हो अर्थात् प्रारम्भिक शिक्षा निशुल्क हो । साथ ही दीन हीन विद्यार्थियों की आवश्यक आर्थिक सहायता की जाये । निर्धनों की जांच परिषद् के सदस्य स्वयं करें और तब छात्रवृत्ति द्वारा उन्हें उत्साहित करें।

ख— लड़कियों के लिये अलग पाठशालाएँ हों जिनमें अक्षर ज्ञान के साथ घर गृहस्थी के कामों का व्यवहारिक ज्ञान आवश्यक हो। सीना-पिरोना, खाना पकाना घरेलू स्वच्छता इत्यादि इनमें मुख्य और अनिवार्य्य विषय हों ।

ग—अपढ़ नवयुवकों के लिये रात्रि-पाठशालाएं खोली जायें। इनमें भाषा और गणित पर ही अधिक ज़ोर दिया जाये। इस प्रकार पढ़े हुए स्नातकों से पाठशाला से निकलते

समय इस बात का वचन लिया जाये कि वह प्रति वर्ष कम से कम अपने जैसे दो निरक्षरों को साक्षर बना देंगे. इस विषय में उनका 'वचन' ही उनके कार्य्य वा विश्वास का प्रमाण होगा अन्य दबाव इत्यादि की आवश्यकता नहीं है।

घ—बड़े बड़े विश्वविद्यालय भीमकाय नगरों में न खोल ग्रामों में ही खोले जायें। इससे कई लाभ होंगे—एक तो गांव वालों के सम्मुख शिक्षा का उच्च आदर्श उपस्थित होगा. दूसरे उन्हें उच्च शिक्षा मंहगी न पड़ेगी और तीसरे ग्रामीण और नागरिक छात्र एक ही छात्रालय में रहना सीखेंगे।

ङ—कला कौशल वा दस्तकारी को अक्षर ज्ञान के साथ अनिवार्य्य कर दिया जाये। कुछ न कुछ तो वे इससे लाभ उठायेंगे ही। इस विषय में प्रवीण स्नातकों को परिषद् स्थान (वा कोई काम) दिलवाने का भरसक प्रयत्न करे या उनकी बनाई वस्तुओं को बिकवाने का प्रबन्ध हो।

(२) कृषि परिषद्

क—भिन्न भिन्न प्रकार से उन्हें नवीन और प्राचीन समय में खेती करने के ढंगों का अन्तर बताया जाये। बाइस्कोप, छ माही वा वार्षिक प्रदर्शिनी और छोटे छोटे फ़ार्म इस अन्तर को समझाने में सहायक होंगे।

ख–चक प्रथा अनिवार्य्य कर दी जाये। पानी के अभाव में ट्यूब वेल (सिंचाई के कुएं) गलवाये जायें। राज से सहायता के लिये प्रार्थना की जाये।

ग—एकसी ज़मीन में भिन्न भिन्न प्रकार की फ़सलें बोने की प्रथा को रोका जाये, यह भी आवश्यक नहीं कि प्रत्येक किसान भिन्न भिन्न प्रकार की फसलें उगावे ही। यदि केवल एक प्रकार के अनाज या खाद्य पदार्थ की उपज अन्य पदार्थों की अपेक्षा लाभकारी सिद्ध होती है तो क्यों न ज़मीन की प्रवृति के अनुकूल उसीकी उत्पत्ति प्रचुर रूप में की जाये?

घ—चराई के लिये चरागाह छोड़ी जायें। उनमें किसान घरेलू ओसर गाय वा भैंस, बैल बछड़े, कटड़े इत्यादि चरने को छोड़ें। इस प्रकार किसान को कई लाभ होंगे—घर का घी दूध होगा, हल के लिये घर के बैल होंगे, प्रति वर्ष की ख़रीद, फरोख्त (लेन-देन) से बच किसान आर्थिक संकट की दल दल से बचा रहेगा। नहीं तो लेनदेन की यह दीमक उसकी छोटी सी आर्थिक दीवार को महीनों में चाट कर साफ़ कर देगी।

ङ—पूसा जैसे आदर्श फ़ार्म खोले जायें। उनके द्वारा किसानों को जुताई, बुआई, सिंचाई, खाद, बीज, खलिहान, इत्यादि का आदर्श व्यवहारिक ज्ञान कराया जाये। कुछ ऐसे कर्मशील अध्यापक रक्खे जायें जो अपने कृषि सम्बन्धी अनुभवों को सर्व साधारण तक पहुँचाने के लिये ग्रामों में भ्रमण करें और व्याख्यान वा प्रदर्शन द्वारा प्रत्येक बात समझायें।

च—कुछ अनुभवी पुरुषों की एक ऐसी परिषद् बनाई जावे कि जिसका काम केवल खाद सम्बन्धी अनुभवों और

आविष्कारों का प्रचार हो। यहीं तक नहीं वरन् वैज्ञानिक रीति से तैयार की ऐसी कुछ प्रयोग शाला भी खोली जाये।

(३) व्यवहारिक वा वाह्य-ज्ञान-सम्बन्धी परिषद्-

इस परिषद् की बड़ी भारी ज़रूरत है। क्योंकि अपने व्यवसाय सम्बन्धी साधारण व्यवहारिक ज्ञान से भी जो पुरुष परिचित नहीं वह क्या खाक इस चलती पुरज़ी दुनिया में सफलता प्राप्त कर सकता है? एक मोटी सी बात उदाहरण स्वरूप लेते है--किसी भी पदार्थ की उपज करने वाले को इस बात का जानना आवश्यक है कि उस वस्तु की कहां पर कितनी मांग है? उसके आस पास उसकी खपत कैसी है? अब तक उत्पन्न किये हुए पदार्थों में कौन से पदार्थ में अधिक लाभ रहा और क्यों? 'क' एक किसान है जो ऊपर की समस्त बातों का कच्चा चिट्ठा रखते हुए अपना काम करता है फल यह होता है कि वह समय देखकर अपना ढंग बदल देता है और पूरा लाभ उठाता है। दूसरा किसान 'ख' है जिसको इन बातों का लेश भी ध्यान नहीं और न वह व्यापारियों वा साहूकारों की कुटिल चालों को ही समझता है। फ़सिल में उत्पन्न हुए अनाज को खलिहान से उठाते ही, पिछले किसान को, आवश्यकता के कारण कहिये वा अज्ञानता के, यही विचार सूझता है कि किसी तरह भी हो इस अनाज को अभी बेच दिया जाये। उसके लिये मँहगे वा सस्तेपन का प्रश्न कुछ मूल्य ही नहीं रखता। आवश्यकता से दबा यह 'भोला भगवान' अपने गाढ़े पसीने की कमाई को चुंगी, और धर्म खाते के 'चूंगरों' की मद में देखते ही देखते दिन धौले लुटा कर घर आ बैठता

है ! आप ही सोचिये, कि सब्ज़ी मंडी की एक सड़ी सी मालिन भी अपनी धेले की चीज़ का मूल्य अपने आप कहती है, परन्तु साधुता के इस देवता को अपने माल के भाव के सम्बन्ध में एक शब्द भी कहने का भान नहीं। हां तो, परिषद् का काम होगाः—

(१) खाद्य पदार्थों के बाज़ारी भाव से सर्व साधारण को सूचित करना और बिकवाने का प्रबन्ध करना। (२) प्रति सप्ताह एक सम्मेलन करके अन्न की मांग, खपत, उपज, भाव इत्यादि की समुचित सूचना देना। (३) कम से कम प्रत्येक नई, फ़सिल के नये अनाज का भाव कुछ समय के लिये सरकार से नियत करने की प्रार्थना करना वा अन्य लाभदायक बातों से राज कर्मचारियों को सूचित करना। (४) बटाई इत्यादि ज़मींदार को साथ लेकर अपनी सरदता में कराना। (५) व्यवहारिक ज्ञान सम्बन्धी साहित्य वितरण करना वा चलते फिरते पुस्तकालय खुलवाना। सामयिक साधारण से समाचार पत्र भी हों। साहित्य की यह बैठक रात्रि के समय हो तो अच्छा है। (६) दूसरे देशों के किसानों के समाचार, किस्से, कार्य्य इत्यादि का ब्योरा उनके सम्मुख रखना।

(आ) सहयोग समितियां—इतनी शिक्षा के पश्चात् ही वे सहयोग का तत्व समझ सकेंगे। तो अब आवश्यक हुआ कि हमारे पूर्व-प्रचलित सहयोगमय जीवन का, जिसको कि अब हम (कोआपरेटिव लाइफ़) के नाम से पुकारते हैं, पुनरुद्धार हो। तभी उत्थान होगा। इस जीवन का सार है

सहयोग समितियां। ये सहयोग समितियां ग्राम को आर्थिक संकट की गहरी खाई में पड़ने से बचायेंगी। ग्रामीणों की निम्नांकित फ़जूल खर्ची उनको कगाल बनाये हुए हैः-क-आगे आने वाली फसिल पै उधार खाना और फिर एक सेर के स्थान पर दो सेर वस्तु देना। ख—मुक़दमे बाज़ी का भयंकर भूत सदैव इनके सिर सवार रहता है। रुपया पानी के भाव लुटता है। ग—"करिये भैया वोही, जामें हांडी खदबद होइ" वाली कहावत के विरुद्ध अपनी सामर्थ से अधिक धन विवाह, यज्ञ और भोज इत्यादि में व्यय किया जाता है। मोटे छोटे खाने के स्थान पर 'चूरमे' का प्रयोग होता है। घ-स्त्रियों की फ़र्माइश पर मँहगे वस्त्रों और आभूषणों में मन माना धन लुटाना। ङ--अशिक्षा के कारण, मसान, भूत, चंडी, काली इत्यादि के लिये निर्दोष पशुओं का बलिदान। इस अन्धाधुन्धी के अन्धकार को मिटाने का एक मात्र साधन है 'सहयोग-समिति-प्रकाश'। यों तो राजकीय विधान भी ग्रामीणों की सूद लेने वालों से रक्षा कर सकता है, पर पग पग पर विधान की दुहाई देना जंचता नहीं। कुछ स्थानों पर सहयोग समितियां खुलीं भी पर वे नीचे के कुछ कारणों से सफल न हो सकीं। इसलिये इन त्रुटियो को पहिले ही दूर कर देना श्रेयस्कर है।

क—सहयोग-समितियों के बेक कुर्की तक करा सकते हैं जो साहूकार भी नहीं करा सकता! ख-केवल खेती के लिये क़र्ज़ दे देना और अन्न न खरीदना। ग-समिति से धन ले लेने के बाद भी किसान साहूकार के पास जाता है और इस प्रकार दुहरा क़र्ज़ लेता है। गावों के समस्त दुखों के

निवारण के लिये नीचे लिखी समितियों का होना लाभ दायक सिद्ध होगा।

१–आर्थिक-संकट-निवारक-समिति-क- कमसे कम ब्याज पर रुपया उधार दे और अच्छे ऊँचे भाव पर किसानों का अन्न बिकवा कर उन्हें साहूकार के चंगुल से बचाये। ख–कुछ धन एकत्र कर लग भग १०० गाय भैंस ख़रीदे और सरकारी पशुशाला से लेकर एक अच्छी नस्ल का सांड छोड़ दे। इस प्रकार उत्पन्न हुए बच्चों को सस्ते भाव पर बेचा जाये और 'गोरक्षा' इत्यादि का प्रचार किया जाये। अन्य किसानों को भी ऐसा करने को प्रोत्साहित करे। ग–घी दूध के रक्षण और प्रयोग का उत्तम ढंग बताया जाये। मितव्ययता सिखाई जाये। घ—समय समय पर ज़मींदार और साहूकार की ज़्यादतियों का भंडा फोड़ कर सरकार से उचित विधान वा कार्य्य वाही के लिये प्रार्थना करे।

२—'पंचायत-समिति' क-गांव के पारस्परिक झगड़ों, मुकदमों के मिटाने का प्रयत्न करना और सर्वत्र शांति, प्रेम, सद्व्यवहार का प्रचार करना। ख—छल-कपट रहित आदर्श जीवन का प्रचार कर अनुचित हानिकारक कार्य्य-वाहियों पर उचित दंड देना। 'गुट्ट बाज़ी' के भयंकर रोग को फैलने से पूर्व ही नाश कर देना। इस समिति के सदस्य निष्पक्ष, अनुभवी और प्रभावशाली होने आवश्यक है।

३—'स्वास्थ्य-समिति' (क) स्वच्छता—गलियों, कुओं, मोरियों, रास्तों, घाटों, पशुशालाओं और घरों की सफ़ाई तो थोड़े ही प्रयत्न से भली प्रकार हो सकती है। आश्चर्य है

कि जिनके मन कांच के समान साफ़ हों उनके रहन सहन पर गन्देपन का लांछन लगाया जाये! मित्रों उठो, चेतो और अपने को स्वच्छता का पुजारी सिद्ध करदो। समिति का काम होगा कि नये मकान अपनी देख रेख में स्वास्थ्य प्रद बनने दे। मनुष्यों का निवास स्थान पालतू पशुओं के आवास से भिन्न हो। सर्वत्र स्वच्छता का प्रचार करे। (ख) शारीरिकरक्षा-प्रतिदिन स्नान के लिये प्रार्थना के द्वारा प्रचार किया जाये। वेश भूषा साफ़ हो और व्यायाम की ओर नवयुवकों का ध्यान आकर्षित किया जाये। एक खेल कूद क्लब खोला जाये जिसमें कबड्डी, चील झपट्टा इत्यादि खेलों की सुविधा हो ४-'प्राचीन कला उद्धारक समिति (क) कुछ निर्धन विद्यार्थियों को विशेषतः इस कार्य्य की ओर आकर्षित किया जाये और उन्हें उनके इच्छित विषय में दक्ष बनाने का पूर्ण प्रबन्ध किया जाये। प्राचीन लुप्त कला-कौशल की खोज कर फिर उसका पुनरुद्धार कराया जाये। इस संबंधी शिक्षा के लिये खुले मैदान में पाठशाला खोली जायें। रस्सी, कपड़ा, लोहे, मिट्टी, लकड़ी, कांच, ऊन, सन इत्यादि के सम्बन्ध की समस्त शिक्षा यहां पर दी जाये। प्रचार के लिये वस्तुओं का मूल्य बहुत कम हो। वस्तुएं आकर्षक और लाभ कारी हों ५-'धार्मिक-प्रचार समिति' (१)'सात्विक भाव प्रचार'-झूठ न बोलो, चोरी न करो, आचरण शुद्ध रखो, सबको भाई समझो, भ्रातृभाव का प्रचार करो इत्यादि नैतिक गुणों का प्रचार इसका उद्देश्य हो। प्रति सप्ताह एक बैठक हो और उसमें धार्मिक विषय पर चर्चा हो। ढोंग से बचा जाये निर्धन जातियों वा व्यक्तियों के उठाने के उपाय सोचे जायें। ईश्वर-भजन, सन्ध्या, हवन, यज्ञ, दान, तप इत्यादि का महत्व समझाया जाये। प्रति [illegible]

साहित्य का प्रचार हो (२) सेवा संघ—नवयुवकों में सेवा
व सच्ची लगन भावों का संचार हो। उत्सव, भीड़, मेले
इत्यादि में यह संघ जा जा कर लोगों की सेवा करे। स्टेशन
नों या जंगली प्याऊ इनके आदर्श शासन से चलें। हैज़ा,
महामारी इत्यादि के समय इस संघ का काम अस्वस्थ दीन
असहाय प्राणियों की सेवा शुश्रूषा करना हो। इस संघ के
सदस्यों को कुछ सैनिक शिक्षा भी दी जावे जिससे वह समय
समय पर ग्राम के अशान्त वातावरण को शान्त करने में
सहायक हों। इस संघ का कार्य्य नवयुवकों को सैनिक
शिक्षा से दीक्षा प्राप्त करा सच्चे स्वयं सेवक बनाना भी हो।
रात्रि को पहरा देना इत्यादि इसी संघ का कार्य्य हो। शहर
से आवश्यक व्यापारिक सामग्री ला ग्राम वालों को उचित
मूल्य पर देना भी इसके कार्य्य क्रम का एक अंग हो।
साहसी, शान्त, सच्चे सेवक ही इस संघ के सदस्य हों
'रोग-निवारक-समिति' अनुभवी वैद्यों और चिकित्सकों
की एक एक सार्वजनिक औषधालय व एक पशु-चिकि-
त्सालय खोला जावे। इसमें निर्धनों को औषधि मुफ्त दी
जावे। समय समय पर सेवा किया जावे।

इन समितियों में सर्व प्रकार की सहायता पाठशाला के
अध्यापकों से ली जाय तो बड़ा अच्छा हो। वे प्रत्येक
कार्य्य को सुचारु रूप से संचालित कर सकते हैं। और
उनसे अच्छा आदर्श पथ प्रदर्शक और वह भी सस्ते में
मिलना असम्भव ही है।

सस्ती ज्ञानमाला

...री दिनचर्या क्या हो ?

लेखक

श्रीनाथ मोदी 'विशारद'

प्रकाशक

ज्ञान भण्डार, जोधपुर

मुद्रक—नथमल लूणिया

आदर्श प्रेस, केसरगंज अजमेर

संचालक—जीतमल लूणिया

[illegible]] 卐 [तीन पै...

[illegible] भिन्न १२ ट्रैक्टों का डाक खर्च सहित मूल्य केवल [illegible]

ॐ

आदर्श दिनचर्य्या क्या हो ?

यदि जीवन एक पुस्तक है तो एक दिन उसका एक पृष्ठ है, विना पृष्ठ के पुस्तक का अस्तित्व नहीं; यदि जीवन एक घड़ा है तो दिन उसका एक कण है, विना कण के घड़ा बन ही नहीं सकता; यदि जीवन तालाव है तो दिन उसका एक जल विन्दु है, विना जल विन्दु के तालाव हो ही नही सकता। बस यह निर्विवाद सिद्ध है कि एक एक पृष्ठ, एक एक रज कण और एक एक जल विन्दु की उत्तमता पर ही पुस्तक, घड़े और तालाब की श्रेष्टता निर्भर है। ठीक उसी तरह एक एक दिन के काम पर मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन का श्रेय अवलंवित है।

आइये, हम विचार करें कि सम्पूर्ण जीवन को सुखी और सफल वनाने के लिये किस प्रकार उसके आवश्यक अंश दिन के काम को तादृश बनाया जा सकता है।

हाँ, सुनने मे तो यह भी आता है कि "सब दिन जात न एक समान" पर यह वात भी अटल सत्य है कि सब दिनो के समूह का नाम ही तो जीवन है। अतः आवश्यक है कि हम प्रयत्न करें जिससे हमारे अधिकांश दिन अच्छे और आदर्श हों। और

फिर यह भी तो होता है कि एक दिन के काम का प्रभाव दूसरे दिन पर पड़ता है।

जीवन बीमा कम्पनियों का काम विना मनुष्यों की औसत आयु जाने चल नहीं सकता अतः हम अपने विचार के लिये उन्हीं का औसत मान लेते हैं। जीवन बीमा के कार्यकर्ताओं का अंदाज है कि उन भारतीयो की औसत आयु जो १८ वर्ष के हो जाते हैं इस समय लगभग ४५ वर्ष की है अतः हिसाब लगाने पर मालूम हुआ कि हमे बालिग होने पर लगभग १०००० दिन काम करना होता है। जीवन की प्रत्येक इकाई एक रात दिन है जो कालचक्र की गति से घूमता रहता है। किसी ने सच कहा है "सुबह होती है; शाम होती है—उम्र यों ही तमाम होती है।"

अब हम अपने मुख्य विषय पर आते हैं अर्थात् हम अपनी दिनचर्या कैसी बनावें कि जिससे हमारा जीवन उपयोगी और आदर्श हो। यों तो हर व्यक्ति को नित्य २४ घंटे बराबर मिलते हैं; न तो किसी को एक सैकन्ड अधिक और न आधा सैकन्ड कम। फिर लोगो की योग्यता मे इतना अधिक अन्तर क्यों दिखाई देता है ? इसका स्पष्ट और सच्चा उत्तर यह है कि जो लोग अपने दिन का भलीप्रकार उपयोग करते है वे स्वस्थ, बुद्धिमान, विद्वान और धनवान होकर सदैव सुख उठाते हैं और इस के विपरीत जो अपने दिन का उपयोग अच्छी तरह करना नहीं जानने के कारण, मूर्ख, अपढ़ और गरीब होकर दुख की भट्टी मे झुलसते हुए जीवन की अंतिम घड़ी की प्रतीक्षा करते हैं।

जीवन की बड़ी जटिल समस्या यह हो जाती है कि हमारी

आदर्श दिनचर्य्या क्या हो ? दिनचर्य्या निर्धारित करना यद्यपि सहज है परन्तु तदनुसार कार्य करना बहुत कठिन है। पर जिसे अपने जीवन को सुखी बनाना है वह अवश्य इस सम्बन्ध मे भर-सक कोशिश करेगा। ऐसी दशा मे यह आवश्यक है कि एक आदर्श दिनचर्य्या सोची जाय ताकि लोग उसके आधार पर अपनी दिनचर्य्या बनावे।

परन्तु सब लोगो के लिये एक ही प्रकार की दिनचर्य्या नियत करना भी तो अव्यवहारिक और कठिन है पर तो भी कुछ ऐसे काम हमें प्रति दिन करने ही पड़ते है जो सब लोगों के लिये यकसा हैं। जैसे—जागना, शौच्य से निबटना, दंतधावन, व्यायाम, स्नान, जलपान, जीविका हेतु काम, भोजन करना, आराम, पुस्तके तथा समाचार पत्र पढ़ना, विनोद, मित्रों से मिलना जुलना, पत्र व्यवहार करना, वायु सेवन करना और नींद लेना आदि।

हाँ, इतना अन्तर जरूर है कि अपने धन्धे की सुविधानुसार इन कामों के करने का समय भिन्न भिन्न हो सकता है। परन्तु चूँकि यह ट्रैक्ट जन साधारण के लिये लिखा जा रहा है हम अपनी दृष्टि मे औसत संज्ञा की जीवनी सम्मुख रखेंगे। सुविधा के लिये हम दृष्टांत के तौर पर तीन व्यक्ति चुन लेते हैं जिनका वातावरण निम्न प्रकार समझिये।

'क' एक दफ्तर का क्लर्क है जो मेट्रिक तक की शिक्षा प्राप्त है और जिसकी आय ५०) मासिक स्थायी है। समाज सेवा आदि करने की जिसे रुचि है।

'ख' एक मध्यम दर्जे का साधारण व्यापारी है। जिसे

कभी कभी वाहर दौरा भी करना पड़ता है। जिसकी स्थायी आय ३००) से १०००) तक की सालाना है। साधारण ज्ञान के समाचार पत्र व पुस्तकें आदि पढ़ने की थोड़ी सी रुचि है।

'ग' एक कारखाने मे मजदूर है जिसे वहां ८ घंटे काम करना पड़ता है! वेतन ॥≈) दैनिक मिलता है। विना तनख्वाह कटे जिसे छुट्टी नहीं मिलती। पत्र लिखने पढ़ने की साधारण योग्यता है। संगीत मे विशेष रुचि है।

औसत श्रेणी के २ वा ३ व्यक्ति और भी गिनाये जा सकते हैं पर स्थल के संकोच के कारण पाठको को इतने से ही अपना काम निकालने का ढंग सोच लेना पड़ेगा।

'क', 'ख' और 'ग' की दैनिक कार्य विधि बहुत अधिक अंशो में भिन्न है। प्राय: ऐसा देखने में आया है कि यदि कुछ मनुष्य अपनी उन्नति व समय के सदुपयोग को दृष्टि मे रखते हुए दिनचर्य्या का ढांचा तैयार करते भी है पर वह उनकी निजी आदतो और परिस्थितियों से इतना भिन्न होता है कि सोचे हुए टाइम टेविल के अनुसार काम करना वन नहीं पड़ता।

आम तौर से लोग पहली जनवरी वा कुछ लोग किसी भी महीने की पहली तारीख की प्रतीक्षा करते है और एक बढ़िया टाइम टेविल वना कर अपनी वैठक के कमरे मे लगा देते हैं। वे उसी के अनुसार चलना चाहते हैं पर चल नहीं सकते। कई स्कूल के छात्र, छात्रालय के वोर्डर, दफ्तर के मुन्शी और कम्पनियो के एजेंट इस काम मे असफल होते हुए देखे गये हैं।

कठिनाई को दूर करने का सरल उपाय

टाइमटेबिल को बनाने के पहले जरूरी है कि दस दिन तक बिना किसी निश्चित कार्यक्रम के साधारणतया अपना काम किया जाये और शाम को सोने के पहले दिन भर के कामो का ब्यौरा समय सहित लिखा जाये। यद्यपि यह जरूर होगा कि आपके काम मे थोड़ा सा परिवर्तन तो अनायास ही हो जायेगा पर आप लिखियेगा नियमानुसार। कदाचित् आपका प्रथम दिन इस प्रकार लिखा जाये। ७. जागना, ७ से ७.३० शौच्य निबटना दंतधावन ७.३०–७.४५ स्नान ७.४५–८ जलपान ८ से ८.३० समाचार पत्र पढ़ना ८.३०–९ बाजार में कुछ सामान खरीदना ९–९-३० बाजार मे खड़े खड़े मिलने वालों से गप्प शप्प ९-३०–१० समय की हत्या १० से १०-३० भोजन १०-३०–११ कार्यालय को जाने का समय ११ से ४-३० दफ्तर मे काम ४-३०–५ घर पहुँचना ५ से ६ आराम ६ से ६-३० शौच्य ६-३० से ७ भोजन ७ से ८ वायु सेवन ८ से ९ ताश खेलना ९ से ९-३० पुस्तक पढ़ना ९-३० से १०-३० मित्रो से गप्प शप्प ११ बजे सोना।

इसी प्रकार दूसरे दिन का कार्यक्रम लिखने पर आपको विदित होगा कि कल जो कई काम किये गये थे वे आज या तो किये ही नही गये या किसी और समय। साथ ही साथ कुछ ऐसे भी काम किये गये जो कल नहीं किये गये थे। इस प्रकार आपको १० दिनों के किये हुए कामों को जाँचने पर मालूम होगा कि प्रायः किस काम में आप औसतन कितना समय व्यय करते

हैं। ध्यान देने पर आप अवश्य मालूम कर सकेंगे कि नित्य आप लगभग २ या ३ घंटे यो ही गप्प गप्प में विताते रहे हैं तथा कभी किसी काम में अधिक समय और किसी काम को करने के लिये समय ही नहीं मिला। उदाहरण के लिये नींद के ही विषय मे मालूम होगा कि कभी आप ११-३० वजे सो कर ७ वजे उठे; कभी ९-४५ सो कर ६-३० वजे उठे; और कभी १० वजे सोकर ४-३० वजे जगते ही काम मे लग गये थे।

इस १० दिन के रेकार्ड को देख कर आप को मालूम हो जायेगा कि प्रायः आप की आदतें किस प्रकार की वनी हुई हैं। उसी से मिलता हुआ एक समयविभाग चक्र बनाइये और फिर उसका दृढ़ता से पालन करिये। चूँकि यह दिनचर्य्या आपकी काल्पनिक सूझ नही बल्कि आपकी दैनिक कार्य प्रणाली के आधार पर ही बनाई गई है इसलिये उस पर चलने में आपको विशेष बाधा पैदा नहीं होगी यह जरूरी है कि आप शुरू शुरू में अपवाद न होने दें और जिस समय जो काम आरम्भ करने का है उसको शुरू कर दें। एक मास या पक्ष के वाद उस टाइम-टेविल पर आप पुनः विचार करें और उसे विशेष संशोधन कर उस पर चलिये। यदि सच्ची लगन से अपनी इच्छा शक्ति पर नियंत्रण रखते हुए आप एक साल भर किसी दिनचर्य्या का पालन विधिवत् करते रहेंगे तो आप की अनायास ही वैसी आदतें वन जायेंगी और भविष्य में उस दिनचर्य्या को निभाने मे आप को तनिक भी तकलीफ न उठानी पड़ेगी।

'क', 'ख' और 'ग' के लिये आदर्श दिनचर्य्या बताने के पहले यह जरूरी है कि दैनिक होने वाले अनिवार्य कामो और

उनके ढंग पर भी कुछ विचार कर लिया जाये ताकि दिनचर्य्या बनाने वालो को कुछ सिद्धान्तो से भी सहायता मिल सके।

आइये जरा उन कामो और तरीकों पर भी थोड़ा सोच लें। सब से पहला काम जो सब को नित्य करना पड़ता है वह है जागृत होना। जागने के समय का सोने के समय से घनिष्ट सम्बन्ध है। तो अब पहला प्रश्न यह है कि हम सोवे कब ?

प्रकृति के नियमानुसार तो सूर्यास्त सोने का समय और मुर्गे की पहली बांग अर्थात् चार बजे उठने का समय है पर हजारो वर्षों से मनुष्यो ने तीन या चार घण्टे रात गये सोने की आदत डाल रखी है। उधर डाक्टरो का भी स्पष्ट कथन है कि आधी रात के पहले की एक घण्टे की नींद उसके बाद की दो घन्टे की नींद के बराबर है। अतः हमें इस तर्क वितर्क पर अधिक समय नष्ट न कर शीघ्र किसी एक निर्णय पर पहुँचना चाहिये। मुझे तो श्री टेगोर के शांति निकेतन का समय बहुत उपयुक्त जान पड़ता है। ९-३० से ४-३० तक अर्थात् ७ घन्टे की नींद मध्यम दर्जे के व्यक्ति के लिये उपयुक्त जान पड़ती है।

निद्रा त्याग के लिये शुरू में आदत डालने के लिये भले ही सचेत घड़ी की मदद ली जाये पर ४-३० बजे स्वतः ही आँखें खुल जायें ऐसा स्वभाव डालना चाहिये।

निद्रा त्याग के बाद बिस्तर पर बैठे अपने जीवन के मुख्य उद्‌देश्य अथवा अपने इष्टदेव या धर्मचिंतन पर दो या चार मिनिट बिताना भी बहुत लाभकर सिद्ध हुआ है।

फिर सब से प्रथम शौच्य आदि से निवटने के लिये यथा संभव नगर या गांव के बाहर जाना उपयुक्त होगा क्योंकि अनायास ही शुद्ध वायु सेवन का लाभ प्राप्त होगा। शौच्य आदि से निवृत्त होने के बाद दन्तधावन मुखमार्जन आदि का काम व्यवहार और युक्ति संगत है।

दाँत साफ करने के सम्बन्ध मे इन दिनों काफी चर्चा चल रही है। वर्ष भर मे एक बार किसी कुशल दन्तसाज से यदि दाँत यंत्र द्वारा साफ करवा लिये जायें तो मुख की सुन्दरता और दाँतो की दृढ़ता अवश्य बढ़ेगी। अब रही बात यह कि दाँत दिन में कै बार और किस पदार्थ से मांजे जायें? युक्ति संगत तो यह है कि प्रातः काल, प्रत्येक भोजन के पहले और बाद में तथा सोते समय दाँतो की सफाई की ओर ध्यान देना चाहिये। भोजन के पहले और बाद में तो कुल्ली आदि से काम चल जायेगा पर रात को सोने के पहले और पीछे दांतों को विधिपूर्वक किसी दंत मंजन से साफ कर लेना बहुत ही जरूरी है।

दंत धावन के पश्चात् का समय व्यायाम के लिये ठीक रहेगा। कई लोग स्नान के बाद व्यायाम करते है यह ठीक नहीं क्योंकि व्यायाम आदि करने से जो पसीना आदि आवेगा वह स्नान करने से दूर हो जायगा एवं स्नान से थकावट भी दूर हो जायगी। स्नान व्यायाम करके तुरन्त नहीं करना चाहिये। स्नान के मुख्य दो उद्देश्य हैं। शरीर को साफ करना और विशेष रक्त संचार द्वारा उसे पुष्ट भी करना। प्रति दिन साबुन से स्नान करना भी भूल है। साबुन के प्रयोग से शरीर की त्वचा कठोर हो जाती है। ठंडे पानी से शरीर को मल कर

स्नान करना ही काफी है। स्नान करते समय धोती के साथ साथ कुर्ता आदि भी धो डालना बहुत जरूरी है। पसीने से भरे वस्त्र को स्नान के वाद पहिनना भूल है।

स्नान के पश्चात् काम पर लगने के पहले थोड़ासा जल पान आदि कर लेना चाहिये। वाद में आज के किये जाने वाले कामों में से कठिन काम प्रारंभ कर दीजियेगा। ताजगी के कारण इष्ट काम थोड़े ही श्रम से अल्प समय में ही सम्पूर्ण हो जायगा और जिसके कारण आत्म संतोष भी होगा। फिर दैनिक पत्र पढ़ने मे अधिक से अधिक आध घंटा लगाइये। अतीव उपयोगी लेखों या समाचारो पर लाल पेन्सिल से चिह्न लगा लीजिये। ताकि सप्ताह में किसी निश्चित दिन आप आवश्यक कतरन काटकर एकत्र कर सकें। पश्चात् किसी उत्तम ग्रन्थ का स्वाध्याय करिये। कम से कम प्रति मास एक उत्तम ग्रन्थ तो अवश्य पढ़ लेना चाहिये।

दस वारह मिनिट घर के वच्चों को खिलाने मे अथवा उनसे उनकी पढ़ाई आदि के सम्बन्ध मे वार्तालाप मे विताइये। अव भोजन वहुत शांति पूर्वक करिये। भोजन के सम्बन्ध मे यहाँ कुछ विस्तृत विवेचना करना जरूरी जान पड़ता है।

साधारणतया यह प्रश्न उठता है कि हम क्या और कितना खावें? उत्तम भोजन वही है जो हमारे शरीर को काम करने के लिये काफी शक्ति और गर्मी दे तथा नित्य होने वाली क्षति की पूर्ति के लिये आवश्यक वृद्धि करे। मॉड, शक्कर और चिकनाहट गर्मी वढ़ाती हैं और दूध, दाल, क्षार और विटेमिन क्षति की पूर्ति कर शरीर को वृद्धि गत कर रोग से वचाते हैं। गरीव

लोग माँड (अनाज व बीज) सस्तेपन के कारण अधिक खाकर वृद्धि करने वाले पदार्थों से वंचित रहते हैं और अमीर लोग अधिक शक्कर, चिकनाहट खाकर क्षार और विटेमिन से वंचित रहते हैं। चावलो और गेहूँ का ऊपरी उपयोगी भाग भी फेंक दिया जाता है। अत: दोनो के भोजन में सुधार की आवश्यकता है। यहाँ एक जवान मनुष्य के एक महीने भर के भोजन का अंदाजन परिमाण बताया जाता है।

पदार्थ*	जो प्रतिमास ३) में निर्वाह करे		जो ६) खर्च कर सके	
	से०	छ०	से०	छ०
१ चावल कनी (टूटे)	१०	५	×	
२ ,, ताजी भूसी	०	१५	०	११
३ ,, पालिस किये	×		३	१२
४ ,, बिना पालिस	×		५	१०
५ दूसरे अनाज गेहूँ बाजरी ज्वार आदि	४	११	७	८
६ दाल मसूर तूर आदि की	१	१३	१	२
७ सोया बीन Soya Beans	१	६	१	७
८ मीठा तेल (सरसों, तिल या नारियल)	१	२	०	१४
९ घृत या मक्खन	०	१२	०	११
१० मलाई उतारा दूध	१	७	१	७
११ दूध	×		४	११

* Balanced diets के आधार पर।

१२ मूँगफली की रोटी	०	७	०	७
१३ शक्कर या गुड़	०	१५	१	७
१४ फल या जड़ के शाक (आलू टमाटर आदि)	२	१३	५	१०
१५ पत्तों के शाक (पालक, गोभी आदि)	५	१०	५	१०
१६ नमक मसाले	आवश्यकतानुसार		आवश्यकतानुसार	

नोट—पुराने चावल काम मे लाना ठीक नहीं। माँस हर्गिज न खाया जाय। चाय पीना त्याग दिया जावे।

भोजन के बाद थोड़ी देर के लिये आराम जरूर कीजिये। और फिर अपने कार्यालय के लिये घर से चल दीजिये। कार्यालय के काम के सम्बन्ध मे यहां विवेचन करना सम्भव नहीं है। हां. दुपहरी के भोजन के विषय में वहीं कुछ प्रबन्ध कर लीजिये। हलवाई के तैयार किये हुए पदार्थों के सिवाय और कुछ प्रबन्ध हो जाय तो श्रेयस्कर रहेगा।

कार्यालय से छुट्टी होते ही सीधे घर पहुँचना बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है। तब घर पर आई हुई चिट्ठियो को पढ़िये अथवा उनके पत्रोत्तर लिखिये। यह समय इस काम के लिये कई दृष्टियों से उपयोगी जान पड़ा है। शौच्य आदि से निवृत्त हो स्नान कर भोजन कर लेना चाहिये। सोने से कम से कम ढाई घण्टे पहले भोजन कर लेना स्वास्थ्य के नियमानुसार अनिवार्य है।

तदुपरांत या तो वायु सेवन के लिये नगर के वाहर वाटिकाओं में पधारिये अथवा मनोविनोद के लिये गायन गाइये या शतरंज आदि खेलिये। गायन या खेल आदि के लिये घन्टे भर से अधिक समय लगाना ठीक नहीं। फिर अपने टाइम टेवल या डायरी को देख कर आज के वचे हुए काम को पूरा करिये। ८॥ वजते ही आज के आय व्यय दैनिक चर्या आदि को लिखकर ९। वजे सोने को तैयार हो जाइये। उस समय दन्त धावन और आत्म चिन्तन कर निद्रा देवी की गोद में ७ घण्टे के लिये चले जाइये। यदि आपने दिन भर का काम व्यवस्था पूर्वक किया होगा तो आपको आत्मसंतोष के फल स्वरूप सुख अनुभव होगा और गाढ़ निद्रा तुरन्त ही आजावेगी। यदि स्वप्न आदि आवें तो समझिये आपको दिनचर्या में कहीं मानसिक अव्यवस्था अथवा चिन्ता का अंकुर मौजूद है।

रविवार की छुट्टी का प्रोग्राम दैनिक प्रोग्राम से अवश्य भिन्न होना चाहिये। छुट्टी के दिन विश्राम, मनोविनोद और लोक सेवा का काम सोच रखिये। जो समय आप नित्य कार्यालय में विताते हैं उस समय मे इन तीनो कामो के लिये व्यवस्था सोचिये। पहले दो घंटों तक विश्राम और पिछले दो घंटो तक लोक सेवा और वीच के समय मे मनोविनोद जिसमे आपने इष्ट मित्रो से मिलना आदि भी सम्मिलित है। छुट्टी के दिन का शेप समय वस्त्र धोने, जूतो की पालिश करने, वैठक के कमरे को साफ करने, समाचार पत्रो के कतरन काटने, पत्रो को संग्रह में रखने, संवंधियों से मिलने जुलने, किसी सभा सोसाइटी में

व्याख्यान आदि श्रवण करने अथवा बाजार से सामान आदि खरीदने मे खर्च करना चाहिये।

रविवार के अतिरिक्त जो छुट्टियाँ हो उनको बिताने के लिये पहले ही से प्रबंध सोच रखिये। जैसे—यात्रा, फरनीचर की मरम्मत, उघाई, धंधे के अतिरिक्त किसी कला मे निपुणता प्राप्त करने का काम आदि इस सम्बन्ध मे गिनाये जा सकते हैं।

स्थल संकोच के कारण अब हम 'क' 'ख' और ग' के लिये औसत दैनिकचर्या निर्धारित कर इस ट्रेक्ट को समाप्त किये देते हैं।

समय	'क'	'ख'	'ग'
४॥–५	निद्रा त्याग, जीवन के उद्दश्य पर विचार शौच्य	निद्रा त्याग ईश्वर ध्यान शौच्य	शौच्य स्नान
५–६	दंत धावन, व्यायाम	दंत धावन, वायु सेवन	
६–७	स्नान दुग्धपान	स्नान जलपान	कारखाना
७–८	कार्य विशेष	दुकान	,,
८–९	समाचार पत्र पढ़ना पुस्तक पढ़ना	,,	,,
९–१०	बच्चों से वार्तालाप	,,	,,
१०–११	भोजन आराम	घर आना भोजन	भोजन
११–१२	दफ्तर	आराम	आराम
१२–१	,,	समाचार पत्र पढना	कारखाना
१–२	,,	दुकान	,,
२–३	,,	बाजार में उघाई	,,
३–४	,, (दुपहरी का भोजन)	पत्र व्यवहार	दुपहरी

४--५	"	दुपहरी	कारखाना
५–६	घर पहुँचना व विश्राम	उपयोगी काम	घर आना
६–७	पत्र व्यवहार व शौच्य	खेल	आराम
७–८	स्नान, भोजन, वायु सेवन	शौच्य स्नान भोजन	शौच्य स्नान
८–९	सभाकार्य अवैतनिक	दुकान का लेखा	भोजन
९–१॥	आय व्यय डायरी दंत धावन	मनोविनोद	गायन पठन
१॥–४॥	शयन	शयन	शयन

नोट—प्रत्येक व्यक्ति के लिये पृथक पृथक कार्यक्रम होगा जो ऋतु के अनुसार बदलता भी रहेगा।

यदि आप अपने जीवन को सफल बनाने के मुख्य साधनभूत दैनिक कार्यक्रम को विचारपूर्वक सोच कर ढूँढ निकालेंगे और उसका दृढ़तापूर्वक पालन करेंगे तो आपको अवश्य सुख मिलेगा। विद्यार्थियों के लिये दैनिक कार्यक्रम को विचारपूर्वक बनाना और उस पर दृढ़तापूर्वक चलना अत्यावश्यक है क्योंकि जो आदतें इस अवस्था में बनेंगी वे जीवनभर रहेंगी।

स्त्रियों को अपने कार्यक्रम में घर की सफाई, रसोई बनाना, बच्चों की सँभाल, पति भक्ति, गृहउद्योग, चर्खा चलाना या अन्य शिल्प कार्य करना तथा नैतिक पुस्तकों को पढ़ना आदि सुविधा अनुसार सम्मिलित करने पड़ेंगे।

जिस प्रकार व्यक्ति विशेष के लिये दैनिकचर्य्या नियत करना जरूरी है ठीक उसी तरह संस्थाओं कारखानों और अन्य आयो-

जन वालों को भी अपने काम के अनुसार कार्यक्रम सोचना पड़ेगा।

नोट–एक मज़बूत घड़ी सदैव पास रखना हर व्यक्ति के लिये ज़रूरी है तभी दैनिक कार्मों का नियंत्रण संभव रहेगा। पर ध्यान रहे हमें टाइमटेबिल का गुलाम नही बनना चाहिये अपितु इसे अपना सेवक बनाया जाय और तत्परतापूर्वक काम किया जाय। अपने कमरे में पंचांग या कलेन्डर भी अवश्य रखिये। सदैव अपनी पाकिट में एक नोटबुक तथा पेन्सिल अवश्य रखिये ताकि वक्त पर चाहे सो बात नोट की जासके।

जीवन में निपुणता प्राप्त करने के लिये अनेक साधन है शारीरिक, मानसिक और व्यवहारिक परिपूर्णता से ही मानव जीवन सफल हो सकता है! व्यवहारिक निपुणता के लिये समय का सदुपयोग एक अनिवार्य अंग है। जिन लोगो को अपना जीवन प्रभावशाली और उपयोगी बनाना हो उन्हें चाहिये कि आज ही से दृढ़ संकल्प कर दैनिक कार्यक्रम निश्चित करने की तैयारी करें। इस पृष्ठ के पीछे दिये हुए कोष्टको को भरने के पहले १० दिन तक अपनी साधारण जीवनचर्या को समय के हवाले सहित लिखिये और फिर अपनी आदतो से मिलता जुलता उपयोगी कार्यक्रम बनाइये और दृढ़तापूर्वक उसका पालन करिये तभी इस निवन्ध का पढ़ना सार्थक समझिये।

...ब तक चूसते रहेंगे ?

[एक मौलिक निबन्ध]

लेखक

श्रीनाथ मोदी 'विशारद'

इन्स्टक्टर,

गवर्नमेण्ट टीचर्स ट्रेनिङ्ग स्कूल,

जोधपुर

प्रकाशक—

धीरजमल बच्छावत,

ज्ञान-भण्डार, जोधपुर
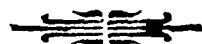
मुद्रक—कुँ० सरदारमल थानवी,

* श्री सुमेर प्रेस, फुलेरारोड जोधपुर *

...] [तीन पैसे

...कों से भिन्न भिन्न ३२ ट्रैक्टों का मूल्य डाक खर्च सहित १॥)

कब तक चूसते रहेंगे ?

भारत में भिखमंगों का बाहुल्य है। रात दिन, घर बाहर, तीर्थ मंदिर, गाँव नगर, महल झोंपड़ी, रेल मोटर, दफ्तर दुकान, सड़क गली, इधर उधर—सब कहीं भिखमंगों की 'चिल-पों' से हमारी नाक में दम है। सब जगह इनके लिये 'शुभागमन' शीर्षक साइन-बोर्ड अदृश्य रूप में लगा हुआ है। मानो इन्हें सब कहीं प्रविष्ट होने का 'पासपोर्ट' परमेश्वर ने जन्म ही से दे रक्खा है।

हमारे पुराने त्याग वैराग्य अथवा दान पुरस्कार के कारण कहिये अथवा इस कमीनी प्रथा का ज़रूरत से ज़्यादा पोषण कहिये इस प्रणाली का भयंकर परिणाम आज प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है। धर्म नहीं, पुण्यप्राप्ति की आड़ में इस मुफ़्तखोर पेशेने समाज का अर्थरूपी ख़ून जोंक की तरह चूसना आरम्भ कर दिया है। उदारता के भाव से इस बेग़ैरत धंधे ने देश के प्रत्येक भाग में अड्डियों की निरन्तर वृद्धि ही की है। दान की आशा से इस लोभी दल ने गहरा लम्बा लगाया है। इसका प्रसार हर प्रान्त में है, कोई भी ग्राम इस कलंकित दृश्य से अछूता नहीं रहा। शहर इसके प्रधान केन्द्र हैं और तीर्थ क्षेत्रों में तो इसका ध्रुव अड्डा है ही।

भिखमँगीके अनेक विचित्र ढंग चलपड़े हैं जिनके समूचे वर्णन के लिए ताज़ीरात हिंद से भी बड़ा पोथा लिखा जासकता है; पर यहां थोड़े ही में हड्डी पसली गिन लेने का प्रयत्न करूँगा। इसकी वर्तमान हृदय-विदारक बुराइयाँ बतलाने के पहले इसके पूर्व इतिहास पर भी कुछ प्रकाश डालना असंगत न होगा।

सब इस बात पर एक मत हैं कि आदिम भारतीयों का जीवन बहुत ही सादा और आडम्बर हीन था। उनकी ज़रूरतें बहुत थोड़ी और परिमित थीं। जब चार वर्णों की व्यवस्था हुई तो ब्राह्मणों के गुज़ारे के लिये भिक्षा, क्षत्रियों के निर्वाह के लिये कर, वैश्यों की आजीविका के लिये गोपालन और कृषि तथा शूद्रों का काम मज़दूरी (सेवा का मेहनताना) से चलाना निश्चित हुआ। ब्राह्मणों के षट्कर्म निश्चित किये गये जिनमें दान लेने के साथ दान देना भी था। दान अथवा भिक्षा ग्रहण करने का अधिकार केवल इसीलिये था कि ये लोग निशुल्क विद्या पढ़ाते थे और लोगों को कर्त्तव्य-ज्ञान-बोध कराते हुए स्वयं भी जीवन को धर्माचरण भाव से आदर्शरूप में बिताते थे। यही कारण था कि इन्हें 'भूदेव' की उपयुक्त पदवी दी गई थी, इसीके कारण ये जगत् पूज्य थे।

पर उस आदर्श व्यवस्था का धीरे धीरे लोप होता गया। ब्राह्मण संस्कार क्रिया कराने के बदले में दक्षिणारूप में द्रव्य बटोरने लगे। पढ़ाने के लिये भी आटा और घृत के रूप में फ़ास वसूल की जाने लगी, बदलते बदलते वेतन रूप में रौप्य मुद्राएँ अंटों को गर्म करने लगीं। सादगी सटक सीताराम होगई। परिग्रह की वृद्धि हुई। फिर वही हुआ जो नहीं होना चाहिये

था। उधर राज्य व्यवस्था भी बदली। राजा लोग भी रक्षक मात्र न रह कर अधिपति होगये। वैश्यों ने सूदखोरी का नृशंस पेशा अख़्तयार किया। शूद्र इन तीनों के अत्याचारों से पिस गये।

परिणाम में विश्व-वन्दनीय ब्राह्मणों को 'पीर बवर्ची भिश्ती ख़र' तक की निन्दनीय संज्ञा प्राप्त होने लगी। यह पतितावस्था की पराकाष्ठा समझिये। ज़माने ने रुख़ पलटा। ब्राह्मणों ने भी अपना कार्यक्षेत्र बदला। ज़मीन को हल से खोदने लगे, दुकान पर बैठ तराज़ू और गजको हथियाने लगे, और अधिक फ़िसले तो नौकरी करने तक को उतारू हो गये। चूँकि भिक्षा पाने का सच्चा अधिकारी तो वही होना चाहिये जो समाज की किसी विषय में अवैतनिक रूप से सेवा करता हो। समझदार ब्राह्मणों ने कार्यक्षेत्र के बदलने के साथ भिक्षा ग्रहण करना भी त्याग दिया। पर कुछ लोगों ने बिना समाज की कुछ सेवा बजाए ही तूँबी पकड़ली। केवल भीख मांगना ही उनका कार्य होगया। "यजमान तेरा भला करे," तकिया कलाम हो गया। कहा भी है—"मुफ़्त में मिले माल तब क्या कमी है लाल ?" इस प्रकार भिखमँगों के पौबारह होते देख बेकार और बदमाशों का एक बहुत बड़ा समूह केवल दो पैसे की गेरू की पूँजी से भिक्षुक मण्डली में दर्ज हो मौज की छानने लगा। कुछ क़दम आगे बढ़ाया तो चार पैसे के पत्रे के सहारे चलते फिरते कोरे 'केलेण्डर' बन गये।

साधारण जनता को ठगने के लिये कुछ 'गल्प गपोड़े' रच दिये—"बांस चढ़ी नटनी कहे, दोत न नटियो कोय। मैं नट कर

नटनी हुई, नटे सो नटनी होय।" "चार खूँट भिक्षुक के पट्टे। कोई दे और कोई नट्टे। सब देवें तो रकमें कट्टे *। नहीं देवें तो जावे कट्टे, घूम घाम कर आवें अट्टे के अट्टे।" "वस्त्र का दान गंगा का स्नान"। "अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम। दास मलूका कह गये, सब के दाता राम।" "कन दे सो मन ले।" "अनपढ़ हो घोड़े चढ़ो, पढ़कर माँगो भीख।" "दाता सारे मर गये, रह गये मक्खीचूस।" "कर पर कर ना कर तर कर।"

इधर देशमें बेकारी और बीमारी के कारण क्रम से ज्योतिष और वैद्यक शिक्षित ब्राह्मणों का प्रधान पेशा होगया। पर बचे खुचे अशिक्षित ब्राह्मणों ने पुण्य रूपसे (Charity) दान ग्रहण करना मात्र ही अपना जन्मसिद्ध अधिकार घोषित कर दिया। यजमानी खूब चलपड़ी। यजमानी द्वारा धनी होते हुए ब्राह्मणों के राजसी ठाठ को देख कर अब्राह्मण और ढोंगी साधुओं के मुँह से भी लार टपकने लगी। उन्हो ने भी पोल मे पोल चलाना आरम्भ कर दिया। कमर में झोली लटका केवल भिक्षा वृत्ति पर चील कौओं की तरह टूट पड़े। कमीनी कमाई के सहारे जीवन बिताने लगे।

इस पुस्तिका में केवल उस भिखमँगी का ही विवेचन और खण्डन किया जाएगा जो प्रजा को लूटने के लिये बिना कुछ समाजोपयोगी व धार्मिक कार्य किये प्रातःकाल ५ बजे से रात के ११ बजे तक तिरस्कृत और अपमानित होते रहने पर भी कुल प्रपञ्च रच कर 'येन केन प्रकारेण' की जा रही है और जो हमारे गाढ़े पसीने की कमाई को निरन्तर हड़पती आरही है।

संन्यासी, आचार्य, पादरी, जैन व बौद्ध भिक्षु, मुल्ला, भाट, यति, महन्त और कुल गुरु आदि अपनी उदर पूर्ति भिक्षा मांग कर अथवा निमन्त्रण पाकर सम्मान पूर्वक करते है और राह चलते या किसी असम्बन्धित व्यक्ति को तंग नहीं करते अतः इस ट्रैक्ट की बातें उन पर लागू नहीं होगी।

असल मे दान की व्यवस्था थी तो सुपात्रों के लिये पर अब तो यहां कुपात्र हरामखोरों की संख्या इतनी बढ़ी है कि सुपात्रों को ढूँढ निकालना भी कठिन नहीं असम्भव है। १०० भिखमँगों मे कदाचित् ही एक ऐसा होगा जो दान पाने का अधिकारी हो। अन्धे, लूले, बहरे गूंगे, बूढ़े, बीमार, कमजोर, विपद्ग्रस्त और पागल भिखारी भी उन लुच्चों के समूह के बीच में पूरा दान नहीं पासकते। कहीं कहीं तो ये असमर्थ भिखारी अथक परिश्रम से मांग मांग कर उन हरामखोरों का पालन करते हैं। प्रायः देखने में आता है कि कई मुस्टण्डे गुंडे हट्टे कट्टे भिखमँगे अपनी टोली बनाकर उसका दिखाउ मुखिया किसी अपंग व्यक्ति को बनालेते हैं और उसकी मेहनत से ये पापी स्वयं गुलछर्रे उड़ाते हैं।

वैसे तो व्यवस्था होने पर अन्धे, गूंगे, बहरे और लंगड़े व्यक्ति भी हाथ से काम करके स्वतन्त्रता पूर्वक अपना पेट भर सकते हैं। करांची, अहमदाबाद और नागपुर के अन्धों के स्कूल इस सम्बन्ध में कुछ आदर्श भी दिखा चुके हैं।

बेकारी के कारण भिखमँगों की समस्या दिन प्रति दिन बहुत विकट होती आरही है। यदि शीघ्र ही इसके निराकरण की उचित प्रणाली नहीं सोची जायगी तो समाज की वर्तमान अवस्था खतरे में समझिये।

भीख मांगने वाले पूर्ण ढोंगी और परम चालाक होते
ये लोगोंको चंगुल में फाँसने के कई हथकंडे जानते हैं। अपने प्र
लोगों के हृदय में दया उत्पन्न करने के हेतु वे अपनी चाल, वाण
आकृति, वस्त्र और कार्य बदलते रहते हैं। इनके प्रत्येक का
के पीछे कुछ रहस्य होता है। अब पाठकों के लाभार्थ उन
दिखावटी कारनामों की क़लई खोल देना ठीक होगा जिस
आप उनके झांसेमें न आ सकें और समय पर उनकी पो
खोल कर जनता को असलियत दिखा सकें।

१ गर्भवती भिखारिणी:—भिखारियों में व्यभिचार क
प्रचार अधिक है। जवान लड़कियाँ चन्द पैसों की ख़ातिर अपने
सतीत्व को भृष्ट करती हुई चाहे जहाँ डोलती रहती हैं। गुण्डे
और कामी लोग भिखारिणी स्त्रियों के शील का भंग कौड़ियों
के खर्च में बेधड़क कर डालते हैं। भिखारिणी का कोई धनी धोरी
नहीं। रोटी के बासी सूखे टुकड़े के लिये वे चाहे जहाँ बुलवाई
और फँसाई जा सकती है। व्यभिचार के फल स्वरूप जब वे
गर्भवती होती हैं तो पूर्ण निराश्रित होती है और अपनी इस
दयनीय दशा का बेजा फायदा उठाती हैं। जब गर्भ पांच मास
का हो जाता है तब से वह प्रसव काल के बहाने कोमल हृदया
स्त्रियों से गुड़, घृत, नाज और वस्त्र बटोरती है और शेष चार
मास में वर्ष भर के निर्वाह योग्य सामग्री एकत्र कर लेती है।
इस आसान और गहरी कमाई की आशा में वे पुनः व्यभिचार
सेवन कर गर्भ धारण करना चाहती हैं। बाजारू गर्भवती स्त्री
को ऐसी अवस्था में दान देना व्यभिचार को उत्तेजना देना
मात्र है आगे चल कर कुटनियों द्वारा ये व्यभिचारिणी स्त्रियां
चकले में पहुँच जाती हैं।

२ अश्लील गायनः—मुफ़्तख़ोर युवतियाँ अपने बाल बच्चों सहित गलियों में जाकर किसी घर के सामने बैठ कर आधी रोटी और ठंडे शाक पाने की आशा से घंटों भर गंदे और कामोत्तेजक गीत गाती है। जैसे—'गोरी धीरे चलो' 'झट जाओ चन्दन हार लाओ घूँघट वहीं खोलूँगी' 'नन्हा हो देवरिया' 'लहरदार बिछूड़ो' 'कांटो वालेरे' छैल भंवर रो कांगसियो' 'उतार म्हारो बिछूड़ो' जब माँ बाप ऐसे गीत गानेवालियों को बर्जते नहीं तो घर के बच्चे इन्हें खुशी से याद कर लेते है और ऐसे बुरे संस्कारों द्वारा अपने जीवन को कुत्सित सांचे में ढालते है। उत्तरदायित्व को भूले हुए संरक्षक बच्चो द्वारा सिक्षा दिला कर वास्तव में विष वपन कर रहे हैं! अश्लील गीतों का प्रभाव आचारच्युत करने का उग्र मसाला है।

३ भूकम्प या बाढ़ से पीड़ितः—जब कहीं दैवयोग से देश के किसी एक भाग विशेष में भूकम्प या बाढ़ आती है अथवा सूखा पड़ता है तो देश भर के ठग भिखारियों की पाँचों घी में हो जाती हैं। झुंड के झुंड सफ़ेद सभ्य कपड़े पहन कर गली गली में डोलते है और कहते फिरते हैं कि हमारे प्रान्त में ईश्वर का प्रकोप हुआ। कुटुम्बी मर गये। दौलत मिट्टी में मिल गई। मकान ढह गये। इसी सिलसिले में कोई बनावटी हृदय विदारक घटना आँसू गिराते हुए कह डालते हैं। कटक की घटनाएँ अटक में और काश्मीर की बातें कुमारी अंतरीप के पास सुनाई जाती हैं। असली मुसीबत के मारों को तो इतनी दूर पहुँच होना भी असम्भव है। उचक्के भिखारी ही ऐसे अवसरों पर साधारण जनता की दया का नाजायज फ़ायदा उठाते है।

बिहार और कोटे के भूकम्प के बाद तो मंगतों का समू उलट पड़ा। उस दिन की घटना याद है जब मैं रतलाम में पं शंकरप्रसादजी के दफ्तर में बैठा था तो १०—१२ स्त्रियों क झुंड आया और एक स्त्री जो बेश कीमती साड़ी पहने हुई थ धरती पर नजर गाड़ कर बोली—चार पांच महीने हुए हमा कोटा शहर में बारूद सुलगने से भारी आग लग गई औ हमारे आदमी मारे गये। पंडितजीने उसी सिलसिले में पूछा— आग बुझाने का प्रयत्न क्यों नहीं किया? उस स्त्रीने उत्त दिया कि नहर में पानी नहीं था। पंडितजी ने कहा—तुम स औरतें बाहर कमाने गई थी। और तुम्हारे सब के पति घरों म चपातियाँ बेल रहे थे जो जल मरे और तुम सबकी सब विधव होगई। तो सकपका गई और आगे का रास्ता नापना शुरु किया। असल में उन्होंने क्वेटा का नाम मात्र सुना था। और उन्हें यह भी मालूम नहीं था कि वहां भूकम्प हुआ था आग नहीं लगी थी। पाठकों के पास भी आशा है कोई गिरोह अवश्य पहुँचा होगा।

दैवी प्रकोप के समय तो सरकार और सार्वजनिक सँस्थाएँ कष्ट पीड़ितों को मदद पहुँचाने की भरसक प्रयत्न करती ही हैं। अत. ऐसे अवसर पर तो सार्वजनिक संस्थाओं के कोष में रकम भेजना ही सहायता पहुँचाने का सच्चा साधन है।

४ धरना देना—कुछ मंगतों ने भिक्षावृत्ति को पूर्णरूप से अपना जन्मसिद्ध अधिकार मान रक्खा है और बरजोरी कर के तरह भीख वसूल करते हैं। ये लोग हृष्टपुष्ट होने पर भी हट पुष्ट और तगड़े होते हैं। ये चाकू, छुरी, कांटे और पैने

हथियार लेकर प्रति दुकान पर जाते हैं और लाल आँखों के ज़रिये पैसा निकलवाने में बड़े घाघ होते हैं। अधिकांश दुकानदार काम काजी होने के कारण पैसा देकर पिण्ड छुड़ाते हैं। पर असल में इस प्रकार पैसा देने से पिण्ड नहीं छूटता और पिण्डी पकड़ी जाती है। यह दान नहीं दुष्कृत्य है-दूध पिलाकर भुजंग को पालना है, गाय दुह कर गंडक को पिलाना है। धूर्त गुण्डे इस दान का अर्थ यह लगाते हैं कि यह फल हमारी धाक का है और वे भविष्य के लिये अधिक सिरज़ोर हो जाते हैं और परिणाम में ग़रीब, निर्बल और अपढ़ दुकानदारों को बहुत तंग करते हैं।

यदि कोई व्यापारी इन्कार करता है तो धरना लगा देते हैं। दुकान के आगे तमाशबीनों का मजमुआ इकट्ठा हो जाता है। मंगतों के रूप मे दुष्ट मुस्टंडे 'कंजूस' आदि उपाधियों की वर्षा करते हैं और इतने पर भी दुकानदार नहीं पिघलता है तो शरीर मे चाकू घुसेड़ने का दिखावा कर हाथ की सफ़ाई से लाल स्याही की बूंदे टपका कर लोहू लुहान का नज़ारा पैदा कर दर्शकों के हृदय मे दया उत्पन्न करते हैं इस प्रकार सरे बाज़ार तूफ़ान मचा देते हैं। पाठकों ने ऐसे दृश्य अवश्य देखे होंगे। चूड़ियों पर डंडे की झंकार से श्रोताओं के कान फूटने लग जाते हैं और व्यापारी के नाक में दम आ जाता है। क्या भारत में दान प्रणाली ऐसे रौद्र काण्ड को पैदा करने के लिये चली थी? चोरी और सिरज़ोरी इसीका तो नाम है।

धरने के सम्बन्ध में एक अद्भुत दास्तान और सुनिये। जब एक गांव की बरात दूसरे गॉव को जाती है तो वहाँ मंगते, भॉड

कंगले जनवासे पर कुत्ते और कौओं की तरह टूट पड़ते हैं। मानो गुड़ पर मक्खियाँ आई हों। दुल्हा के संरक्षक संकोच वश कुछ देते भी हैं पर धूर्त संतुष्ट नहीं होते और कई गुना मांगते हैं और उल्टे जो जो ताने कसते हैं सो भुक्त भोगी ही जानते है।

५ विविध रूपों व कामों से ध्यान खींचनाः—भारत में हराम खोर भिखमंगों की तादाद इतनी बढ़ गई है कि बिना कुछ विशेष ढोंग बनाए उनकी ओर कोई देखता ही नहीं। केवल मांग खाने के लिये ही ये स्वांग भरे जाते हैं। धार्मिक चिह्नों की ओट ज़रूर ली जाती है पर असल में इस प्रकार धर्म को बदनाम करना ही तो है पाठकों की जानकारी के लिये बहुत थोड़े से उदाहरण दिये देता हूँ। इनके ढोंग या पोपलीला के स्वाँग तो सहस्रगुणा अधिक समझिये। (१) नाख़ून बढ़ा कर तपस्वी होने का विज्ञापन करना। (२) गाय के बछड़े पर कौड़ियों से ढँका एक बेलबूटेदार वस्त्र डालना और उसे साथ लिये घूमना। (३) कपड़ों पर लोरियाँ लटकाना या यों कहिये धज्जियों का कवच धारण करना। (४) शरीर के अंगों में—जैसे चोटी, कान, गर्दन, ललाट, पीठ, कमर, जांघ, बाहु, कलाई पर मढ़े हुए चिन्ह लटकाना। (५) गले में साँप बिच्छू आदि जहरीले जानवर लटकाना (६) बन्दर, मैना, तीतर, कबूतर, तोता, रीछ, बकरी, कुत्ता या किसी किसी जानवर को साथ लिये फिरना। (७) जानवरों की बोलियाँ बोलना। (८) पूँगी, शंख, घण्टा, कटोरा, डमरू, डफली तंबूरा, शहनाई, हॉर्न, ढोलक, मजीरे, करताल, हारमोनियम, सारंगी, सीटी, नक्कारा या बिगुल आदि बाजे बजाकर हर समय जनता की शान्ति भंग करना। (९) चीख चीख कर गायन गाना

(१०) मन चाही वस्तु देने का पहले वचन लेना और हल्ला करते डोलना जैसे—हाथी नहीं घोड़ा नहीं, घड़ी नहीं छड़ी नहीं, दाल नहीं आटा नहीं, लोटा नहीं थाली नहीं; ऐसे सैकड़ों नाम की रट लगाना और इष्ट वस्तु का नाम वचन लेकर बताना (११) चिढ़ना कोई सीताराम या राधेश्याम या मिठाई के नाम को सुनकर बनावटी गुस्सा दिखाता है। और किसी नाम को सुनकर बच्चों को पीटने दौड़ता है। इस प्रकार थोड़े ही अर्से में जनता में जानकारी पैदा करना। (१२) विचित्र वाक्य कह कर जैसे एक पैसा लूँगा हज़ार गाली दूँगा। पैसा मिलने पर दातारी के आशीर्वादों की झड़ी लगा देता है। इस प्रकार लोग बार बार कुतूहलवश पैसे ठगाते रहते हैं।(१३)उल्टे वस्त्र पहनना। पुरुष होकर स्त्री का स्वाँग भरना अथवा नित्य नये स्वाँग पलटना। (१४) ज़मीन पर रेंगना, बाँसों पर चलना, उल्टे चलना अथवा नंग धड़ंग रहना। (१५) फेरी लगाना कोई दोहा या वचन बिना कुछ मांगे महीने भर तक फिर कर रोज़ सुनाना। और अन्तमें चन्दा एकत्र करना। पेटेंट दोहा यह है—राम राजा राम प्रजा राम साहूकार है, बसो नगरी लपो राजा धर्म का उपकार है। (१६) जान बूझकर पागल बनना। (१७) मौन धारण करना। स्वयं सिद्ध बन कर किसी साधक द्वारा अपनी प्रसिद्धी फैलाना। (१८) कुछ वाक्य विशेष ज़ोर ज़ोर से उच्चारण करते रहना। हाल ही में जोधपुर में एक व्यक्ति ने "जै सियाराम" की रात दिन रटना लगाई है। पहाड़ी पर चढ़ कर रातभर कई दिन तक ज़ोर ज़ोर से यही शब्द निरंतर पुकारा। शरीर और कपड़ोंपर 'सीताराम' शब्द लिख दिये। और उम्र भर का पेट भराई का साधन बना लिया इस कार्य में जाहिरा तौर पर धर्म की ओट ली पर असल में यह भिख मंगी का विज्ञापन मात्र है।

९ चन्दा एकत्र करना—बहुतसे धूर्त भीख मांगने के नये नये तरीके अख्तियार करलेते हैं । उन नवीन तरीकों में जो अधिकांश में प्रचलित है वह है किसी संस्था के लिये चन्दा लिखवाना । संस्था की जाली रिपोर्ट और फरेबी नामों के प्रशंसापत्र दिखाए जाते हैं । छपी हुई रसीद दीजाती है । यह पुण्य रूप में एकत्र किया चन्दा धूर्तों के पेट ही में पहुंचता है । चन्दा एकत्र करने लिये कारण नये तुले हुए हैं । प्याऊ बनाने के लिये, धर्मशाला बनाना, मन्दिर बनवाना या जीर्णोद्धार कराना, गौशाला, अनाथालय या गुरुकुल चलाना । अत: ऐसी परिस्थिति में किसी अजनबी को किसी अपरिचित संस्था के लिये देना द्रव्य के दुरुपयोग की वृद्धि करना है । आपने स्वयं देखा होगा कुछ लोग हारमोनियम लेकर, दो चार सुरीले कण्ठ वाले ब्रह्मचारियों (!) को साथ ले घर घर गाते फिरते हैं । इस प्रकार अनाथालय में बच्चों को भीख मांगने की तालीम दीजाती है । सिद्ध होता है—चन्दा प्रणाली का दान भी खतरे से खाली नहीं है । भीख मांगने वाले प्रथम वाक्य यह सुनाते हैं । "अपने तन के कारणे मांगत आवे लाज, परमारथके कारणे क्यों कर आवे लाज ।" चन्दा केवल उन्हीं संस्थाओं को दीजिये जो आपके नगर में, गाँव में या प्रान्त में हों या जिन संस्थाओं के संचालन की व्यवस्था से आप परिचित हों ।

कुछ लोग 'कन्या के विवाह' के बहाने धन बटोरते फिरते हैं । उन्हें भिक्षा मांगने पर केवल यही शिक्षा दीजिये कि कन्या को गरीब लड़के को ब्याह, और तब बिना खर्च भी कन्यादान हो सकेगा ।

चौसियों मंगते ऐसे भी देखने मे आए है जो गूँगे होने का बहाना करते है और प्रमाण मे टाइप किया हुआ या छपा हुआ पत्र दिखाते है। यह भी धोखा ही समझिये।

७ कपट द्वारा द्रव्य हड़पना—इस दुष्कृत्य को करने वाले यद्यपि अधिकाँश मे भिखमंगे ही होते हैं पर असल में वे चोर, ठग और उचक्कों की संज्ञा मे आते हैं इस लिये मैं इन फरेबों व चोरियों का यहाँ वर्णन नहीं करूँगा पर ध्यान रहे ये लोग चोरी, धोखा या डाका डालने के पूर्व और पीछे भिखमंगों के रूप मे ही रहते है। इसका कारण यह है कि भिखमंगों का प्रवेश गरीब की झोंपड़ी से लेकर राजा के महल या कचहरी तक आसानी से होजाता है। ये किसी स्थान मे प्रवेश करते नहीं हिचकते क्योंकि अपमानित होना इनके लिये बाँए हाथ का खेल है। दिन भर भीख मांगने के बहाने मौका देखते फिरते है। घर के सामने वे रोक टोक घण्टों खड़े रह सकते हैं अतः मालूम करलेते है कि घरमे आने जाने के रास्ते कौन कौन से हैं? वस्त्र कहां रक्खे हैं? जेवर कहां है? चाबियाँ कहां पड़ी रहती हैं? घरमे कितने व्यक्ति हैं? कौन किस समय आता जाता है? कौन कहां सोता है? फिर मौका देखकर रातको या दुपहरी को चोरी करते हैं। मुसाफिरखानों मे यात्री की आँख बचाकर माल पार करते है। रेल के डिब्बों मे महात्मा का स्वांगकर बिना टिकिट यात्रा करना चाहते है और बैठकों के नीचे पड़े ट्रंकों व गठरियों मे से माल निकाल लेते है। भूले पदार्थ तो प्रायः भिखमंगों ही की सम्पत्ति होजाती है।

८ विद्वता दिखाकर भीख के लिये सहानुभूति पैदा करना—आपके भी अनुभव मे आया होगा कि कुछ लोग

सफ़ेद पोश बने आते हैं और परम चाटुकारी से सभ्य भाषा में दबी ज़बान से वार्तालाप कर क्लिष्ट संस्कृत, फारसी या अंगरेजी की विद्वता का प्रदर्शन करते है। बीच बीच में श्लोक, छंद, कविता आदि की पुट दे देते हैं और अन्त में गिड़गिड़ाते हुए बेरोजगारी मुसीबत या बीमारी का वर्णन करते हुए भीख के लिये हाथ नहीं—पर आँख पसारते है। वे मंगते पढ़े लिखे हैं अतः संभव है कभी ये अधिक धोखा दे दें अतः जनता को इनसे विशेष सावधान रहना चाहिये।

९ अंध श्रद्धा फैला कर ठगना—ये भीख मांगने के पहले लोगों की हस्त रेखाएँ देखते है और लुभाने के लिये सुहावनी बातें वातावरण को देखकर कहते है। गरीबों से कहते है—"तुम्हें धरती मे धन मिलेगा।" विद्यार्थियों को कहा जाता है—"आगामी परीक्षा मे अवश्य उत्तीर्ण होगे।" अमीरों से कहा जाता है—"तुम्हे विदेश की यात्रा मे एक सुन्दर युवती का प्रेम प्राप्त होगा।" इस प्रकार लोगों को झूठी आशा बंधाकर ठगा जाता है।

१० जूए के अंक बताना—कहावत प्रसिद्ध है कि जहाँ लोभियों की बस्ती है वहाँ धूर्त्त भूखे नहीं रहते। कई ठग भिक्षुक फ़क़ीर या साधु की पोशाक में फीचर के अंक, तेजी मंदी के संकेत, गुव्वे की धारणा बताते है। इनकी संख्या भारत में सहस्रों से भी अधिक है। इनमें कुछ अघोर नशेबाज़ भी होते है भंगेड़ी और गंजेड़ी बन कीमियागर होने का झांसा दे लोभियों से चाँदी की डलियाँ हड़पते है।

११ भारतीय अतिथि सत्कार का बेजा फायदा उठाना—भारत में जब कि निस्पृह कर्मशील आदर्श भिक्षु निवास करते थे

उनकी सुविधा के लिये सदावर्त, अन्नक्षेत्र, राम रसोड़ा आदि की सुव्यवस्था थी। पर आजकल के सदावर्त का लाभ सच्चे भिक्षुक उठाने मे सर्वथा वञ्चित रहते हैं क्योंकि अब तो जहां सदावर्त बँटता है वहां मुफ़्तख़ोर कंगलों की भीड़ लगी रहती है जहाँ अन्नक्षेत्र खुले हैं वहां मंगतों ने अपना डेरा डाल रक्खा है।

सदावर्त और अन्नक्षेत्र की स्थापना तभी सार्थक हो सकती है जब सुपात्रों की सेवा हो सके। अतिथि का अर्थ तो उस आगन्तुक से था जिसके आने की कोई तिथि नियत न हो। पर आज तो उस आदर्श अतिथि सेवा—व्रत का बेजा फायदा वे ढोंगी ही उठाते है जो सतिथि हैं अर्थात् जो सदैव ठीक वक्त पर खप्पर फैलाने के लिए कमर कसे तैयार हैं।

भारत के कृषक गरीब होने पर भी स्वभावतः अतिथिसेवा प्रिय हैं। अतः ये धूर्त मुफ्तखोरे मंगते उन्हें बहुत तंग करते हैं जब खेत मे नाज पक कर तैयार हो जाता है तब राजकीय कर, बोहरे का व्याज और मंगतों की मांग तीनों बराबर रहती हैं। मुश्किल से एक चौथाई पाक कृषकों के पल्ले पड़ता है। राज्य का कर भी अब एकमुश्त रक़म मुक़र्रिर होगई है। बोहरे के व्याज से कृषकों का पिण्ड छुड़ाने को गांधीजी और गवर्नमेण्ट सतत उद्योग करते हैं। 'पर मान न मान मैं तेरा महमान' बनने वाले मंगतों की लूट खसोट से बेचारे दीन किसानों को छुट्टी दिलाने वाला कोई वीर कर्मक्षेत्र में नहीं उतर सका है। कोई ऐसी संस्था नहीं दिखाई देती जो देशके अन्नदाताओं को इस प्रकार सताए जाने से छुटकारा दिलवाने को उद्यत हो।

'भिखमंगी' मेरे ख्याल से एक ऐसा विषय है जिस पर हिन्दी के साहित्यिक अबतक चुप्पी साधे हैं। इसके विपक्ष मे

सबल आंदोलन खड़ा करने व तत्संबन्धी साहित्य निर्माण की और उसके प्रचार की सख्त ज़रूरत है। इस संबन्ध में मत जागृत करना वास्तव में टेढ़ी खीर है क्योंकि हमारे भिक्षा के साथ में धर्म की पुट लगी है। वैसे तो मैं स्वयं भिक्षा या पुण्य को परमोपयोगी समझता हूँ पर इसकी प्रणाली के सख्त ख़िलाफ़ हूं।

भारतवर्ष से आधुनिक भिखमंगी की पद्धतिको दूर करने के लिए उपाय अवश्य लाभप्रद सिद्ध होंगे।

[क] दान-प्रबन्धक-सभा की स्थापना करना। जो गृहस्थों से नियमित रूप से दानरूप में वस्त्र और अन्न एकत्र करे और सुपात्र भिक्षुकों को, जो अपाहिज, आपदग्रस्त, बीमार और ज़रूरतमंद हो, सहायता पहुँचावे। दैवी प्रकोप के समय में यही संस्था व्यवस्थित ढंग से तुरन्त सहायता पहुँचाने में समर्थ होवी इस सभा का संगठन भी चर्खासंघ और हरिजन सेवा संघ की तरह अखिल भारतवर्षीय हो।

[ख] सड़क, गली और चौराहे पर बैठ कर या घूमकर तथा घरों के सामने खड़े रह कर भीख मांगना कानूनन अपराध करार दिया जाये। क्योंकि भिखारी लोग ही अधिकांश में प्रजा की

सस्ती ज्ञान-माला

हाय ! मेरी शादी क्यों हुई ?

लेखक

श्री बाल 'कृष्ण' बोहरा 'विशारद'

सम्पादक

श्रीनाथ मोदी 'विशारद'

प्रकाशक—

ज्ञान-भण्डार, जोधपुर

मुद्रक—कुँ० सरदारमल थानवी,

* श्री सुमेर प्रेस, फुलेरारोड जोधपुर *

१९३६] [तीन पैसे

स्थायी ग्राहकों से भिन्न भिन्न ३२ ट्रैक्टों का मूल्य डाक खर्च सहित १॥)

लेखकों से ! (पृष्ठ १८ को देखिये)

स्थायी ग्राहकों की क्रमशः सुनहरी नामाव

[पूरे पते सहित]

७ वें ट्रैक्ट से आगे—१९६ जालमचन्दजी वकील घोड़ों का चौक जोधपुर, १९७ ओसवाल जैन हाई स्कूल अजमेर, १९८ रामलालजी पोरडिया खेतरपाली चौंतरा जोधपुर, १९९ उमरावमलजी शर्मा सांगीदास की पोल यशवंतसराय जोधपुर, २०० मोहनलालजी शर्मा माहिलाबाग स्कूल जोधपुर, २०१ जसराजजी पुरोहित बालोतरा, २०२ महताबचन्दजी मोती चन्दजी बोहरों की पोल जोधपुर, २०३ बदरीदासजी लोया वडेर की गली खांडा फलसा जोधपुर, २०४ सायरनाथजी मोदी हटडियों का चौक जोधपुर, २०५ शांति जिन सेवा मण्डल चौंडराई तखतगढ, २०६ सूरजमलजो मिश्री मलजी वेद फलोधी, २०७ पुखराजजी माथुर रामस्वरूपजी की हवेली नवा बास जोधपुर, २०८ रणजीतमलजी जाणीकार भीनमाल, २०९ मनफूलसिंह जी त्यागी [illegible]पुरी जोधपुर, २१० विवेकचन्दजी भंडारी शाहपुरा जोधपुर, २११ अचलेश्वरप्रसाद शर्मा सरदारपुरा जोधपुर, २१२ मतीदासजी भीकम-चन्दजी शास्त्री विक्रेता कटला बाजार जोधपुर, २१३ अचलमलजी सिंघवी सिंघियों का चौक जोधपुर, २१४ चांदमलजी जैन शांति जैन विद्यालय पाली मारवाड, २१५ सुमेरचन्दजी मुहता धान मण्डी जोधपुर, २१६ श्री रत्नमल जी भांडावत B.A L.L B माणक चौक जोधपुर, २१७ होश्यारचन्दजी भण्डारी मिन्त्रावटों का बास जोधपुर, २१८ रूद्रकरणजी धानमन्डी जोधपुर, २१९ एल. टी. शाह आईदानजी मजाजी बंगडी के व्यापारी बाजार गेट स्ट्रीट फोर्ट बम्बई, २२० सरेमलजी गुलाबचन्दजी जैन बाल मित्र मण्डल करजे गुदा बालोतरा, २२१ आत्माचन्दजी भंडारी विटम हॉस्पिटल जोधपुर

(आगे ९ वें ट्रैक्ट में देखिये)

१॥) भेज आप भी स्थायी ग्राहक बनिये।

हाय ! मेरी शादी क्यों हुई ?

मेरा मस्तिष्क चक्कर खा रहा है। हाथ पाँव शिथिल हो रहे हैं। कलेजा काँप रहा है। हृदय में तूफ़ान मच रहा है। आँखें जल रही हैं। मैं खाट पर पड़ा पड़ा अपने भाग्य को ठोक कर कराह रहा हूँ—"हाय ! मेरी शादी क्यों हुई ?"

मैं चुप हूँ। सुस्त पड़ा हूँ। जीवन की अतीत की याद, वेदना और नैराश्य के कारण, रहे सहे आनन्द को भी मिट्टी में मिला रही है। दो और दस बारह—पूरे बारह वर्ष—व्यतीत हो चुके हैं। मैं पुस्तकों का भार मस्तक पर रक्खे घर लौट रहा हूँ। अचानक मुझे एक सम्बन्धिन ने बुलाया। मैं चला गया। वहाँ जवान, प्रौढ़ और बूढ़ी महिलाओं का जमघट था। कुछ देर की इशारेबाज़ी के बाद मेरी सम्बन्धिन ने पूछा—"क्यों ठीक है न ?" "लड़का तो चोखा है!" उत्तर मिला। मैंने अपनी समझ को समझाने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु समझ में ख़ाक भी न आ सका। कुछ दिन बाद मैंने सुना कि घर पर नाच-रंग है और कारण यह था कि मेरी सगाई हुई है।

मैंने अम्मा से पूछा "सगाई क्या होती है? उसका रंग कैसा होता है?" अम्मा ने उत्तर दिया, "अभी नहीं समझ सकता बेटा!" मैंने ज़िद की। उन्होंने कहा "तेरे लिए एक गोरी बहू लायेंगे।" इस [illegible] हो। उस समय मैं शायद आठ वर्ष का था।

नाच और मुजरे के लिए महफ़िल हुई। ताऊजी मुझे गोद में लेकर गाना सुनने बैठे। मेरे हाथों से होकर अनेक रुपए नाचने वाली यौवना के कर कमलों में गए। चँद्रमुखी के कटाक्षों के शिकार चांदी बरसाने लगे। उसके भ्रू-इंगितों में समाज के बड़े बड़े धनी मानी और प्रभावशाली व्यक्तियों को दिवाना बनाने की शक्ति देखी। विजया देवी की पुट दी हुई बादाम की चक्कियों पर खूब हाथ साफ़ हुआ। सुगंधित द्रव्यों से कमरा महक उठा। सिर्फ़ पान और सिगरेट का बिल ही बीस रुपए का हुआ। दस ही घण्टों में सुबह होने के पहिले पहिले इस रुपहरी तन्वशी के पास पूरे दो सौ थे और घर में नक़द चार सौ पर पानी फिर चुका था।

सुबह ज़रा तमक कर अम्मा ने बाबूजी से कहा, "इस तरह तो जल्द ही झोली सम्भालनी पड़ेगी।"

बाबूजी ने मुँह बना कर उत्तर दिया, "तुम तो औरत हो। लँहगा पहन घर में शेर मारती हो। मुझे चार भले आदमियों में मुँह दिखाना पड़ता है। समाज में इज़्ज़त रखनी पड़ती है। ज्ञाति जाति में आबरू रहने का सवाल है। तुम्हारी तरह घूँघट निकाल कर थोड़े ही चलना है। चूड़ी पहन कर घर में तो बैठना ही नहीं है। और फिर मेरे होते हुए तुम्हें चिन्ता ही क्या है? [illegible] रहा तो एक नहीं दो हार बनवा दूंगा। अम्मा अपना सा मुँह लेकर रह गईं। घर में होली जल रही थी और बाहर बाबू दिवाली मना रहे थे

ताऊ डाक्टर ज़रूर थे पर ताई की तरेरी आँख देख उनके होश फाख्ता हो जाते थे। ताई की एक डाट से उनकी नानी मर जाती थी। उसको दुखी देख कर उनका गला सूख जाता था। ताई के वाक्य उनके लिए 'वेद वाक्य' थे। उनकी मामूली सी फरमाइश उनके लिए हाईकोर्ट का अटल हुक्म था। ताई का किसी पर कोप हुआ और ताऊ ने जन्म जन्मान्तर के लिए उस से वैर बाँधा। ताऊ बाहिर तो पक्के शेर थे परन्तु घर मे ताई के सामने--थे निरे काठ के उल्लू, भीगी बिल्ली और जोरू के ग़ुलाम।

अम्मा का स्वभाव था आग की तरह तेज़ और ताई का था पेट्रोल की तरह भभक उठने वाला। दोनो मे बने तो कैसे? आग और पेट्रोल के संयोग मे दोनों के अधिक भड़कने की सम्भावना थी। हुआ भी वही जो ऐसे अवसर पर हुआ करता है। एक दिन दोनों मे खूब तन गई। ताई का तनना था कि डाक्टर साहब ने बम्ब की तरह फट कर कहा, "बस आज से मेरे और भाई के बीच न्याति--जाति तक का भी कोई सम्बन्ध नहीं।" इस प्रकार बात ही बात मे, दो ही दिन मे, दोनों घरों के बीच फूट पाँव तोड़ कर जम गई।

मेरे विवाह के यों तो शुभ (परन्तु वास्तव में अशुभ) मुहूर्त का आविर्भाव हुआ। मैंने उत्सुकता का पेट भरने के लिए अम्मा से पूछा, "अम्मा मेरा विवाह क्यों होगा? तेरा क्यों नहीं होता? बिना तेरे विवाह के मै तो विवाह नहीं करूँगा हाँ।" बेटे की इस अनोखी बौछार को सुन कर वह दंग रह गई और हँस कर बोली, खाने को खूब मिठाई मिलेगी, पहनने

को बढ़िया बढ़िया कपड़े और चढ़ने को सुन्दर घोड़ा और तुम्हें क्या चाहिए मोहन ? विवाह की यह व्याख्या सुन मैं खुश हो गया, और सोचने लगा तब तो बड़ा मज़ा आवेगा। बस वर की प्रत्येक बात को मैं बड़ी उत्सुकता और चाव से देखने लगा।

विवाह के नान्दी पाठ—मंगलाचरण में ही ताई ने सुख-सूचक-स्वरों को बेसुरा कर रंग में भंग कर दिया। रस में विष घोल बैठीं। ताऊ का दिमाग़ था सातवें आसमान पर। बाबूजी मनाने को गए तो कहा, "पहिले अपनी भावज से तो निबट लो। मैं तो तैयार ही हूँ।" बाबूजी ने ताई से माफ़ी माँगी। मस्तक चरणों में रक्खा पर ताई तिल भर भी न हिली। बाबूजी ने आंसू बहा कर पैर धोये। करुणा भाव से विनय कर साक्षात् करुणा को खड़ा कर दिया पर ताई का पाषाण हृदय इस से नरम न हुआ। बिलकुल न पिघला। अचल के समान अचल रहा। ताऊ में हृदय था। वे भाई की कातर स्वरों में यह प्रार्थना न सुन सके। पिघले ही नहीं बह भी गए। हिम्मत की और ताई को ज्यादा ज़िद न करने की सलाह दी। शायद इसीसे ताई मान गई वरना उनका तो इरादा विचार था कि देवर से नाक तक रगड़वा कर छोड़ें। ख़ैर कुछ खुशामद दरामद के बाद मामला कुछ ढंग पर आया। काफ़ी कहने सुनने और विनम्र निवेदन के बाद ताई और ताऊ ने विवाह में सम्मिलित होना स्वीकार किया।

ताऊ ने विवाह में भाग तो लिया परन्तु अनेक शर्तों के साथ। विवाह के ताज मैंगनी की भी प्रमुख थीं। नहीं छोटी मोटी, वे तो

अनेक थीं। सब बातें सर पर रख कर मानी गईं। विवाह में ताऊ की आज्ञा परमेश्वर की आज्ञा थी। यही क्या कम अहसान था कि वे हाथ जुड़वा कर भी विवाह में भाग ले रहे हैं।

विवाह था डॉक्टर साहब के भतीजे का। ख़ूब नाच रंग हुआ। सिगार-सिगरेट, सोडा-लेमनेड, चाय दूध और पान बीड़ी का बाज़ार सर्व-साधारण के लिए मुफ़्त में खोल दिया गया था। डाक्टर साहब के अनेक मित्र सुरा को सुनहरे पात्र से मुँह में ढुलकती देख कर ख़ुश हो रहे थे। यहाँ भी कमी क्या थी? डाक्टर साहब को तो घर से कुछ ख़र्च करना ही न था। मैख़ाना आसव की लाल धार से रंजित हो, मदिरा भक्तों को तरंगित करने लगा। बोतल बोतल के काग खुले। प्याली पर प्याली उड़ी, साधारण शराब किस गिनती में? ह्विस्की (whiskv) बीयर (Bear) ब्लैक एन्ड व्हाइट (Black&white) जॉहन साहब की चाबी वाली बोतलें। घंटे घंटे के बाद टूटती और उड़ती थीं।

मधुशाला तक ही नौबत न थी। मिठाई की ख़ास बात तो बाक़ी ही थी। दूर दूर से हलवाई बुलाए गए थे। मिठाई भी एक नहीं सैकड़ों भांति की तैयार हुई थीं। विविध प्रकार के मिष्टान्न, षटरस भोजन सब वकील व्यञ्जनों के डाक्टर साहब के ही नहीं प्रत्येक ऐरे ग़ैरे नत्थू ख़ैरे के थाल की शोभा बढ़ा रहे थे। डाक्टर साहब को रोकने वाला ही कौन था। रोक कर कुछ कहे इतना सामर्थ्य भी किस में थी? किसी को क्या ग़रज़ थी कि ज़रा सी बात के लिए बुरे बिगड़ी करे। हँसी ख़ुशी के और कौन से अवसर हैं?

पूरे बीस हज़ार का ज़ेवर जब अम्मा ने संदूक से दिया दे
तो सिर ठोक लिया। पर कर क्या सकती थी ? जाति की
ठहरी। उसका स्त्रीत्व (पतिव्रत धर्म) भी इसी में था
स्वामी की मनमानी के विरुद्ध चूं तक न करे। उसकी प्रत्ये
आज्ञा को चाहे ज़हर खाने के लिये ही क्यों न हो, कभी न टा
क्योंकि उसने हिन्दू धर्म में, इस अनोखी समाज में जन्म ले
का पाप किया था। यह उसके सर पर कलंक था। यदि यह व
बूढ़ी बन कर कुछ कहती भी तो सुनने वाला कौन था ? अतए
उसे सर ठोक कर ही रह जाना पड़ा। वह हिन्दू नारी
जिसका भाग्य यहीं तक सीमित है।

विधवाओं का मूल कारण, देश के पतन का मूल, बच्चों क
काल, जवानों का नाश, बड़े बूढ़ों का आनन्द, समाज का कलं
और शिक्षा का शत्रु विवाह आया। धर्म के ठेकेदारों द्वारा र
हुआ खेल बाल विवाह हो आया। आया और ज़रूर ही आया
पर मैं तब तक भी यह न समझा था कि विवाह है क्या वस्तु
क्यों किया जाता है ? हाँ सुन्दर आभूषण, रेशमी कमीज़, मखमल
कोट, ज़री का साफ़ा और विलायती बूटों से सुसज्जित हो
घोड़े पर बैठ, बड़े समारोह से सभ्यता के उस नग्न प्रदर्शन
साथ जिसमें समाज की सैकड़ों पद दलित बहिनें अपने पा
पेट के लिए समाज में इज़्ज़तदार कहलाने वाले नर पिशाचों क
कुवासनाओं की शिकार बन अपने नाज़ और नखरों से उन
पतन की ओर घसीट रही थीं। मैं नगर में घूम कर ससुरा
पहुँचा। रात का रेशमीन ज़री का शाल ओढ़, स्वर्ण के आभू
षणों से अपने बाल शरीर को अलंकृत कर मैं ससुराल में विश्रा

मण्डप के नीचे जा बैठा। इसी समय एक लड़की आई। तुरन्त विवाह मंडप की आग विवाह के लिए (?) या मुझे जिन्दा जलाने के लिए तैयार की गई। तभी नींद ने ज़ोर मारा और मैं सो रहा। उठते ही सूर्य्य दर्शन के साथ सुना मेरी शादी हो गई।

पहिले तो विवाह से मुझे कुछ भी आनन्द न आया पर बाद में मिठाई मिलने पर विवाह में न आने वाले आनन्द की सारी कसर निकल गई। बड़े आनन्द और रुचि से मिठाई खाई। बस इसी को मैंने सच्चा विवाह समझा। पहिला सब कार्य तो मेरे विवाह के बहाने रचा एक खेल था?

इस प्रकार मैं अभागा, अपने ही माता पिता द्वारा विवाह की दहकती आग में झोंक दिया गया। जिसमे मैं आज तक झुलस रहा हूँ वही आग आज भी मेरे हृदय में जल कर मुझे भस्मीभूत बनाती जा रही है। ओफ़! मार्मिक पीड़ा! आह! कराह भी नहीं सकता कि "हाय! मेरी शादी क्यो हुई।"

स्मृति के धुंधले प्रकाश में देखता हूँ कि मेरी परीक्षा निकट थी। मैं आठवीं मे पढ़ता था। सुबह का समय था। स्कूल की छुट्टी थी। पिता ने कमरा साफ़ करने को कहा। मैं करने लगा। खूब परिश्रम किया। परन्तु कमरे का काम पूरा न हुआ। साफ़ तो कर दिया परन्तु बहुत सा सामान बाहिर रह गया। मैं थक कर घूमने चला गया। जब रात को घूम कर आया और खाना खाने बैठा तो देखा कि एक तरफ़ कुछ मिठाई रक्खी है। मैं पूछने लगा "यह मिठाई किस की है?" सब ने यही उत्तर दिया, "यह तुम्हारे ही लिए है।" मैं खाना खाकर सोने लगा। अम्मा

ने कहा, "उठ पहिले कमरे में से बाबूजी की क़मीज़ ला दे।" मै कमरे में गया। अन्दर जाकर कुछ विस्मय हुआ। सोचा यह विशेष सजावट और भावभंगी के चित्र क्यों? मै क़मीज़ ले ज्यों ही मुड़ा कि भाभी ने एक लड़की को अन्दर धकेल तुरन्त दरवाजा बन्द कर दिया। मैं भीतर का भीतर रह गया।

इस समय मै बारह वर्ष के लगभग था। स्कूल की शिक्षा का पूरा असर था। बीसवीं सदी के सभ्य कहलाने वाले लड़कों के साथ रह कर मैंने कामशास्त्र का अध्ययन कर लिया था। इस अवसर को देख तुरन्त ही मैंने समझ लिया कि आज मेरी सुहाग रात है। यह लड़की मेरी ही विवाहिता पत्नी है।

मेरे मित्र थे बीसवीं सदी के शिक्षालय मे शिक्षा पाने वा‍ जवान लड़के—फ़ैशन के दादे। साफ़ धुली कमीज़ पहन ल‍ बालों को लेवेण्डर से चिकना कर, बालों में टेढ़ी मांग निकाल भाल पर लाल बिन्दी दे आँखें मटकाते, रास्ते की प्रत्येक शरीफ़ घर की जवान लड़की को छेड़ते हुए चलने वाले—समाज के धनी मानी सज्जनों के सपूत! फिर आदर्श गुरुओं की शिक्षाओं का भी मुझ पर काफ़ी रंग था। ब्रह्मचर्य के लाभ को मै ख़ू‍ जानता था।

पर यारो! यहाँ कुछ बात ही दूसरी थी। इधर मैं मा‍ शर्म के मरा जा रहा था तो उधर मेरी पत्नी लज्जा के झोंक‍ मे लाजवन्ती पेड़ की तरह कुम्हला रही थी। फल यह हुआ कि‍ वह रात भर कोने में बैठी रही। शायद रोती रही हो। औ‍ मैं मेज पर पड़ा पड़ा सुबह होने की बाट जोहता रहा। सेज बिछी की बिछी रह गई, लैम्प जलता ही रहा और मिठाई पड़ी की पड़ी ही रह गई

मैंने अब कुछ समझा कि विवाह क्यों होता है? और क्या होता है? मुझे इस प्रकार के पराधीन जीवन पर बड़ी घृणा हुई। अम्मा से खूब कहा सुनी हुई। वह कब मानने वाली थी। नक्कार खाने मे तूती की आवाज़ ही कितनी! उसने लाल हो डपट कर कहा "कुछ तो शर्म कर छोकरे! बस! तुझे अपनी बहु के सम्बन्ध मे कुछ भी कहने का हक नहीं। क्या हम मर गए हैं, जो तू अभी से मन मानी कर रहा है। शर्म नहीं आती निर्लज्ज कहीं का, क्या स्कूल मे यही पढ़ाया जाता है कि मां बाप का कहना न मानो। इस प्रकार पत्नी संबन्धी कोई भी शब्द यदि मेरे मुंह से निकल जाता तो अम्मा सिंहनी की तरह गरज उठती और मैं भेड़ के बच्चे की तरह सहम जाता पर इस प्रकार अपने अधिकारों पर आंच आते देख कर मैं मन ही मन जलता रहा।

कैसी विकट समस्या थी। अम्मा चाहती थी पोते-पोती! मुझे डर था ब्रह्मचर्य्य भंग का, बापू चाहते थे वह घर पर रहने लगे तो दो चार जेवर वापिस मांगलें। ससुराल वाले देखते थे कि वहां रह कर हमारी लड़की को काम करना पड़ेगा। वे पूंजीपति थे। इस प्रकार काम करना उनके लिए जहर का प्याला और सरासर अपमान था। यही नहीं स्वयं देवीजी को मेरे पास आना कालके पास जाने के समान जान पड़ता था। मैं भी चाहता था कि पत्नी से बचूँ। वह आग है। पत्नी चाहती थी पति से बचूँ। वह हौआ है। पर मां बाप कभी मानने वाले न थे।

कैसी विकट समस्या थी ? ऊपर से कितनी सरल परन्तु अन्दर से कितनी भयंकर !

इधर विवाह के बाद पिताजी की आर्थिक स्थिति एक दम बिगड़ी। पास का सारा धन जाता रहा। डाक्टर साहब ने विवाह में भाग तो लिया परन्तु बरबादी करने में कोई कसर उठा न रक्खी थी। अब बाबू अम्माँ पर, मुझ पर और बहिन पर ज़रा ज़रासी बात पर चिढ़ जाते यहाँ तक कि मार तक बैठते थे। करते क्या हारों का इससे बड़ा और हथियार ही कौनसा है ?

मैं सोलह का हुआ पत्नी भी सोलह की हुई। अब भी वही हाल था। न वह चाहती मैं जाऊँ और न मैं ही चाहता कि वह आए। परन्तु मैं जादू की तरह बदला। मैंने सोचा जब जीवन इसके साथ ही बिताना है तो कम से कम इसे पढ़ा तो दूँ। मेरी सुसराल और घर एक ही शहर में थे। अम्माँ पत्नी को रोज बुला ही लेती थीं। अब मैं चाहता था कि वह मुझ से लज्जा छोड़ हँसे बोले और पढ़े। परन्तु वह चाहती थी कि कुछ दिन न बोल कर पति को चिर गुलाम बनालूँ। दिन भर वह लड़कियों के साथ कंकर खेलती हँसती चाहे जहाँ घूमती और रात को लज्जा की मूर्तिमान देवी बन जाती बस इस प्रकार मेरा रहा सहा धैर्य भी जाता रहा।

मैं चाहता था एक हँस मुख पत्नी जीवन की एक सहचरी। और वह चाहती थी एक गुलाम पति। मैं था एक ग़रीब घर और वह थी एक पूँजीपति परिवार की इकलौती लड़की।

में जाता प्राची की ओर तो उसका मार्ग पश्चिम की ओर था। मे जितना विनयशील नम्र और उदार था वह उतनी ही प्रमदा, अहंकारिणी और अकड़ थी। मैंने उसे अर्द्धांगिनी समझा और उसने मुझे एक खरीदा हुआ गुलाम। कितनी विषमता थी ?

मैंने पढ़ने का प्रस्ताव रक्खा। उसने तमक कर उत्तर दिया "तुम जहर खा लो फिर मैं पढ़ लूँगी। मुझे नौकरी तो करनी ही नहीं है। तुम खाना कपड़ा नहीं दे सकते तो साफ़ जवाब क्यों नहीं दे देते। पढ़ने की ओट क्यों लेते हो। मैं क्या चाण्डालिन हूँ जो पढ़ूँ। मुझे पढ़ कर क्या करना है ? मुझे किसी के सामने हाथ नहीं पसारना है। तुम जैसे चार को मैं अपने पीहर से खिला सकती हूँ। देखो तो विचारे का मुँह जो मुझे पढ़ने को कहता है। अगर दूसरे ने कहा होता तो कच्चा ही चबा जाती। जेल भिजवा देती। उसे फौरन मालूम हो जाता कि आनरेरी मैजिस्ट्रेट साहब की लड़की का अपमान करना कोई सहज बात नहीं है। पर क्या करूँ ? लोक निन्दा का भय है नहीं तो पढ़ने के लिए कहने का मज़ा बतला देती। पूरे छ महीने तक जेल की चक्की पिसवाती।"

मैं अवाक् रह गया।

उसने फिर मेरी ओर देख कर कहना शुरू किया "मुझे क्या गए घर की समझते हो जो पढ़ने को कहते हो। मैं क्या ईसाइन हूँ जो पढ़ूँ ? क्या मुझे किस्तान समझा जो बार बार पढ़ने को कहते हो। तुम्हें मुझे पढ़ने को कहते हुए शर्म भी तो नहीं आती।" इन बातों को आप कपोल कल्पित समझने पर इसमें

उसका दोष नहीं था वह था इस पापी और अन्धे समाज का जिस में उसका जन्म और पालन पोषन हुआ था। पर यह एक दिन की बात नहीं थी! रोज़ यही हाल था। एक दिन को होती तो सह भी जाता। स्थिति भयंकर होती जा रही थी।

क्रमशः मुझे वैवाहिक जीवन से घृणा होने लगी! रात दिन मैं सोचा करता था कि क्या यही वैवाहिक जीवन है? क्या कभी मेरा जीवन सुखमय होगा? पर शीघ्र नैराश्य आशा का गला घोंट कर कहता "नहीं यह आशा दुराशा मात्र है" उठती आशा पर इस प्रकार पानी और पाला पड़ता देख हृदय को ठेस और आघात पहुँचा। सहसा चोट पर चोट खाते वह विक्षत होगया।

मन ने प्रश्न किया मां बाप को क्या अधिकार था कि मेरा विवाह किया जब कि विवाह के अर्थ तक का मुझे पता न था? क्या सिर्फ़ उनके द्वारा भेज दिया गया प्राणी बिना इच्छा के विवाह की सांकल में बांधा जा सकता है? क्या वास्तव में यह विवाह है! क्यों न तलाक देकर संयम पूर्वक अपना जीवन बिताऊँ? कभी कभी तो मैं इतना उग्र हो जाता और विचारने लगता था कि क्यों न ऐसी गुडमर्द पत्नी को छोड़ दूँ? मा बाप को उनके किए का फल अवश्य मिलना चाहिए।

हठात् मेरी इस उग्रता की सन सनाहट पिता के कुछ मित्रों के कानों तक जा पहुँची। उन्होंने रोष पूर्वक कहा, लड़का हाथ से निकल गया। किसी काम का न रहा! बाप को कमा कर क्या देगा? कुछ ही दिनों में जूतों से मारेगा। मेरी आत्मा इस प्रकार की आलोचनाएँ सुनकर कांप उठती! मन ही मन रो

उठता और कहता ये क्या जानें कि इतने विरोध के साथ भी मैं मां बाप का कितना आदर करता हूँ। उनसे कितनी श्रद्धा रखता हूँ।

असहनीय वेदना, भयंकर कसक, प्रलयकारी पीड़ा और दग्ध दुख से मैं जला जा रहा था। रक्त हीन मुर्दा सा हो गया। आशा पर ओस पड़ गई। साहस और जोश कुचल दिया गया। मैं ज्वर पीड़ित हुआ और साथ ही प्रमेह से प्रपीड़ित वीर्य की कमी से जिसका कि कारण यह विवाह की आग थी मैं ज़िन्दा हो जलने लगा।

आज दो वर्षों से मैं खाट पर पड़ा हूँ। मेरे हृदय में भयंकर तूफ़ान उठ रहे हैं। मेरी नस नस से आग सुलग रही है। मुझे जीवन से घृणा हो चुकी है! सब रिश्तेदार मेरी खाट पर बैठे हैं। मैं किसी का मुँह देखना नहीं चाहता! अपने किए पर कुछ ही घण्टों बाद मां बाप आंसू बहाने वाले हैं!

रही सही धुन्धली स्मृति पर अन्धकार की गहरी कालिख पुत रही है! नेत्र बन्द हैं। सांस ज़ोर से चल रही है! और प्रत्येक ज़र्रे ज़र्रे से यह आह निकल रही है—हाय! मेरी शादी क्यों हुई?

पानी गर्म हो रहा है। नाड़ी हाथ से निकली। नसें टूटीं। घर में कुहराम मचा। हृदय का स्पंदन शिथिल! फिर बन्द। अन्धेरा घोर अन्धेरा—भयंकर कालापन!

क्षीण ज्योति—ज्योति और प्रकाश चारों ओर वही ध्वनि—

हाय! मेरी शादी क्यों हुई?

उसका दोष नहीं था वह था इस पापी और अन्धे समाज का जिस मे उसका जन्म और पालन पोषन हुआ था। पर यह एक दिन की बात नहीं थी! रोज़ यही हाल था। एक दिन को होती तो सह भी जाता। स्थिति भयंकर होती जा रही थी।

क्रमशः मुझे वैवाहिक जीवन से घृणा होने लगी! रात दिन मैं सोचा करता था कि क्या यही वैवाहिक जीवन है? क्या कभी मेरा जीवन सुखमय होगा? पर शीघ्र नैराश्य आशा का गला घोंट कर कहता "नहीं यह आशा दुराशा मात्र है" उठती आशा पर इस प्रकार पानी और पाला पड़ता देख हृदय को ठेस और आघात पहुँचा। सहसा चोट पर चोट खाते वह विकृत होगया।

मन ने प्रश्न किया मां बाप को क्या अधिकार था कि मेरा विवाह किया जब कि विवाह के अर्थ तक का मुझे पता न था? क्या सिर्फ़ उनके द्वारा भेज दिया गया प्राणी बिना इच्छा के विवाह की सांकल से बांधा जा सकता है? क्या वास्तव में यह विवाह है! क्यों न तलाक़ देकर संयम पूर्वक अपना जीवन बिताऊँ? कभी कभी तो मैं इतना उग्र हो जाता और विचारने लगता था कि क्यों न ऐसी गुठमर्द पत्नी को छोड़ दूँ? मा बाप को उनके किए का फल अवश्य मिलना चाहिए।

हठात् मेरी इस उग्रता की सन सनाहट पिता के कुछ मित्रों के कानों तक जा पहुँची उन्होने रोष पूर्वक कहा, लड़का हाथ से निकल गया। किसी काम का न रहा! बाप को कमा कर वो क्या देगा? कुछ ही दिनों में जूतों से मारेगा। मेरी आत्मा इस प्रकार की आलोचनाएँ सुनकर कांप उठती! मन ही मन रो

उठना और कहता थे क्या जाने कि इतने विरोध के साथ भी मैं माँ बाप का कितना आदर करता हूँ। उनमें कितनी श्रद्धा रखता हूँ।

असहनीय वेदना, भयंकर कसक, प्रलयकारी पीड़ा और दग्ध दुख से मैं जला जा रहा था। रक्त हीन मुर्दा सा हो गया। आश पर ओस पड़ गई। साहस और जोश कुचल दिया गया। मैं ज्वर पीड़ित हुआ और साथ ही प्रमेह से प्रपीड़ित वीर्य की कमी से जिसका कि कारण यह विवाह की आग थी मैं ज़िन्दा हो जलने लगा।

आज दो वर्षों से मैं खाट पर पड़ा हूँ। मेरे हृदय में भयंकर तूफ़ान उठ रहे हैं। मेरी नस नस में आग सुलग रही है। मुझे जीवन से घृणा हो चुकी है! सब रिश्तेदार मेरी खाट पर बैठे हैं। मैं किसी का मुँह देखना नहीं चाहता! अपने किए पर कुछ ही घण्टों बाद माँ बाप आंसू बहाने वाले हैं!

रही सही पुन्धली दृष्टि पर अन्धकार की गहरी कालिख पुत रही है! नेत्र बन्द हैं। सांस ज़ोर से चल रही है! और प्रत्येक ज़र्रे ज़र्रे से यह आह निकल रही है—हाय! मेरी शादी क्यों हुई?

पानी गर्म हो रहा है। नाड़ी हाथ से निकली। नसें टूटीं। घर में कुहराम मचा। हृदय का स्पंदन शिथिल! फिर बन्द। अन्धेरा घोर अन्धेरा—भयंकर कालापन!

क्षीण ज्योति—ज्योति और प्रकाश चारों ओर वही ध्वनि—

हाय! मेरी शादी क्यों हुई?

सस्ती ज्ञानमाला के लिये लेखों की आवश्यकता

प्रिय लेखक महोदय !

सार्वजनिक हित के कला, धर्म, विज्ञान, शिक्षा, समाज व साहित्य विषयक निबन्ध, प्रहसन, कहानी, पद्य, जीवनी लिख कर भेजिये। प्रत्येक लेख फुलस्केप साइज के लाइनदार १२ कागजों पर चौथाई हाशिया छोड़ कर एक तरफ लिखा हुआ मैटर एक ट्रैक्ट के लिये काफी होगा। शीर्षक प्रश्नवाची होना चाहिये। राजनैतिक विषयों के लेख न हों।

प्रत्येक स्वीकृत लेख पर लेखक को मेहनताना दिया जाता है

ट्रैक्ट जो छप चुके—(१) शिक्षित बेकार क्या करें ? (२) ग्राम सुधार कैसे हो ? (३) मृत्यु भोज कैसे रुके ? (४) स्त्रियों के कार्य्य क्षेत्र क्या हों ? (५) आदर्श दिनचर्य्या क्या हो ? (६) वृद्ध विवाह कैसे रुके ? (७) कब तक चूसते रहेंगे ? (८) हाय ! मेरी शादी क्यों हुई ? (९) जीवन प्रभावशाली कैसे बने ?

ट्रैक्ट जो छप रहे है—उन्नति का मूल मन्त्र क्या है ? हम अंग्रेजों से क्या सीखें ? हारमोनियम बजाना कैसे सीखें ? गृह क्लेश कैसे मिटें ? फिर अछूत क्यों ? संजीवनी शक्ति कैसे प्राप्त हो ? धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा कैसे रुके ?

लेख जो चाहिये

१ अच्छी आदतें क्या और कैसे डाली जांय ? २ हम शतायु कैसे हों ? ३ हम क्या पढ़ें ? ४ विज्ञापन कार्य्य कैसे किया जाय ? ५ शरीर कैसे स्वस्थ रहे ? ६ सुख का मार्ग क्या है ? ७ पूँजी कैसे बढ़े ? ८ सफलता कैसे प्राप्त हो ? ९ हम दुःखी क्यों ? १०

हम क्या सीखें ? ११ दुकानदारी कब सफल हो ? १२ बचावें कैसे १३ ऋण मुक्त कैसे हों ? १४ वेश्या वृत्ति कैसे दूर हो ? १५ धर्म की ओट में क्या क्या अनर्थ हो रहे हैं ? १६ चरित्र गठन कैसे हो ? १७ गृह प्रबन्ध कैसे किया जाय ? १८ समाज सुधार कैसे हो ? १९ स्मरण शक्ति कैसे बढ़े ? २० क्या ईश्वर सचमुच विद्यमान है ? २१ सत्यानाश कैसे हुआ ? २२ क्या जातीय प्रथा घातक है ? २३ हम स्वावलम्बी कैसे बनें ? २४ प्रकाशन कब सफल हो ? २५ वक्तृत्व शक्ति कैसे बढ़े ? २६ समालोचना कैसे लिखी जाय ? २७ जीवन संग्राम मे विजय प्राप्ति के साधन कौन से ? २८ गुप्त व्यभिचार कैसे रुकें ? २९ घासलेटी साहित्य का प्रचार कैसे रोकें ? ३० हमारी दान प्रणाली आदर्श कैसे हो ? ३१ मनुष्य जीवन का उद्देश्य क्या ? ३२ मनुष्य के कर्त्तव्य क्या हैं ? ३३ संसार का सर्व श्रेष्ठ व्यक्ति कौन ? ३४ अवकाश का सदुपयोग कैसे किया जाय ? ३५ वर्तमान आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली में क्या सुधार हों ? ३६ जिरह कैसे की जाय ? ३७ मनको वश मे करने का उपाय क्या है ? ३८ सभा का संचालन कैसे किया जाय ? ३९ मरने के बाद आत्मा कहां जाती है ? ४० विना पूँजी के धन्धे कौन से ? ४१ कहानी कैसे लिखी जाय ? ४२ दुर्घटनाएं कैसे रुकें ? ४३ क्या यूरोप वाले आस्तिक है ? ४४ सिनेमा-टाकी में क्या सुधार हो ? ४५ नेत्र रक्षा कैसे हो ? ४६ सोलह संस्कार कौन से ? ४७ कौन से आसन उपयोगी हैं ? ४८ दुकान की बिक्री कैसे बढ़े ? ४९ कार्य्यालय की व्यवस्था कैसे की जाय ? ५० हम क्या थे ? ५१ हम किधर जा रहे हैं ? ५२ प्रूफ संशोधन कैसे किया जाय ? ५३ अखबार के ग्राहक कैसे बढ़ें ? ५४ उत्तम विनोद के साधन कौन से ? ५५ क्या फलाहार प्राकृतिक है ? ५६ भारतका भला किसमें ? ५७ क्षयरोग से कैसे बचें ? ५८ बाल मृत्यु संख्या

कैसे घटे ? ५९ क्या विवाह आवश्यक है ? ६० वैवाहिक जीव
कैसे सुखी हो ? ६१ नागरी लिपी में क्या सुधार हों ? ६२ संसा
की आत्माओं में परस्पर क्या सम्बन्ध है ? ६३ मनुष्य की पहिचा
कैसे हो ? ६४ प्रकृति हमें क्या सिखाती है ? ६५ शांति कब प्रा
हो ? ६६ रोगी की सेवा कैसे की जाय ? ६७ क्या तलाक प्रथ
उपयोगी है ? ६८ तम्बाखू से क्या हानि है ? ६९ जेन्टिल मेन
के नशे कौन से ? ७० उपवास चिकित्सा कैसे हो ? ७१ शिक्षा
कैसे हो ? ७२ उपदेशक क्या जानें ? ७३ सच्चा सुख क्या है ? ७
आदर्श सन्तान कैसे पैदा की जाय ? ७५ गौ पालन कैसे हो ? ७
घर कैसे सजाया जाय ? ७७ मिठाइयाँ कैसे बनाई जांय ? ७
पुस्तकालय का प्रबन्ध कैसे किया जाय ? ७९ स्वप्न दोष कैसे
दूर हो ? ८० धर्म क्या है ? ८१ स्त्रियों की स्थिति कैसे सुधरे ?
८२ हम क्या विचारें ? ८३ हम क्या खावें ? ८४ हम बलवान कैसे
बनें ? ८५ संसार की सर्व श्रेष्ठ पुस्तक कौनसी ? ८६ मित्रों का
चुनाव कैसे किया जाय ? ८७ जीवन का आदर्श क्या हो ? ८
क्या आप यह भी जानते हैं ? ८९ सौ वर्ष बाद हम क्या होंगे
९० हमारी सब से बड़ी जरूरत क्या है ? ९१ निपुणता कैसे प्राप्त
हो ? ९२ हाय ! मेरी शादी क्यों नहीं हुई ? ९३ बच्चों का पालन
पोषण कैसे किया जाय ? ९४ संतति-निग्रह कैसे हो ? ९५ राष्ट्र
का उत्थान कैसे हो ? ९६ मकान कैसा बनाया जाय ? ९७ निरी
क्षण शक्ति कैसे बढ़े ? ९८ पत्नी के प्रति पति के क्या कर्त्तव्य हैं ?
९९ संसार से मुक्त कैसे उठें ? १०० मैं क्या हूँ ?

[या इसी तरह के अन्य लेख चुने जा सकते हैं]

लेख भेजने का पता—

ज्ञान भण्डार, जोधपुर

सस्ती ज्ञान-माला के ट्रैक्टों पर क्रमशः

लोकमत

९ वें ट्रैक्ट से आगे:—

(५) लखनऊ से प्रकाशित होने वाली हिन्दी की एक प्रसिद्ध मासिक पत्रिका "सुधा"

सितंबर १९३५ के अंक में "मृत्यु भोज कैसे रुके?" पर लिखती है:—

"समाज में अगणित कुप्रथाएँ प्रचलित हैं! उस दिन की बात है, मेरे एक निकट सम्बन्धी की मृत्यु होगई थी, और कुछ दिनों बाद ही एक विराट् भोज की आयोजना हो रही थी, मेरी समझ में नहीं आया कि यह बे मौके शहनाई क्यों बजने जा रही है। मालूम हुआ यह मृत्यु भोज की प्रथा सनातन से चली आ रही है। उसी सनातन से चली आने वाली लचर प्रथा के विरुद्ध श्रीयुत् मोदी ने इस लेख में घोर आन्दोलन किया है। मोदीजी के इस लेख में तर्क है। उनकी भाषा में ओज है। जो बात कही है, बड़े ढंग से कही है सीधे हृदय पर चोट करती है।

श्रीयुत् मोदी की यह कृति बड़ी सुन्दर और उ[illegible]गी है। ऐसी पुस्तिकाएँ समाज के लिये अमृत साबित होंगी। इन्हें पढ़ कर लोगों की आँखें खुलेंगी, वे सचमुच आदमी बन जायेंगे। श्रीयुत् मोदी को इस रचना के लिये बधाई देते हैं। और हमारा विश्वास है कि इस सस्ती ज्ञानमाला का समाज स्वागत करेगा।

(शेष १० वें ट्रैक्ट में देखिये) दुर्गाप्रसादसिंह B. A. L. L. B."

६

जीवन प्रभावशाली कैसे बने?

[एक ठोस निबंध]

अनुवादक

श्रीनाथ मोदी 'विशारद'

इन्स्ट्रक्टर

गवर्नमेन्ट टीचर्स ट्रेनिंग स्कूल

विद्याशाला, जोधपुर ।
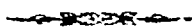
प्रकाशक—

ज्ञान-भण्डार, जोधपुर
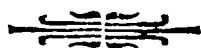
मुद्रक—कुँ० सरदारमल थानवी,

* श्री सुमेर प्रेस; फुलारोड जोधपुर *

एप्रिल १९३६]

[तीन पैसे

ग्रन्थमाला के भिन्न भिन्न ३० ट्रैक्टों का डाक खर्च सहित मूल्य १॥)

स्थायी ग्राहकों की क्रमशः सुनहरी नामावली

[पूरे पते सहित]

आठवें ट्रेक्ट के आगे–२२२ एक गुप्त दानी महाशय की ओर से–वर्द्धमान जैन विद्यालय ओसियाँ को भेंट, २२३ मोहनलालजी शर्मा जैन स्कूल ओसियाँ, २२४ अमृतलालजी डोसी व्याकरण तीर्थ जैन स्कूल ओसियाँ, २२५ चेतनलालजी जैन स्कूल ओसियाँ, २२६ सेंसमलजी खेताजी लुनावा-जैन स्कूल ओसियाँ को भेंट दी, २२७ दीपचंदजी मोतीलालजी लोहावट-जैन स्कूल ओसियाँ को भेंट दी, २२८ मूलचंदजी लखमीचंदजी पेंडुवा नारंगी कोलावा, २२९ आई० पी० सोलंकी बांसडा सूरत, २३० लच्छमीधरजी पाँडे सर प्रताप प्राइमरी स्कूल जोधपुर, २३१ मन्नालालजी भाटी विचडली महल्ला ब्यावर, २३२ मूलचंदजी वकील चांदपोल बाहर जोधपुर, २३३ मनफूलजी त्यागी दरबार स्कूल भात्री, २३४ मोतीमलजी सिंघवी पोतेदार सीटी कोट-घाली जोधपुर, २३५ सुधारचंदजी हाला नया, २३६ धनराजजी गंगाशहर २३७ एक गुप्त दानी महाशय की ओर से-पार्श्वनाथ जैन विद्यालय वरकाणा बीजोवा को भेंट, २३८ वस्तीचंदजी अनोपचंदजी गोलेछा फलोधी, २३९ मास्टर शामजी भाई कुंडला काठियावाड़, २४० श्याम सुंदरलालजी अध्यापक दरबार हाई स्कूल जोधपुर, २४१ हीरालालजी कन्हैयालालजी बम बैंगानियों का बास लाडनू, २४२ मघदत्तजी पुरोहित गोल महल्ला जोधपुर २४३ लाभमलजी भंसाली पुरोहितों की पोल जोधपुर, २४४ उगमराजजी पुरोहित गउखाना जोधपुर, २४५ अमृतलालजी जालोरी डागों का बास जोधपुर, २४६ पुखराजजी मुहता घासमंडी जोधपुर, २४७ चांदमलजी मुहता घासमंडी जोधपुर, २४८ मोहनलालजी बाफना तंवारों लेन जोधपुर।

(शेष १० वें ट्रेक्ट में देखिये

१।) भेज आपभी स्थायी ग्राहकों में नाम लिखवाइये ३२ ट्रेक्ट घर बैठे।

जीवन प्रभावशाली कैसे बने ?

संसार का कोई भी व्यक्ति किसी के अधीन रहना नहीं चाहता। बालक तक माँ बाप या मास्टर की आज्ञाओं का पालन करना नहीं चाहते। अतः यदि आपको अपना जीवन महत्वपूर्ण और प्रभावशाली बनाना है तो उसका सम्पूर्ण भार आप ही के कंधों पर है क्योंकि आत्म-सुधार या उत्थान के लिये किसी के भरोसे बैठ रहना ठीक नहीं। शरीर और मस्तिष्क की बनावट की दृष्टि से संसार के समस्त व्यक्ति एक ही ढंग के हैं; पर जो इनका जैसा उपयोग करता है वह वैसा ही बन जाता है। अपने सुधार के लिये यह सब से ज़रूरी है कि हम अपने आपको पहचानें और अपनी शक्तियों का सदुपयोग उत्तम तरीके से करना सीखें। संसार में सर्व प्रिय बनने के, जिस तरह के व्यक्ति आपको पसन्द आते हों, वैसे आप स्वयं बनो।

प्रभाव डालने के बाहरी साधन वाणी, नेत्र, चाल, वेश, भाषा और कार्य हैं; अतः सर्व प्रथम इन्हें ही आकर्षक बनाओ। दूसरे शब्दों में यों भी कहा जासकता है कि अपना व्यक्तित्व सबल बनाओ। सबल व्यक्तित्व का अर्थ है दूसरों पर ऐसा प्रभाव डालना जिससे कि लोग अपनी ओर स्वतः आकर्षित हों, अनुसरण करें और आज्ञा-पालन को तत्पर रहें। महात्मा गांधी का जीवन इसका उत्तम उदाहरण है।

वैसे जीवन की सफलता की कुञ्जी निश्चित उद्देश्य का होना और तदनुसार जीवन को ढालना है। अतः यदि आपको भी सफलता का सेहरा पहनना हो तो विचार पूर्वक अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य निश्चित करो और उसकी पूर्ति के लिये प्रयत्न-शील बनो। आगे बढ़ो। यदि आगे बढ़ने का प्रयत्न न करोगे तो अवश्य पिछड़ जाओगे। यदि उन्नत होने के लिये सदाचरण का कोई मार्ग निश्चित नहीं करोगे तो अवश्य दुराचरण का अवनत-पथ ग्रहण करना पड़ेगा। अतः जीवन की वर्तमान प्रभावहीन स्थिति में निश्चेष्ट बन बैठे रहना भारी भूल है।

पयत्नशील—स्वावलम्बी व्यक्ति ही विजय श्री को वरते हैं। अन्यथा असफलता के चपेटों से तो जीवन बिताना भी भार हो जाता है। बदले में चिन्ता, कलह और किस्मत पर रोना पीटना ही हाथ लगता है। असफलता के मुख्य कारण केवल सात हैं—बीमारी, बुरी आदतें, बेईमानी, सुस्ती, अपव्यय, अज्ञान और निर्बल व्यक्तित्व। असफल व्यक्ति समाज के लिये भी भार स्वरूप है क्योंकि वह भी किसी न किसी तरह समाज के अन्य व्यक्तियों की मेहनत की कमाई पर ही गुज़ारा चलाता है। समाज ने इसीलिये पाठशालाओं की स्थापना की है कि सब व्यक्ति शिक्षित होकर स्वावलम्बी बनें; औषधालय खोले हैं कि सब स्वस्थ रहें। जेलखाना, न्यायालय और पुलिस आदि संस्थाओं की व्यवस्था भी समाज ने इसीलिये का है कि असफल व्यक्ति संभलें और सुमार्ग पर आवें !

असफलता से बचने के लिये सफलता का सच्चा चित्र भी सामने आना ज़रूरी है। उस चरम लक्ष्य की कल्पना से प्रवृति

करने में पाठकों को सहायता मिले इस हेतु मैं यहाँ सफलता एक काम चलाऊ रूप रेखा खींचे देता हूँ।

लगभग ४० वर्ष की आयु में नीचे लिखे प्रश्न पूछ कर आप जीवन की सफलता का माप आसानी से कर सकेंगे। १ क्या रहने का घर निजी है? २ क्या वेतन या मज़दूरी काफ़ी मिलती है? ३ क्या काम या धंधा रुचि के अनुकूल मिला है? ४ क्या भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है? ५ क्या बुढ़ापे में निर्वाह के लिये काफ़ी जमाबन्दी है? ६ क्या साहित्य खरीदने, यात्रा करने, मनोविनोद की सामग्री मोल लेने, सवारी रखने और संस्थाओं को समय समय पर मदद देने के लिये काफ़ी द्रव्य प्राप्त हो सकता है? ७ क्या विपद में आर्थिक व अन्य मदद पहुँचाने वाले कुछ मित्र हैं? ८ क्या शरीर निरोग और चित्त प्रसन्न रहता है? ९ क्या स्वतंत्र गुज़ारे का कोई कौशल हाथ में है? १० क्या आपकी राय भी सामाजिक मामलों में मूल्य रखती है? इनमें से अधिकांश प्रश्नों का 'हाँ' उत्तर देने के योग्य बनने के लिये अभी से तैयारी शुरू करिये।

केवल बल, द्रव्य या रिश्तेदारों की अधिक संख्या से सफलता का नाप नहीं हो सकता। आदर्श स्थिति को प्राप्त करने के लिये निजके परिश्रम और समाज के सहयोग की नितान्त आवश्यकता है। बहुत ही थोड़े प्राणी जन्म से प्रतिभाशाली होने के कारण सफल हुए दृष्टिगोचर होते हैं पर अधिकांश सफल होने वाले लोग वे हैं जो साधारण श्रेणी व योग्यता के होते हुए भी एक साधारण काम को असाधारण तौर से कर दिखाते हैं। अथवा यों कहिये कि मनुष्य को सफल होने के लिये औसत व्यक्ति से कुछ अधिक

काम करना चाहिये। यहा सफलता पाने का सच्चा रहस्य है। उत्तमता आत्म-सन्तोष, साहस और एकाग्रचित्त से किया हुआ कार्य कठिनाइयों को दूर कर सफलता प्रदान करता है।

सफल होने के अवसर सबको मिलते है पर कर्त्तव्यपालन मे कुछ त्रुटियाँ रहने से ही असफलता मिलती है। सार बात यह है कि अपने तरीके मे पूरा भरोसा रखिये। एक विद्वान् का अनुभव है कि यदि इच्छा (उत्सुकता) के साथ योग्यता की भी पुट हो तो काम अवश्य बनता है। अर्थात् कार्य्य करने के लिये सच्ची लगन चाहिये। केवल दूसरों पर दोष लगाना, मिजाज़ बिगड़ना, और निरंतर भाग्य को कोसते रहने से कार्य्य करने की रुचि मारी जाती है और इसका निश्चित परिणाम-चिन्ता अशान्ति और अन्तमे असफलता है।

विफल मनोरथ होने पर दुगुने साहस से फिर काम पर जुट जाओ। फल चखने की आशा से सेवा का आदर्श ऊँचा रक्खो। अपनी शक्तियों और योग्यता के अनुसार कार्य्य क्षेत्र मे पिल पडो। इससे शक्ति और आत्म-नियंत्रण बढ़ेगा और सफलता हाथ बाँधे सामने खड़ी मिलेगी। आत्म सतोष से आत्म गौरव जैसा मीठा फल हाथ लगेगा और साथमे प्रतिष्ठा मिश्रित विजय का प्रसाद प्राप्त होगा।

प्रभाव डालने के बाहरी साधन पाँच है। स्वास्थ्य, सफ़ाई, वेश, शृंगार और व्यवहार। स्वास्थ्य तो स्वय के लिये भी लाभप्रद है। यही आराम, आनन्द और सफलता प्राप्त कराता है। परिमित भोजन, गहरे स्वाँस, खुले मे व्यायाम और आठ घंटे

की नींद की प्रणाली स्वास्थ्य के लिये बीमा समझिये। सफ़ाई समाज के लिये तो हितकर है ही साथ ही कुल की प्रतिष्ठा बढ़ानी है, मित्रों में आसानी से समावेश हो सकता है और बालकों पर सुन्दर प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत गन्दगी मैले कुचेले कपड़े, दुर्गंधयुत शरीर और बदबू वाला साँस इत्यादि घृणा के मुँह लगे दलाल हैं। सड़ियल प्राणियों से दुनिया कोसों दूर भागती है।

वेश और शृंगार से समाज और स्व का समान सम्बन्ध है। वेश; स्वास्थ्य रक्षा, आराम और सफाई के लिये हो। सादगी ही श्रद्धा उत्पन्न कराती है। वस्त्र धोने में आसान, चलने में टिकाऊ, मोल में सस्ते और पहिनने में सुविधाजनक हों। साल भर के वस्त्र एक साथ या अधिक से अधिक दो बार मे बनवा लेने चाहिये। जो व्यक्ति कपड़े की इज्जत करेगा समाज उसकी इज्जत करेगा यह एक व्यवहारिक सत्य है। वस्त्र को अच्छे ढंगसे और ठीक समय पर धोया जाए। धब्बे न रहे। फटे हों तो कारी दे दी जाये। बटन आदि टूटे हुए या कम न हों। रात्रि के समय दिन भर में काम आने वाले वस्त्र ब्रश से साफ़ कर समेट कर रख लिए जाँय तो तिगुने समय तक काम देंगे। शृंगार से मतलब केवल केश, दाँत, नाखून, और त्वचा की सँभाल से है। सुस्ती के कारण ही कई लोग इस ओर ध्यान नहीं देते हैं।

व्यवहार के सम्बन्ध में खास ध्यान देने की आवश्यकता है। व्यवहार का अर्थ यहाँ आचरण से है। कार्यों को आनंद पूर्वक करने का नाम ही सदाचरण है। प्रत्येक काम को करने का

उत्तम तरीका एक होता है। उसे ही अपनाना और काममें लाना चाहिये। सदाचरण का प्रथम सोपान नम्रता है। योग्यता के पहले नम्र वर्ताव देखा जाता है। माननीय पुरुषों के अनुकरण, सात्विक पुस्तकों और गंभीर पत्रों के अध्ययन और आदर्श नाटकों तमाशों के निरीक्षण से ही सत् चरित्र की शिक्षा प्राप्त की जासकती है।

सादचार की व्याख्या करना भी सहज नहीं है। वह कार्य्य जिसके करने का उद्देश्य भला हो सदाचार कहलावेगा। साथ में यह भी शर्त्त है कि वह कार्य्य प्रचलित सामाजिक सदाचार के नियमों के अनुकूल हो और समाज के हित का भी हो। यों तो आचरण की श्रेणियें भी बताई जा सकती हैं। उत्तरोत्तर इन्हें श्रेष्ठ समझिये।

१ जो कार्य्य केवल तात्कालिक सुख अथवा दुख के अनुभव से किया जाय। यह पशुओं की श्रेणी में जाएगा। २ जो कार्य्य डर या धमकी से किया जाय वह भी पशु श्रेणी है। ३ जो कार्य्य इनाम या प्रशंसा प्राप्ति के लिए किया जाता हो वह भी निम्न श्रेणी में समझिये। ४ जो कार्य्य लोकलाज समाजभय राज्य भक्ति या भव्य श्रद्धा से समाज के बन्धे हुए नियमों के अनुसार किया जाता हो उसमें व्यक्तिगत स्वार्थ की मात्रा सीमित होने से उच्च श्रेणी का कहा जा सकता है। ५ अन्तिम श्रेणी का आचरण आदर्श और श्लाघनीय है। जो कार्य्य सत्य असत्य की जाँच करने के लिए जन साधारण की राय की परवाह किए बिना निज के स्वार्थ को सर्वांश में छोड़ कर किया जाता है उस कार्य्य को करने के लिये स्वतन्त्र विचार, साहस और अनुभव या शिक्षा के आधार पर किया हुआ निर्णय आवश्यक है।

प्रभाव डालने का वाहरी ज़बरदस्त साधन वाणी है। इसे प्रभावशाली बनाने के लिये भाषा पर अधिकार चाहिये। उत्तम पुस्तकों और मासिक पत्रों को पढ़ने से विचार परिपक्व और भाषा प्रांजल बनती है। विचार ही शब्दों के रूप में बाहर आते हैं। अतः अपने विचारों को वास्तविक रूप में प्रकट करने के लिये भाषा पर पूर्ण अधिकार चाहिये। व्याकरण के नियम, शब्दों के मूल अर्थ और भाव प्रकाशन की शैली का ज्ञान और प्रयोग परिश्रम पूर्वक सीखना चाहिये। वाचालपन तुच्छ हृदय और मूक रहना मूर्खता द्योतक है। अतः आवश्यकता होने पर उपयुक्त बात कहने से चूकना न चाहिये और धैर्य पूर्वक दूसरों के कथन को सुनना भी चाहिये। किसी के कथन को बीच में काटना गँवारपन प्रकट करता है। वार्तालाप करना भी एक महत्वपूर्ण कला है। जो इसे आकर्षक बना लेता है वह अपने काम को आसानी से निकाल सकता है और असंख्य मित्रों का सहवास पाता है।

जीवन को सफल करने में कभी कभी छोटी युक्तियाँ भी बड़े काम निकाल देती हैं। एक महत्वपूर्ण बात, जो प्रायः लोगों के ध्यान में नहीं आती वह यह है कि हम प्रति दिन कुछ ऐसे काम करते हैं जो अनायास ही बिना प्रयत्न के हो जाते हैं। हृदय की धड़कन, साँस का चलना और भोजन का पचना आदि काम, आप चाहें अथवा नहीं अपने आप होते रहते हैं। इसी प्रकार आप अन्य कामों में भी एक युक्ति द्वारा बहुत अंशों तक यही स्वत: क्रिया की गति ला सकते हैं और इसे हम आनुसंगिक

प्रतिच्छाया कह सकते हैं। एक काम के साथ दूसरे काम संबन्ध जोड़ दीजिये तो जोड़ा हुआ काम अपने आप हो जावेगा जैसे जाग्रत होते ही शौच्य से निवटना, कलेवा करते ही समाचार पत्र पढ़ना, दन्त धावन करते ही घड़ी में चाबी देना। इस प्रकार आप स्वास्थ्य, सफ़ाई, भोजन, वस्त्र धारण, आराम और पढ़ाई के कामों को शृङ्खला बद्ध कर बिना विशेष शक्ति और समय के व्यय से सम्पादन कर बची हुई शक्ति को अन्य असाधारण कामों में लगा कर आश्चर्य जनक कौशल दिखा सकते हैं।

यद्यपि सुख का कारण भाग्य ही बताया जाता है पर लोग, जो गहरा विचार नहीं करते, यह जानते ही नहीं कि भाग्यके निर्माण करने का तरीक़ा कौनसा है ? जैसे विचार करोगे वैसे ही काम करने होंगे। काम बार बार करने से आदत बन जायगी, आदतों का समूह ही आचरण का रूप धारण करेगा और आचरण के फल का नाप ही भाग्य होता है। अतः यदि आप चाहते हैं कि भाग्य सुख कर हो तो सहज ही में आप उत्तम विचारों द्वारा इसे इच्छित सांचे में ढाल सकते हैं।

जीवन को सुखी बनाने के लिये विचार और कार्य की उत्तम आदतों का डालना निहायत ज़रूरी है। किसी काम को बार बार करने ही से आदत पड़ जाती है और काम बहुत ही ज़ल्दी और बहुत आसानी से ही हो जाता है। हम रात दिन जो कार्य अथवा विचार करते हैं उनमें से ९/१० भाग काम आदतों द्वारा होता है। कहा भी है—आदमी आदतों का पुतला है। आदत के महत्व को ध्यान में रखते हुए जीवन को प्रभावशाली बनाने के

इच्छुकों को चाहिये कि आदतें डालने के उत्तम तरीके सीखें। आदत डालते समय इन बातों को ध्यान में रक्खा जाए। (१) क्या आदत डालनी है, इसका पूरा ज्ञान हो। (२) शुरू से ही कार्य उत्तम ढंग से किया जाय ताकि आदत अच्छी बने। आरम्भ में यदि धैर्य से काम किया जायगा तो उसका परिणाम अच्छा ही होगा। (३) जब तक आदत पक्की न हो जाय—बार बार विचार या कार्य को दुहराते रहना चाहिये। (४) शुरू में जब तक कि आदत दृढ़ न बन जाए कोई अपवाद न हो। यदि शुरू में टालने या ढील डालने की आदत पड़ जायगी तो फिर उसे छोड़ना आसान नहीं है।

जिस प्रकार अच्छी आदतें डाली जाती हैं, उसी तरह बुरी आदतें छोड़ी भी जा सकती हैं। यह लोगों का भ्रम है कि आदत छुट नहीं सकती। यदि आदत को सेवक न बना कर स्वयं उसके सेवक बन गये तो जीवन में कोई महत्व न समझिये। बुरी आदत छोड़ते समय उसके बदले अच्छी आदत डालनी चाहिये। जैसे तंबाकू पीना छोड़ना है तो एक दम छोड़ दिया जाय और उसके बदले में इलायची खाने की आदत डाल ली जाय। जब जब तंबाकू पीने की इच्छा हो इलायची के दाने मुँह में डाल लिये जायं। तंबाकू न पीने की प्रतिज्ञा लोगों के सामने की जाय। पर अपवाद रूप में एक बार भी तंबाकू पी ली तो सारा प्रयत्न व्यर्थ समझिये। कभी कभी बरसों की आदत किसी घटना के होने पर छूट जाती है। एक विद्यार्थी को प्रति सताह सिनेमा देखने का चसका लग गया। कर्ज़ लेकर भी वह फ़िल्म

देखने जाता था। पर जब उसकी दृष्टि बहुत कमज़ोर हो गई तो उसे चश्मा ख़रीदने के लिये आंख की जांच कराने डाक्टर के पास जाना पड़ा। वहां जब उसने सुना कि वह निकट भविष्य में ही अंधा हो जायगा तो उसे सिनेमा देखने से सख्त नफ़रत हो गई और उसने उसी क्षण सिनेमा न देखने की प्रतिज्ञा की। उसके बदले में उसने उत्तम चित्रों को संग्रह करने की अच्छी आदत डाल ली। आज ५ वर्ष में उसके पास उत्तम चित्रों के कई सुन्दर एलबम एकत्र हैं। इस अर्से के बीच में उसने एक भी फ़िल्म नहीं देखी। आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि वह अब बिना चश्मे के काम कर लेता है क्योंकि डाक्टर की नसीहत को ध्यान में रख कर आंखों की पूरी हिफ़ाजत रखता है।

आदत बन जाने पर भी विचार शक्ति से काम लेना अत्यावश्यक है, ताकि समय पर आदत बदली जा सके। अपने गत कार्यों के अनुभव द्वारा वर्तमान और भविष्य की समस्याओं का निराकरण करना सीखना आवश्यक है और तभी जीवन निरापद् है।

अपने आपको अवसरों के हाथ में डालना भूल है। किसी अवसर की तलाश में निश्चेष्ट हो हाथ पर हाथ धरे बैठना अदूरदर्शिता का द्योतक है। निर्णय और चुनाव करने की शक्ति वाले व्यक्ति ही दुनियां में कुछ करके दिखा सके हैं। दूसरों के द्वारा सोचे हुए काम करने में ही संलग्न होने वाले अपना व्यक्तित्व अधिक समय तक बनाए नहीं रख सकते। और ऐसे लोगों

की आवश्यकता भी नगण्य है। जीवन में विजयी वही होते हैं, जो अपने पैरों पर स्वयं खड़े हो अपनी निज की विचार वा निर्णय शक्ति द्वारा अपनी राह खोज निकालते हैं।

उत्तम चुनाव और उपयुक्त निर्णय के साथ आत्म-संयम की भी नितान्त आवश्यकता है। वाणी पर संयम हुए बिना सत्य नहीं कहा जा सकता। असंयमी ही निन्दा, गाली गलौज और बकवाद कर अपने मानव जीवन की उपलब्धि का दुरुपयोग करता है। अपने मिज़ाज़ पर क़ाबू पाये बिना क्रोध उत्पन्न होता है जो जीवन के सत्व को क्षण भर में फूँक कर भस्मीभूत कर देता है। अपने विचारों पर भी नियंत्रण होना ज़रूरी है अन्यथा बुरे विचार मन मे प्रविष्ट होकर जीवन के उच्च आदर्श को मिट्टी में मिला देते हैं। कार्यों पर अधिकार न रखने वाले ही उड़ाऊ, असावधान और आपघाती बनते है। दूसरे के आचरण पर टीका टिप्पणी किये बिना अपने स्वाभिमान की रक्षा कर लेना जीवन का इष्ट उद्देश्य होना चाहिये।

जब तक हम अपने आपको पूरी तरह से नहीं पहचान लेंगे—जीवन के आनन्द से बहुत अंशों तक वञ्चित रहेंगे। हमारे अन्दर क्या क्या शक्तियाँ है ? हम किस प्रकार इच्छा, विचार और कार्य करते हैं ? और इसी प्रकार की अन्य बातें जान कर ही हम इष्ट फल की प्राप्ति कर सकते है। अतः पाठक आइये ! अपनी शक्तियों का विचार करिये।

हमारी सब से ज़बरदस्त इच्छा भोजन करने की है। उसकी पूर्ति के लिये ही लोग रात दिन काम में लगे रहते हैं। पर भोजन करना ही हमारा चरम ध्येय नहीं होना चाहिये। जीवन भोजन

के लिये नहीं है पर जीवन के लिये भोजन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य्य भी है। क्षति की पूर्ति करने वाले भोजन—कार्य्य के ढंग पर भी विचार करना अत्यावश्यक है। शाकाहारी मनुष्यों के लिये मांस भक्षण सर्वथा त्याज्य है। मांसाहारी में दया नहीं रह सकती। दया के अभाव में 'विश्वबन्धुत्व' 'परोपकार' और 'सेवा' के गीत गाना संसार को धोखा देना ही तो है। भोजन क्या, कब और कैसे करना चाहिये इस सम्बन्ध में भी स्वास्थ्य और आधुनिक शिष्टाचार का खयाल रखना चाहिये। केवल जिह्वा के स्वाद के लिये ही अधिक मिष्टान या मिर्च मसाले काम में लाना हानिकर है। अन्न का प्रभाव जीवन पर प्रत्यक्ष रूप में पड़ता है अतः भोजन के सम्बन्ध में सावधानी रखना प्रतिभा इच्छुक व्यक्ति का स्पष्ट कर्त्तव्य है। भूख के सहज ज्ञान पर नियंत्रण रखना चाहिये।

भूख के पश्चात् भय का सहज ज्ञान ज़बरदस्त समझिये। भय के वशीभूत होने से साहस का दिवाला पिट जाता है। गृहस्थ के उत्तरदायित्व से डर कर कई व्यक्ति संसार छोड़ बाबा बने बैठे हैं। भय का पोषण भारत में माता की गोद से ही हो जाता है। बचपन में अँधेरे से डरने के कारण मस्तिष्क भया-क्रान्त होकर कुण्ठित हो जाता है। परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने के भय से बहुत से विद्यार्थी पाठशाला छोड़ निकम्मे बने बैठे हैं। नौकरी छूटजाने के भय से क्लर्क अफ़सरों की घुड़कियाँ सहकर आत्माभिमान खो देते हैं। बीमार चीर फाड़ की पीड़ा के भय से (क्लोरोफार्म की सुविधा होते हुए भी) आप्रेसन से इन्कार कर अपने आप को मौत के मुँह में डालने को तत्पर होजाते हैं।

इस प्रकार भय के राज्य में व्यक्ति कायर और डरपोक बन जाते हैं। भूत पिशाच के मिथ्या भय के कारण कच्चों के प्राण पंखेरू तक उड़ चुके हैं। अतः निर्भयता का कवच धारण कर संसार की समरस्थली में आगे बढ़ना चाहिये। शिवाजी, नेपोलियन, महाराणा प्रताप आदि महा पुरुषों ने भय को तिलांजलि देकर ही विजय श्री को वश किया था। भय का सहजज्ञान केवल आत्मा के लिये अज्ञान अवस्था में काम दे सकता है। ज्ञान प्राप्त कर भय को भगा देने में ही वास्तविक कल्याण है।

तीसरा सहज ज्ञान गुस्सा है। जब कोई हमारे अधिकारों पर कुठाराघात करता है तो हमें अवश्यमेव अपने आत्म गौरव को बनाए रखने के लिये क्रोध से काम लेना चाहिये। अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए नियंत्रित क्रोध का होना एक आवश्यक गुण है। जो व्यक्ति आत्म सत्कार की परवाह न कर अपने अपमान को शान्तभाव से स्वीकार कर लेता है उसे तो भीरु और नपुंसक ही समझिये। हाँ, बिना सोचे समझे, छोटी छोटी बातों पर चिढ़ कर अदूरदर्शिता से गुस्सा करके किसी निर्बल को सताना अपने आपको नष्ट करना है। केवल इसी प्रकार के क्रोध को शास्त्रकारों ने वर्जित कहा है। पुरुषार्थी पुरुष अपने स्वत्व की रक्षा के लिये अवश्यमेव इस सहजज्ञान द्वारा स्वदेश और देश का उपकार कर सकता है। अपने दुर्गुणों पर क्रोध किया जाये तो इसमें बुराई ही क्या है?

जीवन की समस्या इसीलिये कठिन हो जाती है कि लोग अपने आपको असली स्वरूप में नहीं पहिचानते। कुछ लोग

अपने आपको बहुत घटिया खयाल करते हैं। उनके जीवन में उत्साह और उमंग के भाव नहीं होते। प्रत्येक बात में निराशा के अपशब्दों द्वारा अपने आपको कोसा करते है। मुझे यह नहीं आता, वह नहीं आता, भला मुझे वह कैसे आवेगा ? लोग मुझे क्या कहेंगे ? मैं हूँ ही किस योग्य ? मुझे करना ही क्या है ? मेरी बात कौन मानेगा ? इस प्रकार के तुच्छ विचारों से उन्नति के सम्पूर्ण अवसरों से वंचित रहना पड़ता है। अपने आपको नगण्य समझने वाले कभी भी–स्वप्न मे भी तरक्की नहीं कर सकते। अत: आत्मा की शक्ति मे विश्वास रक्खो। काम धैर्य पूर्वक करो और उसके मृदु परिणामों का स्वाद चक्खो ! अपने आपको कभी हेटा न समझो ! प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ गुण अवश्य होते हैं। संसार में किसी का भी जीवन व्यर्थ नहीं है। अपनी अच्छी शक्तियों को पहचान कर उनका विकास करोगे तो अवश्य अपने विषय के विशेषज्ञ बनजाओगे और संसार तुम्हारे कार्यों की सराहना करेगा और तुम्हारी अनुपस्थिति लोगों को अखर ने लगेगी।

ठीक इसके प्रतिकूल कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपने आप को बहुत ही उत्तम समझते हैं। अपने कार्य का मूल्य ज़रूरत से ज़्यादा आंकते हैं और घमंड मे फूलकर शेखी बघारते हैं। यह अति ही विनाशकारी है। जो व्यक्ति अपनी योग्यता का गर्व रखता है उसके भविष्य की उन्नति के द्वार बन्द हो जाते हैं। वह दूसरों की भलाइयों से फ़ायदा उठाने से वंचित रहता है। और दूसरे लोगों को घटिया समझ कर उनकी बात ही नहीं सुनते

जिसके कारण ईर्ष्या भाव की वृद्धि मात्र होती है। ऐसे आदमी को दुनिया नफ़रत की नज़र से देखती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपनी कमज़ोरियों और शक्तियों का सच्चा नाप करना चाहिये। कमज़ोरियों को दूर किया जाये और शक्तियों से संसार का उपकार किया जाये।

चूँकि मनुष्य सामाजिक प्राणी है—उसका सुख अथवा दुःख हमजोलियों के चुनाव पर निर्भर है। जाति और बस्ती (गांव या नगर) की सृष्टि इसी सहजज्ञान के कारण हुई है। बिना मित्रों या कुटुम्बियों के हमारा रहना मुश्किल होता है। एकांत वास वास्तव मे दुस्तर है। अपराधियों को भी तो एकान्तवास की ही सजा दी जाती है। जीवन को सुखी बनाने के लिये ऐसे उपयुक्त मित्रों का चुनना नितान्त आवश्यक है जो सुख अथवा दुःख मे हाथ बँटा सकें। मित्रों के अभाव में उत्तम पुस्तकों से मदद ली जा सकती है। वैसे उपयुक्त मित्र मिलने भी तो सहज नहीं है पर खोज करने वाले के लिये कुछ दुर्लभ नहीं है।

मित्र, पुस्तक और हमारे अन्य वातावरण हमें भाँति भाँति की शिक्षा दे सकते है यदि हम सचेत रहें और कुछ अधिक सीखने की जिज्ञासा रक्खें। क्योंकि सीखने के साधन सूझ और अनुकरण ही तो है। मित्र या ग्रन्थ हमारे हित की बातें सुझाते हैं और उनकी बताई हुई या अन्य देखी बातों का अनुकरण करना भी तो हमारा एक सहजज्ञान है।

हमारी एक आन्तरिक प्रकृति जिज्ञासा अथवा उत्सुकता जो हमें नई नई बातों को सीखने की ओर प्रेरित करती है।

पाठशाला में शिक्षा पाकर, यात्रा द्वारा, स्वाध्याय या व्याख्यान श्रवण द्वारा उसे पूर्ण करने के अवसर को नहीं चूकना चाहिये। इस जिज्ञासा की प्रवृत्ति के कारण ही विज्ञान में हैरतअंगेज आविष्कार हुए हैं। उन्नति के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह अपने आपको पूर्ण जिज्ञासु बनावे और एक के बाद एक काम सीखता जावे क्योंकि मृत्यु के बाद भी तो जीवन है जिस में पिछले जीवन के संस्कार काम देते हैं। सीखने का भी अन्त न समझिये। यदि जीवनभर आप विद्यार्थी बने रहे तो भी थोड़ा ही समझिये। इसका अर्थ यह नहीं है कि सारी उम्र स्कूल में जाकर पुस्तकाध्ययन किया जाये किन्तु अपने जीवन में, सेवाकार्य में, जीविका उपार्जन में, अवकाश में और कठिनाइयों में मन से अथवा तन से कोई भी काम क्यों न किया जाये उससे कुछ न कुछ अनुभव अवश्य प्राप्त किया जावे। और उसे निरन्तर बढ़ाये रखने की आकांक्षा रक्खी जाये।

साथ में संग्रह करने के सहज ज्ञान को भी लक्ष्य में लिया जाए। कमाना आसान है पर बचाना कठिन है। हमें मितव्ययी होना चाहिये। जिसका उत्तम उपाय यही है कि अपव्यय और अधिक व्यय न किया जाय। केवल धन ही नहीं हमें समय शक्ति के विषय में भी बचत का ध्यान रखना चाहिये। समय व्यर्थ नष्ट करने वाले जीवन का व्यर्थ खाते हैं। द्रव्य व्यर्थ करने वाले कर्जा और उधारों से पराजित होते हैं, शक्ति व्यर्थ खर्च करने वाले मूर्ख कहलाते हैं। आत्म-संयम और विचार पूर्वक निर्णय से ही मितव्ययता सोची हुई कार्य प्रणाली स्थिर कर यह परिणाम पा सकता है।

पर केवल किसी प्रकार की योग्यता मात्र प्राप्त करने ही से काम नहीं चलता योग्यता का उपयोग करना चाहिये। अतः सफलता के इच्छुकों को चाहिये कि अपना काम अपनी रुचि और योग्यता के अनुसार चुनें। किसी के सुझाने या धकेलने मात्र ही से किसी काम मे हाथ डाल देना ख़तरे से ख़ाली नहीं है। बुद्धि और योग्यता आपको तभी चमकावेगी जब कि आपने अपनी रुचि और स्वभाव के अनुकूल ही धंधा या काम चुना हो। जब अपने काम को विचार पूर्वक चुनलो तो फिर उसे प्रसन्नतापूर्वक करो और अपने आपको उस कार्य के लिये आवश्यक और योग्य समझो। दूसरे की सफलता और योग्यता को देख कर कुढ़ना अपने आपको जलाना है और सोने से शरीर मे चिन्ता की दीमक लगाना है।

जब तक कोई कार्य चाहपूर्वक नहीं किया जायेगा कर्त्ता को काम पूरा होने पर भी आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। अतः कार्य मे उत्साह और लगन रक्खो। अपने स्वामी, संस्था या सिद्धान्तों का आदर करो। यदि आपमे ये दो गुण होंगे तो संस्था क्या संसार आपको पूछेगा। गांठ बांध लीजिये। "ईमानदारी" और "उद्यम" क्योंकि उद्यमशील व्यक्ति के लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं और ईमानदार हुए बिना तो काम ही नहीं चलने का। सच्चरित्रता केवल दिखावे के लिए गुज़ारे के लिये या सफलता प्राप्त करने के उद्देश्य से न हो पर सच्चरित्रता के लिये हो। लाभ हो या हानि। यश मिले अथवा अपयश। काम बने अथवा बिगड़े। सच्चरित्रता न छोड़ो, तब तक तुम देखोगे कि दुनिया तुम्हारे साथ है। ईमानदार व्यक्ति सच्चा सुख पाता है। इस युक्ति मे किंचित भी अतिशयोक्ति नहीं है।

उत्तम नागरिक बनो और अपने देशके बने कानूनों का पालन करो और उपयोगी संस्थाओं की मदद दो। समाज को बनाए

रखने के लिए कोई उपयोगी काम चुनो और उसे परम प्रसन्नता पूर्वक करो। समाज के उपयोगी अंग बनो। जिस प्रकार आप अन्य व्यक्तियों की सहायता पाकर सुख अनुभव कर प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार स्वयं दूसरों की भलाई का काम करो। संसार के सारे काम पारस्परिक सहायता पर ही तो निर्भर हैं। कल्पना कीजिये, आप दिन भर में जो चीज़ें काम में लाते हैं उनको बनाने में कितने सहस्रों—नहीं नहीं लाखों व्यक्तियों ने सहायता दी है? फिर उत्तर दीजिये आपके काम ने कितने व्यक्तियों को सहायता पहुँचती है। सेवा ही मानव समाज के संगठन का सूत्र है। सोचिये, आप इसमे कितना सहयोग देते हैं?

जीवन को प्रभावशाली बनाने की मुख्य कुञ्जी उद्देश्य स्थिर करने में है। लक्ष्य के बिना गति नहीं होती। बिना निशाने के तीर ठीक नहीं चल सकता। मानव जीवन है किस लिये? खाने-पीने, ऊँघने और वंश बढ़ाने के लिये—नहीं यह तो पशु और पक्षी भी करलेते हैं फिर मनुष्यों मे क्या विशेषता रही?

मानव जीवन का चरम उद्देश्य यही है कि यह संसार जहां कि हमने जन्म लिया है अधिक सुखदायी हो। और ऐसा तभी हो सकता है जब आप संसार की कोई ख़ास ज़रूरत पूरी करें, कमज़ोरियों को दूर करें और आनन्द की वृद्धि करें। इसके लिये कोई सेवा चुन लीजिये और उसके साधन के लिये अपना निश्चित उद्देश्य नियत कीजिये। उसकी पूर्ति में सब तरह से लगजाइये। सेवाके बदले में गुज़ारे योग्य रोज़ी तो मिलती ही है।

* महाप हेडक कृत What kind of person do I want be? के आधार पर।

१०

शांतिका मूल-मंत्र क्या है?

लेखक

श्री० रतनलालजी संघवी 'विशारद'

प्रधानाध्यापक

जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ़ (बड़लू)

सम्पादक

श्रीनाथ मोदी 'विशारद'

इन्स्ट्रक्टर

टीचर्स ट्रेनिङ्ग स्कूल जोधपुर.

प्रकाशक

ज्ञान भण्डार, जोधपुर।

मुद्रकः—कुँ० सरदारमल थानवी,

श्री सुमेर प्रिंटिंग प्रेस, फुलारोड़ जोधपुर.

१९३६ |

{ तीन पैसे

सस्ती ज्ञान-माला के ट्रैक्टों पर लोकमत

आठवें ट्रैक्ट से आगे-

(६) "श्वेताम्बर जैन" अपने १० अक्तूबर १९३५ के अंक में शिक्षित बेकार क्या करें ? पर लिखता है—" यह सस्ती ज्ञान-माला का प्रथम ट्रैक्ट है। इसमें लेखकने पढ़े लिखे बेकारों को ऐसे रास्ते सुझाए हैं जिन पर चलने से बिना पूँजी के पर कुछ परिश्रम करके अपनी बेकारी खो सकते हैं। हम श्री मोदीजी को इस विषय के ट्रैक्ट निकालने के लिये बधाई देते और आशा करते हैं कि जनता भी इनको खरीद कर उ उत्साह को बढ़ावेगी।"

(७) इतिहास-विज्ञ साहित्य प्रेमी मुनिवर्य श्री कल्य विजयजी जालोर से ता. २० ३/३६ के पत्र में लिखते हैं-" आ भेजे हुए ट्रैक्ट पढ़ लिये। सभी ट्रैक्ट अपने अपने विषय का प्र पादन करने में सफल हुए हैं। भाषा जोशाली होने से पढ़ने भी जी लगता है। आशा है कि आपका उद्योग सफल होगा

(८) "ओसवाल सुधारक" आगरा अपने ५ जनवरी १९ के अंक में प्रथम छ ट्रैक्टों पर अपनी राय इस प्रकार प्रकट क है-" इन ट्रैक्टों को इस तरह से लिखा गया है कि लिखित व्यवहार में आ सकती है। ट्रैक्ट सभी के पढ़ने और लाभ योग्य है।"

(९) जीवदया ज्ञान प्रचारक मंडल गुढ़ा बालोतरा के जी अपने ता० २ दिसम्बर १९३५ के पत्र में लिखते हैं-"आ सस्ती ज्ञानमाला के ट्रैक्ट वास्तव में अत्यन्त महत्वशाली युवकों, समाज सुधारकों और संस्थाओं से प्रार्थना है कि इ ग्राहक बन कर ट्रैक्टों का सदुपयोग करें।"

(आगे ग्यारहवें ट्रैक्ट में देखि

* ॐ *

उन्नति का मूल-मंत्र क्या है?

आशा और निराशा के प्रतिघातों की बिना परवाह किये प्रसन्नता पूर्वक कार्य करते रहना ही उन्नति का मूलमन्त्र है।

संसार एक जीवन-संग्राम है। यह संग्राम कुछ वर्षों का नहीं किन्तु हज़ारों लाखों करोड़ों-नहीं। नहीं-अनन्त वर्षों का है। क्योंकि आत्मा अमर है और उसको अनेक वार जन्म मरण के खेल खेलने पड़ते हैं इसलिए यह संग्राम विकट भी है और आनन्दप्रद भी। इस संग्राम में आशा और निराशा के बड़े बड़े दुर्भेद्य पर्वतों को लांघना पड़ता है। इन पर्वतों को लांघते समय हमें सफलता के अनेक सुन्दर सुन्दर मैदान भी दृष्टिगोचर होते हैं और विफलता के भयानक मरुस्थल भी। किन्तु जो विना किसी झिझक के आगे बढ़ता ही रहता है वह अवश्यमेव अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

जब हम इस बात को मान चुके हैं कि यह जीवन-सघर्ष अनन्त वर्षों का है तो ऐसी दशा में यह आवश्यक ही है कि हम अपने लक्ष्य को बहुत ही ऊँचा बनावें; उसके लिये वैसा ही प्रबन्ध या प्रयत्न करें और साधन भी वैसे ही जुटाने की भरपूर कोशिश करें। कहने का प्रयोजन यह है कि हमारा यह बहुमूल्य जीवन साधारण बातों की पूर्ति में ही पूरा न हो जाय; कहीं ऐसा न हो कि हम अपना अन्तिम लक्ष्य अपना और अपने सामान्य परिवार का पेट भरना ही बनालें और जिस मामूली वातावरण या सामाजिक दशा में रहते हैं उसकी दो। चार सीढ़ियाँ चढ़ने में ही सारी ताक़त और इस बहुमूल्य समय को ख़र्च कर दें।

यह सदैव ध्यान रखना चाहिये कि हमें उन थोड़े से परिचित व्यक्तियों की दृष्टि में ही, जो कि हमें जानते हैं, अच्छे बने रहने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। बल्कि जहाँ तक हो हम अधिक से अधिक व्यापक क्षेत्र में आने का ही प्रयत्न करते रहें। संक्षेप में यों भी कहा जा सकता है कि हमारा लक्ष्य उच्च, विचार सादे और जीवन प्रभावशाली हो। इस लक्ष्य को लेकर ही हमें रणक्षेत्र में जूझ पड़ना चाहिये। 'उच्च विचार' का यहाँ यही मतलब है कि हमारा जीवन निस्वार्थ सेवा की प्रतिमा बन जाय। और सादे जीवन से आवश्यकताएँ स्वतः सीमित होंगी जिससे इष्ट कार्य करने को पर्याप्त समय और सुविधाएँ मिल सकेंगी।

उन्नति के मार्ग में यश की आकांक्षा, पद (शासक बनने) की लालसा, प्रतिष्ठा का लोभ और क्षणिक सुखों के साथ नेतागिरी का रोग- ये ऐसी बड़ी बड़ी अलांघनीय खाइयाँ हैं जो कि मनुष्य को नष्ट भ्रष्ट कर देती हैं; अनेक कुचक्रों और जंजालों में फँसा देती है तथा अन्त में अपने लक्ष्य से भ्रष्ट करा कर ऐसे गहरे गर्त में फेंक देती हैं कि जिसमें से निकलने में और पूर्वावस्था तक पहुँचने में एक लम्बे समय की आवश्यकता पड़ती है।

इन दुर्गुणों का स्वरूप इतना विकराल है कि ये मनुष्य की सब शक्तियाँ, उत्साह, सज्जनता, कर्मण्यता, प्रेम, साहस और सेवाभाव आदि सब सद्गुणों का मटियामेट करके अपने मूल उद्देश से गिरा देते हैं और छल कपट ईर्षा-द्वेष आदि भावों को पैदा कर देते हैं। इसलिए सदैव इन से दूर रहना चाहिये और

प्रसन्नता पूर्वक विना फल की इच्छा किये कार्य क्षेत्र में आगे ही बढ़ते रहना चाहिये।

यदि अपने लक्ष्य तक पहुँचना है तो कार्य की तरफ ही ध्यान दो। निरन्तर मन, वचन और काया से उसमें लगे रहो आप अवश्य सफलता प्राप्त करोगे। यदि आपने शारीरिक और ऐन्द्रिय सुखों का ख्याल किया, विलासिता से आकर्षित हो गये तो समझिये कि पतन है। याद रक्खो, कि आपका प्रत्येक बार का इन्द्रिय सुख-पोषण का प्रयत्न आपकी गुलामी की शृङ्खला में एक और कड़ी की वृद्धि करेगा। दीपक की बत्ती आपको शिक्षा दे रही है। प्रत्येक क्षण वह अपना शरीर जला रही है-सुखों का उसे सर्वथा भान नहीं। यही कारण है कि वह अन्धकार के स्थान पर प्रतिभापूर्ण प्रकाश का प्रकाशन कर रही है। यदि उसे अपने सुखों का ख्याल हो जाय तो क्या वह उस समय प्रकाश प्रदान कर सकती है? कदापि नहीं! बिल्कुल नहीं!!

नदी का सुन्दर प्रवाह आपको पुकार पुकार कर क्या कह रहा है? जरा ध्यान पूर्वक सुनियेगा-केवल सुनियेगा ही नहीं समझियेगा भी। वह अपने कलकल नाद से यह दिव्य सन्देश दे रहा है, "कर्मण्यता ही जीवन है और अकर्मण्यता मृत्यु। यदि मैं बहता हुआ बन्द हो जाऊँ तो उसी समय से मेरा पानी सड़ने लग जायगा। यह निखरती स्वच्छता लोप हो जायगी। यह स्वाद रहेगा ही नहीं। यह सुन्दरता और सुगन्ध किनारा कर लेंगे। इनके स्थान पर दुर्गन्ध और मैलापन आ धमकेगा। मुझ में कीड़े पड़ जायेंगे। और प्रत्येक व्यक्ति प्रेम के स्थान पर घृणा की दृष्टि से देखेगा। भूल से भी चखलेगा तो थूकेगा।"

मैं समझता हूँ कि यही परिस्थिति मानव जीवन की भी है। यदि मनुष्य आलस्य का दास हो जाय; अहदीपन की चाकरी मञ्जूर करले तो निश्चय उसकी प्रतिभा में ज़ंग लग जायगा। उसकी प्रफुल्लता कुम्हला जायगी, उसके उल्लास पर पानी फिर जायगा, वह सफलता से हाथ धो लेगा और ऐसी दशा में उसकी उच्च आकांक्षाएँ मन ही मन में रह जाँयगी। बकरे की गर्दन के स्तन की तरह उसका अस्तित्व ही निरर्थक होजायगा।

राजर्षि भर्तृहरि की पैनी सूझ इस बात की पुष्टि करती है:-

प्रारभ्यते न खलु विघ्न भयेन नीचैः; प्रारभ्य विघ्न विहिता विरमंति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रति हन्यमानाः, प्रारभ्यमुत्तमजनाः न परित्यजति॥

अर्थात्—जघन्य आदमी तो विघ्न बाधाओं के भय से काम को प्रारम्भ ही नहीं करते। वे तो सदैव विघ्नों से डरते ही रहते है। मार्ग में न आने वाली अड़चनों तक की कल्पना बाँधकर पस्तहिम्मत हो हाथ पर हाथ धर कर बैठ जाते हैं। अतः सदा वे आलसी ही रहा करते है। मध्यम आदमी कार्य को प्रारम्भ तो कर देते हैं पर तनिकसी बाधा के उपस्थित होते ही हाथ समेट कर अधूरा ही छोड़ भगते है। बहाना किसी के मत्थे मँढ देते है और कुछ नहीं तो भाग्य को ही दोष लगा कर अपना पिण्ड छुड़ाते है। परन्तु जो उत्तम पुरुष है, दूरदर्शी विचारशील और अपनी धुन के पक्के है, निशंक होकर कार्य प्रारम्भ कर देते है। फिर चाहे कितने ही कष्ट क्यों न आ पड़ें वे एक पग भी पीछे नहीं हटते, या तो कार्य को पूरा करके ही विश्राम लेते है, या करते करते ही मरजाते हैं, किन्तु किसी भी दशा

मे अपने लक्ष्य से इञ्च मात्र भी हटना उनके लिये मृत्यु से भी अधिक ख़राब और निन्दनीय है। उनका तो केवल एक ही निश्चित ध्येय होता है—

"कार्यं साधयामि वा शरीरं पातयामि।"

इतिहास भी ऐसे ही व्यक्तियों को याद रखता है जो कि कर्त्तव्य पालन मे मर मिटे हैं। ससार संकट के समय ऐसे ही सदाशयों से सच्चा आश्वासन पाता है जो कि कर्मण्यताशील रहे है। जैसा महा कवि गिरिधर शर्माजी ने कहा है—

"जीवन चरित महा पुरुषों के हमे शिक्षा देते हैं।
हम भी अपना अपना जीवन-स्वच्छ रम्य कर सकते है॥
हमे चाहिये हम भी अपने-बना जाय पद-चिन्ह ललाम।
इस भूमि की रेती पर जो-व्यक्त पडे आवे कुछ काम॥
देख देख जिनको उत्साहित-हों पुनि वे मानव मतिधर।
जिनकी नष्ट हुई हो नौका-चट्टानों मे टकरा कर॥
लाख लाख संकट सह कर भी-फिर भी साहस बांधें वे।
जाकर मार्ग मार्ग पर अपना-'गिरधर' कारज साधें वे॥"

इसलिये प्यारे युवको! हताश होने का कोई कारण नहीं! आओ, कर्त्तव्य के रण-क्षेत्र में जूझ पडो। सफलता-असफलता तो आनुषंगिक फल है। इन फलों की ओर ध्यान न दो। अपने लक्ष्य को देखो। निरंतर आगे बढ़ते जाओ। समय और संसार आपका साथ देगा। अन्त मे विजयलक्ष्मी आपके गले मे वर-माल डालेगी। सफलता का सेहरा आपके सर पर होगा।

कर्मण्य व्यक्ति के लिये असफलता भी उत्साह प्रदायिनी हुआ करती है; जिस प्रकार कि बहते हुए जल के आगे पत्थर

का आना रुकावट पैदा नहीं करता है, प्रत्युत जल को टक्कर देकर और भी वेग से बहने की प्रेरणा करता है। उसी प्रकार असफलता भी आपके कान में यह मधुर संदेश सुनाती है कि और भी अधिक उत्साह से कार्य में जुटो—आपको निस्सन्देह शीघ्र ही सफलता मिलेगी।

वीरवर नेपोलियन का यह आदर्श सामने रखो कि 'असंभव शब्द तो मूर्खों के कोष मे रहा करता है।' युवक शक्ति के सामने संसार की कोई भी शक्ति नहीं ठहर सकती, इस पर पूर्णतया विश्वास रखो और अपने लक्ष्य को निश्चित कर कार्य करना प्रारम्भ करदो।

याद रखो, कि अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिये लड़ते लड़ते मरने में भी कोई हानि नहीं। क्योंकि असफलता इतनी बुरी नहीं है, जितनी की अकर्मण्यता। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि यदि हमें अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिये एक क्या अनेक जन्म भी कार्य करते करते नष्ट करने पड़ें तो कोई हानि नहीं। अन्त मे वह समय आवेगा कि जब सफलता रूपी सूर्य का अवश्यमेव उदय होगा।

राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, मोहम्मद, ईसा और तिलक आदि संसार की जो जो परम पवित्र विभूतिएँ थीं उन सब को अपने अपने लक्ष्य पर डटे रहने तथा अनेक आगत कष्टों को सहन करने पर ही अपने कार्य में सफलता मिली थी। उनकी अड़चनों की कोई सीमा नहीं थी, विरोधियों की संख्या कम नहीं थी। उद्देश्य भी लम्बे और गम्भीर थे। किन्तु फिर

भी वे सफल-मनोरथ हुए। उन्होने विजय श्री को वरा। कारण यही कि उन्हे यश तथा सांसारिक सुखो की लालसा नही थी। असफलता से वे घबराने वाले नहीं थे। वे तो केवल अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिये सदैव उत्साह पूर्वक कार्य ही करते रहे और इसी मूलमत्र द्वारा उन्हे सफलता की सिद्धि प्राप्त हुई।

हम भी यदि उसी मार्ग पर चलते रहे तो सफलता अवश्य हमारी चेरी और अनुगामिनी होगी-इसमे ज़रा भी सन्देह करने की आवश्यक्ता नही। वह तो हाथ बांधे सामने नतमस्तक खड़ी रहेगी।

गरीबी और दरिद्रता हमारी उन्नति की बाधक नहीं हो सकती। क्योकि अनेक ऐतिहासिक उदाहरण ऐसे हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि अधिकांश महापुरुष महान् ग़रीब थे किन्तु उन्होंने संसार का महान् हित साधन किया और अपने लक्ष्य की अन्तिम चोटी पर जा विराजे।

सर आइजक न्यूटन, गोखले, गाँधी, हेनरीफ़ोर्ड, मुसोलिनी, हिटलर, रूज़वेल्ट, रैमज़े मेक्डोनल्ड, शिवाजी, रानडे, दयानन्द, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, लॉर्ड क्लाइव, मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त, बाबर, महाराणा प्रताप, वीरवर दुर्गादास, बैंजमिन फ्रैंकलिन और इब्राहिमलिंकन आदि अनेक महापुरुषों की जीवनियां हमें उस उज्जवल भविष्य की ओर संकेत कर रही है जहाँ कि ये प्रोत्साहन देने वाले वाक्य सुनाई पड़ रहे हैं। "ऐ मन! हताश होने का कोई कारण नहीं। ग़रीबी उन्नति में बाधक नहीं होती। आशा निराशा की ओर मन झांको-केवल आगे बढ़ने

जाओ।" वह देखो—आपके लक्ष्य रूप मन्दिर में सफलता रूप दीपक ससार को मार्ग बता रहा है कहीं ऐसा न हो कि आप सांसारिक सुखों अथवा सामान्य आपत्तियों से घबरा कर उस दीपक तक न पहुँच सको। मार्ग में ही पथ भ्रष्ट होकर उस दीपक को मत बुझादो।

गीता का यह आदर्श वाक्य सदैव अपने सामने रखो। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।' अतएव हमें तो यह ख्याल करके सदैव कर्मण्यशील ही बने रहना चाहिये कि हम अजर और अमर हैं, संसार की कोई शक्ति नहीं जो हमें अपने कर्त्तव्य पथ से भ्रष्ट कर सके।

बीज जब अपना लक्ष्य वृक्ष रूप बनने का बनाता है तब वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति एवं पूर्ति में स्वयं बलिदान हो जाता है—नष्ट हो जाता है। वह इसके लिये अपने अस्तित्व की भी परवाह नहीं करता हुआ अपने आपको इस लक्ष्यरूप यज्ञ में होम देता है। अन्त में जो परिणाम होता है वह आप से छिपा नहीं। आँख से भी कठिनाई से दीखने वाला क्षुद्र बीज एक विशाल वृक्ष के रूप में बदल जाता है और अपने जैसे असंख्य बीजों को उत्पन्न करने की क्षमता धारण कर लेता है। समझने के लिए बस एक ही आत्म-समर्पण का उदाहरण पर्याप्त है। अतः हमें भी अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिये अपना सर्वस्व भी लगाना पड़े तो कोई चिन्ता नहीं, शरीर भी नष्ट करना पड़े तो कोई हानि नहीं। क्योंकि सफलता का सुन्दर भवन अनेक जन्मों के शरीरों के बलिदान पर ही बनता है।

आत्मा मरती नहीं, इसका नाश हो नही सकता-वह तो अजर और अमर है। वह प्रत्येक जन्म में कुछ संस्कार लेकर ही आगे के जन्मों को धारण करती है। इस सिद्धान्तानुसार इस जन्म मे यदि हम कोई लक्ष्य बनालें और उसके लिये जीवन-पर्यंत प्रयत्न करते रहें तो अवश्य ही लक्ष्य और लक्ष्य के प्रयत्न का संस्कार आत्मा अगले जन्मों में भी अपने साथ ले जायगी और उस लक्ष्य सिद्धि के लिये प्रयत्नशील होगी।

इस मर्म को जानकर हमें ज़रा भी हताश नहीं होना चाहिये और लक्ष्य सिद्धि के लिये हर प्रकार का यहाँ तक कि शरीर तक का वलिदान करने के लिये प्रत्येक समय तत्पर रहना चाहिये। प्रयत्न करते करते इतने तन्मय हो जाओ कि अपने आपको भूल जाओ। जिस प्रकार शिकारी अपने शिकार पर, नट अपने बाँस पर, पनिहारी अपने घट पर और मोटर ड्राइवर अपने मार्ग पर एक ही ध्यान रखते हुए अपने को और अपने आसपास के सम्पूर्ण वातावरण का भूल तन्मय हो विल्कुल विस्मृत हो जाते हैं और शरीर तक का ध्यान नहीं रखते हुए केवल लक्ष्य पर ही अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देते है वैसे ही हमें भी उन्नति के उन्मुक्त बनते हुए जीवन के चरम लक्ष्य पर अपना सम्पूर्ण वल केन्द्रीभूत कर लेना चाहिये। फिर देखिये कि सफलता स्वयं दौड़ी दौड़ी आती है कि नहीं।

लक्ष्य अथवा ध्येय की उपलब्धि के लिये यह भी अतीव आवश्यक है कि हम सदैव प्रसन्न चित्त रहे। हमारे चेहरे पर उदासीनता की रेखा तक भी नहीं खिचनी चाहिये। इसका शुभ परिणाम यह होगा कि हम अनेक सहकारी साधन जुटा सकेंगे,

अनेक व्यक्तियों का प्रेम और सहयोग प्राप्त कर सकेंगे और हमारी बहुत सी कठिनाइयां सहज ही में हल हो सकेंगी।

हमें संसार में खिलते हुए पुष्प और हँसती हुई कलियां बनना चाहिये। प्रयत्न तो हमारा यह होना चाहिये कि हम उज्ज्वलता की साकार प्रतिमा बन जाँय। मेरा अपना अनुमान तो यह है कि प्रसन्न रहने से आधे काम का भार तो यों ही हल्का हो जाता है। काम बन ही जावेगा ऐसा आरम्भ में ही विश्वास दृढ़ हो जाता है जिससे काम के आरम्भ करते समय अटूट उत्साह के कारण चित्त स्थिर, ध्यान एकाग्र और मन प्रफुल्लित हो जाता है। तब वह लोकोक्ति सोलह आने चरितार्थ होती है कि 'अच्छी तरह से आरम्भ किया हुआ काम आधे काम के बराबर है।'

इतना कहने का सारांश यही है कि प्रसन्न रह कर कार्य करते जाओ। परिश्रम के मृदु फल का आस्वादन स्वतः प्राप्त हो जायगा। भूतकालीन असफलता की ओर मत देखो और भविष्य की आशा पर भी विशेष आश्रित न रहो। केवल वर्तमान में कार्य करते रहो। साधन और सहकारी भी मिल कर ही रहेंगे। उनकी भी प्रतीक्षा या परवाह मत करो। जैसे बीज अपने ध्येय स्वरूप वृक्ष के लिये आवश्यकीय मिट्टी, पानी, हवा, स्थान आदि सभी संयोगों को प्रकृत्यानुसार उपलब्ध कर लेता है। वैसे आपको भी प्रकृति सहायता प्रदान क्यों न करती रहेगी? उठ तो सब उठाते हैं। आपके प्रयत्नशील बने रहने पर ईश्वर भी आपको मदद पहुँचाये बगैर न रहेगा। इस बात का अनुवाद उर्दू की यह कहावत करती है। 'हिम्मते मर्दां, मददे खुदा।'

भगवान् उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं। इससे यह प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण संसार, प्रकृति और ईश्वर भी कर्मवीर को ही सहायता देते हैं—कर्मठ को नहीं।

कदाचित् आपके मन मे यह शंका उत्पन्न हो कि हमारी शक्ति तो साधारण है, हम तो नगण्य और ग़रीब आदमी है। ऐसी दशा मे प्रथम तो हम कोई उच्च लक्ष्य की कल्पना ही कैसे करें और यदि करें भी तो वहाँ तक पहुँचना हो दुस्तर है। पर सार बात तो यही है कि ये निर्बल अधकचरे विचार ही कायरता और घातकता की जननी हैं और उन्नति के मार्ग में रोड़ा अटकाते है।

दृढ़ निश्चय और अनवरत परिश्रम ये ही दो ऐसे पंख हैं जो मनुष्य को उन्नति रूप आकाश मे उड़ा देते हैं और उन्नति के लक्ष्य तक पहुँचाने में दीर्घ दृष्टि और प्रशस्त मार्ग का निर्माण कर देते है। संसार का इतिहास ऐसे दृष्टान्तों से भरा पड़ा है, जिनसे पता चलता है कि ऐसे ऐसे महा पुरुष इस वसुन्धरा पर उत्पन्न हुए हैं, जो कि बचपन मे गरीब मन्द बुद्धि और आलसी थे, किन्तु उनके परिश्रम ने उन्हें वह स्थान दिया कि जिससे उनका नाम सदैव संसार कृतज्ञता के साथ स्मरण करता रहेगा। इस लिये वैसे घातक विचारों को कदापि स्थान नहीं देना चाहिये।

किसी निश्चित और उच्च लक्ष्य को स्थिर करने के पूर्व खूब ही अध्ययन करना चाहिये। अर्थात् उस लक्ष्य की पूर्ति में

सहायक अनेकानेक पुस्तकों को पढ़ना चाहिये और तत्पश्चात् दृढ़ता पूर्वक इष्ट कार्य में संलग्न होजाना चाहिये। कल्पना करो कि आप एक उद्योग प्रवीण व्यक्ति बनना चाहते हैं, अथवा आप एक जबरदस्त व्यापारी बनना चाहते या आप डाक्टर वकील वा कुछ अन्य बनना चाहते हों तो अपने ध्येय की पूर्ति के लिये सर्व प्रथम तो आप अपना तद्विषयक अध्ययन जारी रखें और तत्पश्चात् उस कार्य की ओर जी जान से झुक जाँय। सफलता और असफलता का कठिनाइयों और सहाय्य का तथा शत्रु और मित्र का ख्याल न कीजिये। बस कार्य, कार्य और कार्य ही आपके जीवन का आधार सूत्र अथवा मूलमन्त्र बनजाय। आप तब देखें कि आपको सफलता मिलती है अथवा नही।

मेरा विश्वास तो ऐसा है कि जीवन मे मिलने वाली असफलता का कारण यही है कि हम किसी भी कार्य के फल को उसमें आवश्यकीय परिश्रम किये बिना ही तत्काल पाना चाहते हैं, और तुरन्त फल न मिलने पर हम कार्य को उसी समय छोड़ देते हैं। फिर यह विचार नहीं करते कि इसमें हमारा कितना समय और परिश्रम लगा है। इसे व्यर्थ ही क्यों जाने दें। इस प्रकार उस कार्य के आधे मार्ग से ही हम खाली हाथ लौट आते हैं और दूसरा कार्य हाथ में ले लेते हैं। और उसकी भी यही गति होती है। इस तरह से हमारा जीवन केवल प्रयोगात्मक हो जाता है न कि परिश्रमात्मक। ऐसी वस्तुस्थिति में सफलता कैसे प्राप्त हो? असिल में होना तो यह चाहिये कि हाथ मे लिये हुए कार्य को धैर्यता पूर्वक करते

रहे और साथ में सफलता के उत्पादक कारणों का अनुसंधान भी करते रहें और सहायक कारणों को भी ढूँढते रहें तो मेरा ऐसा दृढ़ विश्वास है कि सफलता मिले ही।

उच्च उद्देश्य के सफलतारूप दिव्य भवन के लिए धैर्य एक अत्यंत आवश्यकीय स्तम्भ है। जिसके अभाव में उच्च अभिलाषाएँ शेखचिल्ली की कहानी—बालू की दीवार—आकाश कुसुम या हवाई महल मात्र है। कहा भी है 'धैर्येण लभते लक्ष्मीः।'

कल्पना करो कि आपको एक हज़ार मील अंधकार में पैदल चलना है और आपके पास केवल एक ऐसा दीपक है जो कि केवल दो फीट तक ही प्रकाश फेंकता है। ऐसी दशा में क्या आप चलना बंद कर देंगे ? मैं समझता हूं कि आप यही विचार करेंगे कि "मैं चाहे कितने भी अंधकार में क्यों न चलूं मेरे आस पास तो दो फीट तक प्रकाश रहेगा ही। चाहे वह प्रकाश एक हज़ार मील तक एक साथ न जाता हो पर फिर भी मेरे लिए तो यह प्रकाश हज़ार मील तक काम दे सकता है और मैं जा सकता हूँ।" ऐसे दृढ़ निश्चय से आप उस हज़ार मील वाले अंधकार को पार कर जायंगे। हाँ—दीपक के प्रकाश की पहुँच भले ही दो फीट की हो पर योग्यता अथवा लगन का तेल दीपक में अवश्य काफी होना चाहिये। इसलिये कार्य की गुरुता या उच्चता का ख्याल कर डर नहीं जाना चाहिये। हिम्मत नहीं हारनी चाहिये बल्कि दुगुने वेग से कार्य आरम्भ कर देना चाहिये।

विज्ञान और प्रकृति ने एक सिद्धान्त बताया है कि इस संसार में निर्बलों को जीने का कोई अधिकार नहीं है। यदि वे जीवित रहना चाहते हों तो बलवान बनें। अन्यथा सबल व्यक्तियों

के भव्य बनना होगा। याद रखिये—कहीं आप कायरता या आलस्य के विचार मन में लाकर निर्बल न बनजाँय।

हम सफलता की तुलना अपने शरीर की छाया के साथ कर सकते हैं। जिस प्रकार छाया को पकड़ने के लिए हम कितना ही दौड़ें और कितने ही प्रयत्न करें फिर भी छाया को नहीं पकड़ सकते। किन्तु यदि उसे पकड़ना ही छोड़ दें-उसकी तरफ ध्यान ही न दें, केवल अपना कार्य मात्र ही करते रहें तो आप देखियेगा कि छाया अपने आप पीछे पीछे चली आरही है। पीछा ही नहीं छोड़ती है। इसी प्रकार ज्यों ज्यों आप सफलता को पकड़ना चाहेंगे त्यों त्यों वह दूर भागेगी और ज्योंही उसकी ओर से दृष्टि हटाली और कार्य करने में लग गये त्योंही झट से वह सफलता आपके पीछे पीछे छाया के समान अनुगामिनी हो जायगी। इससे यही तारतम्य निकला कि बस कार्य करते जाओ फल की कभी भी परवाह न करो। न फल में सन्देह ही रखो। क्योंकि परिश्रम का परिणाम निकलेगा ही-यह एक प्राकृतिक नियम है और जिसका कोई अपवाद भी तो नहीं ! फल अखंड है।

सूर्य यों विचार थोड़े ही करता है कि इतने घने अंधकार को मैं कैसे नष्ट करूँगा ? ताराओं का प्रभाव लुप्त करने के लिये उनमें किस प्रकार युद्ध करूँगा ? और सृष्टि को जागृतिमय कैसे बनाऊँगा ? वह तो अपना केवल कार्य करने पर उतारू है और अन्य सब कार्य अपने आप सम्पादन हो जाते हैं। यही बात परिश्रम के विषय में भी समझो। क्योंकि यह आत्मा भी अनन्त सूर्यों का भी सूर्य है। यह अनन्त शक्तिमय और ईश्वर रूप है। केवल दृढ़ निश्चय की आवश्यक्ता है और कुछ नहीं। एक बार

इस आत्मा की आश्चर्यकारिणी विभूति को कार्य में संलग्न हो जाने दीजिये फिर इसकी शक्ति को आँखे फाड़कर या दाँतो तले उँगली दवाकर देखिये। आप स्तंभित हो जाँयगे। आपके हृदय की कली कली खिल जायगी। अखूट आत्मानंद का अनुभव होगा।

राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध और गाँधी वचपन में वालक ही तो थे। किन्तु इन महान् आत्माओं ने अपनी शक्ति का सदुपयोग किया और संसार को विकट अंधकार रूप मार्ग में प्रकाशगृह का कार्य दे गये।

आप भी अपनी शक्ति को पहिचानिये। आत्म बोध प्राप्त करिये और कार्यक्षेत्र में उतरिये। इस वहुमूल्य अनुभवजन्य उपयोगी सिद्धान्त को सदैव याद रखियेगा कि यदि आप पूर्ण तल्लीनता के साथ कार्य कर रहे हैं तो सहायक और सहायता अवश्य दौड़ी दौड़ी आपके पास चली आवेगी। उनके पास जाने की आवश्यका ही नहीं। दीपक यदि अपनी पूर्ण प्रतिभा के साथ प्रकाशित हो रहा है तो,पतंगे स्वतः उसके पास उड़ते आवेंगे। दीपक को उनकी खुशामद करने की दरकार नहीं है। जिस प्रकार हीरा, पन्ना अथवा पुखराज जैसी वहुमूल्य वस्तुएँ सड़क पर नहीं पड़ी मिलती वरन् तिजोरियों में ही पाई जाती है वैसे आप भी योग्य हुए तो संसार आपको ठोकर मारकर नहीं हुत्कार देगा किन्तु आदर पूर्वक आपकी शक्ति को सहर्ष स्वीकार कर अधिक से अधिक उपयोग में लाने की कोशिश करेगा

उपयोगी व्यक्तियों या पदार्थों को कौन छोड़ देता है। वैसे बहु मूल्य मोती भी तो गंभीर समुद्र-गर्भ में गोते लगाकर निकाल ही लिये जाते हैं।

पर इससे पहिले आवश्यक है कि आप भी हीरे,लाल और पुखराज की कांति की तरह अपने में भी परिश्रम द्वारा एक कांति उत्पन्न कीजियेगा। संसार उस कांति पर लट्टू हो जाएगा। इसी आशय की एक कहावत भी प्रचलित है। 'पहिले योग्य बनो फिर इच्छा करो।' मुझे तो उपसंहार में इतना ही कहना है कि अपने आपको पहले योग्य बनाओ। फल अवश्य प्राप्त होगा। ध्येय सामान्य नहीं अपितु विशाल और महत्वपूर्ण बनाओ। अपनी आत्मा की अनंत शक्ति पर विश्वास रखो और जीवन को परिश्रममय बनाओ।

सदैव प्रसन्नचित्त, स्वावलम्बी व निर्भीक बने रहो। जीवन को सेवामय बनाओ। प्रकृति साथ देगी। अंत में उन्नति के चरम शिखर पर जा बैठोगे।

यही उन्नति का मूलमंत्र है।

सस्ती ज्ञान-माला के नियम।

इस माला द्वारा समय समय पर कला, धर्म, विज्ञान, शिक्षा, समाज व साहित्य विषयक उपयोगी सस्ते ट्रैक्ट प्रकाशित होते हैं। राजनैतिक विषयों से माला का कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा।

सब ट्रैक्ट इसी आकार प्रकार के होंगे। (साइज २०×३० सोलह पेजी मूल और चार पेज रंगीन टाइटिल विशेष)

स्थायी ग्राहकों को ३२ अङ्क सिर्फ एक रुपये में मिलेंगे। बाहर के ग्राहकों को डाक खर्च के आठ आने अलग देने होंगे। मूल्य पेशगी लिया जायगा। वी० पी० से १॥≡)

स्थायी ग्राहकों को अपने पते के परिवर्तन की सूचना अवश्य देनी चाहिये।

स्थायी ग्राहकों के नाम पूरे पते सहित ट्रैक्टों में एक बार छपेंगे।

जीवनोपयोगी ठोस निबंध भेजने वालों को पारश्रमिक भी अवश्य दिया जावगा। प्रकाशन का सर्व अधिकार ज्ञानभण्डार जोधपुर को रहेगा।

७ फुटकर पुस्तक लेने वालों को प्रति ट्रैक्ट तीन पैसे और डाक खर्च प्रति ट्रैक्ट एक पैसा देना होगा। बाहर वालों को प्रति ट्रैक्ट एक आने के डाक टिकिट भेज देने चाहिये-तीन ट्रैक्ट से कम नहीं भेजे जावेंगे।

८ जो सज्जन प्रचारार्थ बांटने के लिये सात सेट के ग्राहक बनेंगे वे माला के संरक्षक समझे जावेंगे और उनका नाम प्रति ट्रैक्ट पर छपता रहेगा।

पत्र व्यवहार का पता:—

ज्ञान-भण्डार, जोधपुर।

स्थायी ग्राहकों की क्रमशः सुनहरी नामावली

[पूरे पते सहित]

नौवें ट्रैक्ट के आगे—— २४६ मोतीनलजी धाडीवाल तम्बाकू गली जोधपुर, २५० धनपतचंदजी खीवसरा चीफ कोर्ट वकील सरदारपुरा जोधपुर, २५१ मोहनलालजी पुरोहित अध्यापक विद्याशाला स्कूल जोधपुर, २५२ हीराचंदजी जमराजजी माहिम बंबई, २५३ अमृतलालजी द्विवेदी खांव गांव बरार, २५४ जौहरीमलजी सिंघवी हैडमास्टर दर्बार स्कूल देसूरी, २५५ लच्छीरामजी लालचंदजी सांड डागा बाजार जोधपुर, २५६ सम्पतचन्दजी सिंघवी छीपावाडी जोधपुर, २५७ प्रेमराजजी माथुर अध्यापक मंडी लोअर प्राइमरी स्कूल जोधपुर, २५८ क्षेमसिंहजी अध्यापक मंडी लोअर प्राइमरी स्कूल जोधपुर, २५९ जयदेवजी शर्मा अध्यापक रानीसर की घाटी जोधपुर २६० मंत्री कोतवाली स्कूल वाचनालय जोधपुर, २६१ समर्थराजजी सिंघवी हैड मास्टर दरबार लोअर प्राइमरी स्कूल लोहावट, २६२ नटवरलालजी शर्मा मोजन मीटी, २६३ किशनलालजी सम्पतलालजी लुनावत संभवनाथ जैन पुस्तकालय निहाल धर्मशाल पुस्तक प्रकाशक फलोधी, २६४ कृष्णदत्तजी पुरोहित सीटी पुलिस के पास जोधपुर, २६५ भजनदासजी गुप्ता मंत्री वैश्य कुमार मंडल पुस्तक प्रकाशक सराफा बाजार जोधपुर, २६६ रतनलालजी चांदमलजी कोचर केसर सुईङ्ग मशीन पार्ट सप्लायर धमतरी रायपुर सी॰पी॰ २६७ रंगराजजी जैन सांजी का मंदिर जोधपुर, २६८ इन्द्रनाथजी मोदी बी॰ ए॰एल एल बी॰ घोडों का चौक जोधपुर, २६९ गोकुलदासजी शर्मा मार्वो का बड जोधपुर, २७० जेठमलजी फौजमलजी मूथा बीरामी मांडेराव, २७१ वेमसिंहजी फोटोग्राफर लाखन कोटडी धासमन्डी जोधपुर, २७२ तुलसीदास जी शर्मा हैड मास्टर दरबार मिडिल स्कूल पाली, (आगे ग्यारहवें ट्रैक्ट में)

११

अंग्रेज़ों से क्या सीखें ?

[एक मौलिक निबन्ध]

लेखक

श्रीनाथ मोदी 'विशारद'

इन्स्ट्रक्टर

गवर्नमेण्ट टीचर्स ट्रेनिङ्ग स्कूल

विद्याशाला जोधपुर

स्थायी ग्राहकों से

भिन्न भिन्न ३२ ट्रैक्टों का सिर्फ़ एक रुपया

डाक ख़र्च आठ आना

प्रकाशक

धीरजमल बच्छावत

ज्ञान भण्डार, जोधपुर

मुद्रकः—कुँ० सरदारमल थानवी,

श्री सुमेर प्रिंटिंग प्रेस, फुलारोड़ जोधपुर.

जून १९३६ | तीन पैसे

स्थायी ग्राहकों की क्रमशः सुनहरी नामावली

[पूरे पते सहित]

दसवें ट्रैक्ट के आगे—२७३ जीवराजजी सवाजी जैन पुस्तक विक्रेता व जनरल मर्चेन्ट सिवानागढ़, २७४ जयदयालजी गर्ग मुहावतों की मसजिद के पास मोदी अब्दुल्ला के मकानों में जोधपुर, २७५ हरकमलजी लोढ़ा सरदार पुरा जोधपुर, २७६ मोहनलालजी बोहरा गांव काकेलाव पो० जोधपुर. २७७ मोहनलालजी चौधरी स्टेशन मास्टर सूडसर बीकानेर, २७८ मांगीलालजी लखारों का बाजार जोधपुर, २७९ देवीचन्दजी मूलचन्द जी सिवानागढ़, २८० हुक्मीचन्दजी त्रिपालिया हंसराजजी की हवेली जोधपुर, २८१ गोवन्दनारायणजी पुरोहितों की पोल जोधपुर, २८२ पी. एम भंडारी एण्ड सन्स रबर स्टाम्प सप्लायर रावतों का बास जोधपुर, २८३ गोपीनाथजी बोहरा तापी बावडी के पास जोधपुर, २८४ नटवरलालजी काव्यतीर्थ पार्श्वनाथ उम्मेद जैन बालाश्रम उम्मेदपुर, २८५ सुखलालजी बोहरा आबकारी इन्सपेक्टर जालोर, २८६ मगनमलजी कोचेटा भँवाल पो. मेड़ता सीटी

(आगे बारहवें ट्रैक्ट में देखिये)

ट्रैक्ट जो इससे पहले छप चुके

(१) शिक्षित बेकार क्या करें ? (२) ग्राम सुधार कैसे हो ? (३) मृत्यु भोज कैसे रुके ? (४) स्त्रियों के कार्यक्षेत्र क्या हों ? (५) आदर्श दिनचर्या क्या हो ? (६) वृद्धविवाह कैसे रुके ? (७) कब तक चूसते रहेंगे ? (८ हाय ! मेरी शादी क्यों हुई ? (९) जीवन प्रभावशाली कैसे बने ? (१०) उन्नति का मूल मन्त्र क्या है ?

१॥) भेज कर आप भी स्थायी ग्राहकों में नाम लिखालें ३२ ट्रैक्ट घर बैठे मिलेंगे।

* ॐ *

अंग्रेज़ों से क्या सीखें ?

गुण ग्राहकता भारतीयों का निजी गुण है। इतिहास के जानकारों से यह बात छुपी नहीं है कि भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति पर कितने भारी आघात हुए, पर वह आज भी ज्यों की त्यों बनी है। भारतीयों में पराया को अपनाने की अपूर्व क्षमता व अनोखी सूझ है। मुसलमानों ने प्रारम्भ में आकर कई आक्रमण किये पर अन्त में उन्हें हमारे गुणों ने आकर्षित कर ही लिया। वे यहीं बस गये। अपने आपको भारतीय कहलाने में गौरव समझने लगे। उनके इस प्रकार हम से घुल मिल कर रहने का कारण यह था कि वे हमारे निकटस्थ देशों से ही आये थे। आज हम हिन्दू और मुसलमान एक हैं। एक माला के पुष्प हैं। अब हम दोनों हिन्दोस्तानी हैं।

सन् १४९८ ई० में हमारे देश में यूरोपियनों का शुभागमन हुआ। पुर्तगाली और फ्रान्सीसी केवल नाम मात्र का राज्य जमा सके। डचों को उलटे मुँह की खानी पड़ी। पर अंग्रेज़ों ने समूचे भारत पर अधिकार कर लिया। आये तो थे केवल व्यापार करने ही; पर इनके भाग्य में यहाँ का आधिपत्य भी बदा था। दिन व दिन जोर बढ़ने लगा और हमें भी इनके सहवास का अवसर प्राप्त हुआ। अनेक अंग्रेज भारत में रहते हैं। और बहुत से भारतीय इंगलैण्ड में रहते हैं। अतः इस सहवास के कारण हमें इनसे बहुत सी बातें सीखने को मिली हैं।

वैसे भारतीयों में भी कई उच्च गुण हैं जिन्हें सीखकर अन्य देश कृतकृत्य हो सकते हैं। भारतीयों का त्याग, वैराग्य, परोपकार की भावना, कौटुम्बिक प्रेम व सहानुभूति, निस्वार्थ राजभक्ति, सादगी और सहिष्णुता, आस्तिकता और मेधावी शक्ति तथा धार्मिक प्रवृत्ति भी अनुकरणीय है। प्राचीन काल में तो यहाँ की उच्च संस्कृति सर्वोच्च शिखर पर विराजती थी, पर आज इस गये गुज़रे ज़माने में भी भारतीयों के गौरव को बनाए रखने के लिए यथेष्ट गुण विद्यमान है-बेशक कुछ बातों में अवश्य अंग्रेज़ों से हम पिछड़े हैं।

मेरा अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि हम आँख बन्द कर अंग्रेज़ों का ही अनुकरण अथवा अनुसरण करें और अपनी मूल सम्पत्ति से हाथ धो बैठें। हमें तो संसार की वर्तमान प्रगति को देखते हुए सजग रहने की आवश्यका है और प्रत्येक दिशा में अपने राष्ट्र को योग्य बना कर संसार की सेवा कर भारत के प्राचीन गौरव की रक्षा करना है। इस सिलसिले में अंग्रेज़ों के व्यक्तित्व से जितना भी लाभ उठाया जा सके उठाना है—और दिल खोल कर उठाना है।

यह बात नहीं है कि अंग्रेज़ों में दुर्गुण नहीं, पर हमें तो यहाँ उनके गुणों का ही विश्लेषण करना है। मुझे यह दावे के साथ कहना पड़ेगा कि हम ने उनके अनुकरण में पूर्ण विचार से काम नहीं लिया। हमें उनके वेश और भाषा पर ही लट्टू नहीं हो जाना चाहिये। उनके राष्ट्रीय गुणों को अपना कर अपने आपको विश्व योग्य भी बनाना चाहिये। अन्यथा कौए को मोर पंख की कहावत चरितार्थ होगी।

वैसे सीखने के लिये तो कुछ न कुछ सामग्री एक अदनी कौम से भी मिल सकती है पर अंग्रेज़ो जैसी वैभव, ज्ञान और बलशाली जाति से तो हमे बहुत कुछ सीखना है और आँख खोल कर सीखना है।

उनके सारे गुणों को न तो सीखना ही सम्भव है और न उन सब का इस छोटी सी पुस्तिका मे समाविष्ट होना ही शक्य है। अंग्रेज़ों के गुणो के साथ भारतीयों के कुछ सामुहिक दुर्गुणों पर प्रसंग वश कुछ कह दिया जाए तो उसका उल्टा अर्थ लगाने की आवश्यकता नही है क्योंकि यह सब कुछ सात्विक भाव से प्रेरित होकर अपने ऊपर आलोचनात्मक दृष्टि डालने के उद्देश्य से ही लिखा गया है।

भगवन्! हमे वह शक्ति दो कि हम अपने वास्तविक दुर्गुणों को पहचान कर उन्हें तुरन्त त्यागने मे तत्पर हों और दूसरों के गुणों को बिना ईर्षा भाव से ग्रहण करने को हरदम प्रस्तुत रहें।

व्यवस्था व नियमों का पालन

हमे जो सब से पहली बात सीखनी है वह है अंग्रेज़ों की (Discipline) व्यवस्था व नियमों का पालन। उनकी सैनिक व्यवस्था देखिये। लाखों सिपाही एक कप्तान की आज्ञा पर बिना आगा पीछा सोचे मर मिटने को तैयार है। नियमों का पालन जिस तत्परता और ज़िम्मेदारी से किया जाता है वह वास्तव में सराहनीय है। डाकख़ाने की व्यवस्था उनका एक परिचित, प्रत्यक्ष और ज्वलंत उदाहरण है। हमारी चिट्ठियों का आना

जाना किस फुर्ती और सहूलियत से होता है। सड़क पर भीड़ का नियन्त्रण एक साधारण सिपाही की सरल किन्तु निश्चित युक्ति युक्त व्यवस्था का द्योतक है। किसी एक साधारण गांव की आवश्यक घटना की खबर संसार भर के कोने कोने में कुछ ही घण्टों में फैला देना आदर्श व्यवस्था का ही तो काम है। जिन्होंने बम्बई में आग बुझाने के यन्त्रों को कार्य करते देखा होगा वेही कल्पना कर सकते हैं कि दूरदर्शी व्यवस्था का क्या मूल्य है?

हज़ारों नहीं लाखों रेलगाडियों का ठीक समय पर आना जाना क्या उत्तम व्यवस्था का सूचक नहीं है? म्युनिसिपल कमेटी द्वारा सवारियों का नियंत्रण भी उस विशाल व्यवस्था का अंग है। कहाँ तक गिनाये जाएं अंग्रेज़ों के शासन, समाज और प्रत्येक कार्य में व्यवस्था का पूरा हाथ रहता है।

उसके विपक्ष में हमारी अव्यवस्था का भी नमूना देखिये। पंचायत हो रही है-सब आदमी एक साथ बोल रहे हैं। एक की भी बात ध्यान से नहीं सुनाई देती। पंचायत में कोई सभा-पति या सरपंच नहीं। किसी को टोकने का किसी को अधिकार नहीं। कारण? जब हमारी पंचायत में पूरे नियम नहीं तब पालन क्या खाक हो। सिनेमा या स्टेशन का टिकिटघर हमारी अव्यवस्था का दूसरा चिह्न है। सहूलीयत से टिकिट खरीदना सम्भव ही नहीं। मार धक्कम धक्का!! किसी का पैर कुचल रहा है-कोई भीड़ में पिस रहा है। सब तर्फ से लोग घुस रहे हैं। स्त्रियों को तो टिकिट खरीदना मानो हिमालय को सिर पर उठाना है। प्रत्येक यही चाहता है कि सब से पहले टिकिट मुझे

मिल जाय। यही हाल रेलके डिब्बों मे है। जिस डिब्बे में जाइये-नपा तुला एक ही उत्तर मिलेगा-'आगे जाओ खाली पड़ा है'। कुए पर पानी भरने जाइये, वही अव्यवस्था है। घड़े से घड़ा भिड़ रहा है-डोल से डोल लड़ रहा है। आपस मे वही तू तू और मैं मैं !

हमारे भोजनों मे भी अव्यवस्था का दृश्य सामने आता है। झूँठन के थाल भरे पड़े हैं। जीमने वाले पहले ही काफ़ी से ज्यादा रखवा लेते हैं सोचते हैं फिर न मालूम परोसने वाले इधर आवें या नहीं। भोजन भवन के फ़र्श पर इतनी झूठन फैल जाती है कि बैठना भी दूभर हो जाता है।

सफ़ाई की व्यवस्था के सम्बन्ध में भी हम बहुत पीछे हैं। कहने को तो हम स्वच्छता का डिंढोरा पीटते हैं पर असिल में इस सम्बन्ध में कुछ करते धरते नहीं। क्या हुआ जो नित्य नहाने के बहाने चार लोटे उतावल में शरीर पर डाल लिये-पर स्नान की उत्तम विधि से अनभिज्ञ ही हैं। उधर घर साफ़ किया तो गली में कचरा डाल दिया। सारा महल्ला फ़ूस-गन्दगी की प्रदर्शनी बना हुआ है। पिशाब घरों को काम में लाना तो मानो अपनी हेटी समझना है। जगह जगह पिशाब की धाराएं फैल रही हैं। बच्चे घर के सामने ही पाखाना फिरते हैं उस पर राख तक डालने का ध्यान नहीं शहर, जहां गन्दगी के केन्द्र हैं यहाँ गांव भी इससे अछूते नहीं। परिणाम में प्राण घातक बीमारियों का भारत में बारह मास अड्डा बना हुआ है। प्लेग, हैजा, मलेरिया और चेचक के शिकार प्रति वर्ष लाखों भारतीय होते हैं।

इसका सारा दोष नागरिक अव्यवस्था के मत्थे ही मँढ़ा जा सकता है। यद्यपि सफ़ाई के लिये राज्य की ओर से व्यवस्था व नियम बनाए जाते हैं पर अव्यवस्था के आदी हम उनका उल्लंघन ही करते हैं। उधर अंग्रेज़ों की सफ़ाई की व्यवस्था उन्हें दीर्घायु बना रही है और इधर हम अकाल मौत मरते हैं। ज़वानी में बुढ़ापा आ जाता है।

कहां तक गिनाया जाय, अव्यवस्था के कारण जगह जगह धक्के खाने पड़ते हैं। चार बजे बारात में जाने का बुलावा है पर वक्त पर दुल्हा के लिये घोड़े की भी व्यवस्था नहीं है। नियमों को पालन करने का कहिये तो सर चढ़ते हैं। घर में, बाहर सब जगह अव्यवस्था का साम्राज्य समझिये। जेवनार का निमन्त्रण आता है तो कम से कम तीन घण्टे की बरबादी समझिये। जो काम २० मिनिट में हो सकता है उसके लिये अव्यवस्था के कारण घण्टों की समय-हत्या सब के अनुभव की बात है।

व्यवस्था सीखने के सम्बन्ध में हमें प्रत्येक कार्य के लिये पहिले नियम बनाने चाहिये और साथ ही उनका दृढ़ता पूर्वक पालन भी करना चाहिये। नियम तोड़ने वाले को दण्ड मिलना चाहिये। यह सारा काम तभी सम्भव होगा जब कि हम सब अपनी व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी को अनुभव कर उसका पालन करेंगे। दूसरों के अधिकार का ध्यान रख अपनी स्वार्थपरता छोड़ना भी इस सम्बन्ध में वांछनीय ही नहीं आवश्यक भी होगा। व्यवस्था में रहने की आदत डालनी होगी। अंग्रेज़ों ने व्यवस्था ही के द्वारा अपने राज्य, व्यापार, कला और शिक्षा के कार्य को इस उच्च श्रेणी का बनाया है।

ईमानदारी

व्यवस्था से उतर कर अंग्रेज़ो का उत्तम गुण है ईमानदारी। ये लोग अपनी ज़बान के सच्चे, प्रतिज्ञा के पालक और बात के धनी होते है। इनका मन, वचन और कर्म यकसां है। जिसके प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे सामने हैं। वहाँ व्यापार में चीज़ों की दर सब के लिये एक है-चाहे जवान ले चाहे बच्चा। पोस्टकार्ड के तीन पैसे, रेल का बंधा किराया भाव ताव करने कराने की जरुरत नहीं। धोखा स्वप्न मे नहीं। जो दर नियत करदी फिर उसी पर डटे रहते है।

जैसा उनका आरम्भ वैसा ही उनका अन्त। आज कम कल ज्यादा मूल्य आप पा नहीं सकते। जो माल आरम्भ में था वही आज भी है। सनलाइट का साबुन लीजिये। सौ प्रति सैकडा वही माल। आज भी वही, बीस वर्ष पहले भी वही था और सौ साल बाद भी वही रहेगा। मेन्चेष्टर की मलमल जिस पर लिखा है २० गज वह पूरे बीस गज़ होगी। पाव इञ्च भी कम नहीं। मलमल में एक तार भी टूटा नहीं। दाग़ नहीं। चीज़ो की पेकिंग और सील सहित निश्चिन्त होकर खरीद लीजिये जो ऊपर लिखा है वही अन्दर होगा। एक भी चीज खंडित नहीं। कम नहीं। तब क्यों न उनका व्यापार पनपे? क्यों न उनके उद्योग दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की करते रहे? क्यों न उनके घर लक्ष्मी कर बद्ध होकर पधारे।

जो स्थिति आज उन गौरांग प्रभुओं की है उससे भी कई गुना अच्छी हमारी दशा अतीत काल में थी। भारतीयों के वचन

पालन के दृष्टान्तों का इतिहास साक्षी है। हमारी सच्चरित्रता किस उत्तम दर्जे की थी ? महाराजा दशरथ ने अपनी प्रतिज्ञा को निभाये रखने के लिये अपने प्राण प्रिय पुत्र राम को वनवास में भेजा। भीष्म का सत्य प्रतिज्ञा-पालन आज भी विदेशियों के लिये आश्चर्य ही है। जैसा उनका भीतरी मन था वैसा ही वे बाहरी कार्य करते थे। महाराणा प्रताप ने जिस खूबी से अपने प्रण को निभाया संसार आज भी उसका लोहा मानता है। पर यह सब पुरानी बातें हैं। अब तो हम अपने गौरव को भूल गये, कहीं के न रहे। वर्तमान दशा को देखकर खून के आँसू टपकते हैं। पर किया क्या जाय ?

ईमानदारी के सम्बन्ध में अब इधर के आधुनिक काले कार नामे भी देखिये। दर तो रबर छन्द की तरह (५) से ५) तक घट सकती हैं। दर क्या है ? ग्राहकों की हैसियत, समझ और पहचान का मूल्य है। सर्व साधारण के लिये तो एक रेट होना दूर रहा यहाँ एक व्यक्ति के लिये भी दस दर हैं। कितनी भी ग्राहक होशियारी करे ठग ही लिया जाता है। दिखाते हैं कुछ और देते हैं और ही कुछ। देशी लट्ठे पर लिखा होता है ४० गज पर ग्राहकों के पास ३९½ गज भी नहीं पहुँचता। आरम्भ में माल चलाने के लिये बढ़िया वस्तु निकाली जाती है। जनता ज्यों ही अपनाने लगती है त्यों ही वस्तु बदल जाती है। परिणाम में दुकानदार की साख गिर जाती है।

मिलावट की कुछ न पूछिये। दूध में पानी, घृत में चर्बी, शक्कर में मैदा, गुड़ में गोबर, नाज में मिट्टी, साबुन में आल

घेसलिन में मोम, मिठाई मे रंग, ऊन मे सूत, शाक में पानी, चाय मे रेत, तम्बाखू मे लीद, चूने में बजरी, इत्र मे तेल, असली में नक़ली और नये में पुराना मिलाया जाता है। इस प्रकार भोली जनता ठगी जा रही है। ऐसी परिस्थिति में व्यापार पनपे तो कैसे ?

ईमानदारी के अभाव में साख मारी जाती है और साख विना व्यापार हाथ मे कैसे रह सकता है ? ऐसी स्थिति मे हमारा पारस्परिक अविश्वास स्वभावतः बढ़गया है और हम आपस में एक दूसरे से मदद प्राप्त नहीं कर सकते। अंग्रेज़ों में ईमानदारी होनेसे कम्पनियों द्वारा हिस्से निकालकर करोड़ों क्या अर्बों रुपयों की पूंजी से कला कौशल की रात दिन तरक्की हो रही है। पर हम लोग अधिक तो क्या दो व्यक्ति भी साझे में निश्चिन्त होकर व्यापार या उद्योग नहीं कर सकते। प्रत्येक साझेदार शंकित रहता है कि कहीं दूसरा साझेदार रकम न हड़पले और होना भी है ऐसा ही। मौका लगा नहीं कि एक ने दूसरे को धोखा दिया।

मेरे लिखने का तात्पर्य यह नहीं है कि सारे भारतीय ही ऐसे हैं। पर यदि निष्पक्ष भाव से सच्ची बात कही जाय तो कहना पड़ेगा कि हमारा साझे का व्यापार पारस्परिक अविश्वास के कारण सदा खतरे मे ही रहता है। कतिपय ईमानदार कार्यकर्त्ता भी उन बेईमानो की उड़ी हुई साख के कारण लाभ उठा नहीं पाते। इस प्रकार हमारे व्यापार और कला कौशल के क्षेत्र ही न बन पाए।

यह बात नहीं कि भारतीयों के पास कारबार चलाने के लिये काफ़ी पूँजी न हो-इस मंदीके ज़माने में भी हमने कितना सोना विदेश भेज दिया। हमारी अकूत पूँजी बेकाम पड़ी हुई है। आज कल कुछ भारतीय भी कंपनियाँ खड़ी करते देखे जाते हैं पर आपसी अविश्वास के कारण हिस्से छूट से नहीं बिकते और थोड़ी पूँजी के कारण कारबार विदेशियों की प्रतिस्पर्धा में टिक नहीं सकते।

व्यापार तो उपरोक्त कारणों से हमारे हाथ से कभी का चला गया-रहा है केवल सट्टा (जूआ) और दलाली ! कला कौशल लोप हो गये रह गई चाकरी और रक्त शोषक मजदूरी !! आविष्कार और अनुसंधान के द्वार बंद होगये, खुली है बेकारी और बीमारी की हाट !!! जिस पर तुर्रा यह कि अहँकार में मरे जाते हैं। बिना ईमानदारी को अपनाए हमारा अस्तित्व ही खतरे में है। हम आँखें रहते हुए भी देख नहीं सकते कि अंग्रेज लोग किस प्रकार ईमानदारी से व्यापार करके निहाल हो रहे हैं। एक हम हैं जो रात दिन पचते रहने पर भी दो रोटियां सुख से नहीं पाते। हमारी पगड़ी अपमानित है। कहीं रिश्वत का बाज़ार गर्म है तो कहीं दूसरे ही अनोखे गुल खिल रहे हैं।

भारत भी किसी दिन संसार के भाग्य का विधाता और सच्चरित्रता का केन्द्र, संसार का शिक्षक, ज्ञान का दाता और विश्वका त्राता था। अब उद्धार का केवल एक ही साधन रहा है अपने कर्त्तव्य व उत्तरदायित्व को पहचानना और ईमानदारी से निभाना। अंग्रेज़ों का प्रत्यक्ष ज्वलन्त उदाहरण हमारे सामने स्थित है।

समय की पाबंदी

हम महत्व देते हैं केवल धन प्राप्ति को और वे महत्व देते हैं समय को। धन को तो अंग्रेज़ केवल सुख भोगने का साधन मानते हैं। वे समय के सच्चे महत्व को केवल समझते ही नहीं बल्कि समुचित उपयोग कर मालामाल और निहाल हो रहे हैं।

हम भारतीयों का ध्यान समय की पाबंदी की ओर जाता ही नहीं। सभा का समय ४ बजे का होगा तो लोग घर से ४॥ पर रवाना होंगे। अंधेर तो यह है कि सभापति या मंत्री भी समय पर नहीं पहुँचते। ५ बजे भी काम आरम्भ हो जाये तो ग़नीमत समझिये। यह एक माना हुआ खयाल है कि सभा का कार्य सदैव देर से आरंभ होगा और होता भी ऐसा ही है। कार्य आरम्भ करने का समय निश्चित नहीं होने से समय की हत्या होती है और काम को समाप्त करने का समय नियत होना तो और भी कठिन एवं आगे का पहाड़ है। विवाह, जेवनार और अन्य सामाजिक उत्सवों में तो समय का सदुपयोग सोचना ही असम्भव है। यह हमारी एक साधारण सामाजिक कमज़ोरी है। दिन प्रति दिन घड़ियों का प्रयोग हम लोग बहुत तेज रफ़्तार से बढ़ा रहे हैं पर यह अनुकरण अंधा है क्योंकि हमारी घड़ियां भी ठीक समय नहीं बताती। घर की घड़ी में १०-३० है। बाहर पग धरिये दूसरी घड़ी में १०-२५ दिखेंगे। आगे बढ़िये किसी दुकान की घड़ी में १०-४५ होंगे। असमंजस में पड़ कर किसी राहगीर टैलिमैन से पूछिये तो आपकी घड़ी देख कर

१०-२० ही वतावेगा। कहने का सारांश यही कि दस घड़ियों में दस तरह के समय मिलेंगे। क्योंकि समय की यथार्थता (Exactness) की किसे परवाह है ?

अंग्रेज़ों की समय की पावन्दी स्तुत्य है। आपने सुना ही होगा वाशिंगटन महोदय ने एक वार अपने प्रिय मन्त्री से समय पर नहीं आने से स्पष्ट कह दिया था, "या तो तुम अपनी घड़ी वदलो या मुझे अपना मन्त्री वदलना होगा"। समय का मूल्य एक बहुमूल्य मन्त्री से भी अधिक आँका जाता है। अंग्रेज़ों के सारे काम निश्चित कार्यक्रम के अनुसार ही होते हैं। यही सवव है कि ये लोग हमसे वहुत अधिक काम सम्पादन कर लेते हैं। और विनोद खेल आदि के कामों के लिए काफी समय निकाल लेते हैं। इनके भोजन, काम, खेल, सोने और मिलने जुलने के समय निश्चित रहते हैं। इससे इनके स्वास्थ्य पर भी अच्छा असर पड़ता है। इधर हमारे किसान रात दिन खेतों में महनत करते हुए, दुकानदार कार्यालयों में पचते हुए और मज़दूर कारखानों में मरते हुए भी समय पर काम पूरा नहीं कर पाते। कारण ? हमारा समय की हत्या करने का स्वभाव ! जव हमारे पास कुछ काम करने को नहीं होता है तो हम निठल्ले होने के कारण गप्प सप्प भिड़ाने के लिए किसी मिलने वाले के यहां जा जमते हैं और मान लेते हैं कि उसके पास भी कुछ काम नहीं होगा। वह भी संकोच वश यह नहीं कहता कि मुझे तो कुछ काम है आप अभी तशरीफ़ लेजाइये। इस प्रकार की समय की हत्या के हम हिन्दोस्तानी विशेष भुक्त भोगी हैं। चौपाल की चर्चा

भी समय की हत्या ही है। केवल विना शिर पैर की बातें हाँकने के हम कुछ अभ्यस्त से होगये हैं।

उधर अंग्रेज़ों के रेडियो, डाक व तार विभाग रेल व हवाई जहाज आदि के निश्चित समय को देखकर मानना पड़ेगा कि समय की पाबन्दी के कारण ही इनकी व्यवस्था दृढ़ और स्थायी रहती है। समय की बचत की दृष्टि से ही टेलीफोन, रेडियो आदि के हैरत-अंगेज़ आविष्कार हुए हैं। स्वेज नहर भी इसी हेतु से बनाई गई है। एक एक सेकिंड का हिसाब रखा जाता है और समय की बचत के लिये लाखों रुपयों का व्यय किया जाता है। हमें अंग्रेजों के इस गुण को अपना कर जीवन का सच्चा उपयोग करना सीख लेना चाहिये। उन्नति की कुञ्जी समय की पाबन्दी की पक्की आदत डालना ही है।

देशप्रेम

अँग्रेज़ लोग सच्चे देशभक्त हैं। अपने देश की भलाई के लिये निजी स्वार्थ को त्याग देते हैं। अपने देश के प्रति अनन्य प्रेम रखते हैं और उसकी सेवा के लिये बड़ी से बड़ी कठिनाई तक झेलने के लिये प्रसन्नता से तैयार रहते हैं। वे केवल देश-भक्त ही हों सो नहीं; उन्हें अपने देशभक्त होने का पूरा गौरव और अभिमान भी है। एक अँग्रेज़ अपने देश की प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिये कुछ उठा नहीं रखता। देश भलाई के आगे अन्य सारी बातों को भूल सा जाता है। इस देशप्रेम के कारण ही अनेक कष्ट झेल कर वे इस दशा को प्राप्त हुए हैं। ऐश्वर्य अतुल है, ज्ञान अगाध है, शक्ति अमोघ है; बुद्धि कुशाग्र है

सूक्ष्म पैनी है और चाहिये ही क्या ? उनको पाठशाला में और माता की गोद मे पहला पाठ यही पढ़ाया जाता है कि पहिले वह अँग्रेज़ है पीछे कुछ और।

अपने देश की बेहतरी के लिये ही तो ये जी जान से कोशिश कर रहे हैं। इन्हों ने अपने देश के लिये जो कुछ भी किया वह किसी से छुपा नही है। देश-प्रेम ही के कारण इनका जातीय संगठन बहुत दृढ़ है। और सब की सामुहिक शक्ति इंगलेण्ड के लिये बहुत हितकर सिद्ध हुई है। रूपर्ट ब्रूक अपने देशप्रेम के गीत कितने गर्व से गाता है।

यदि मै किसी विदेश के कोने में भी मरूँ तो वह स्थान जहाँ मैं गाड़ा जाऊँगा सदैव के लिये इंगलिस्थान बना रहेगा। कारण कि मेरा शरीर जो इंगलिस्थान में पैदा हुआ है; यहीं की जलवायु मे बना है, यहाँ के पुष्पों और प्रकाश मे पनपा है सर्व तरह से इङ्गलिस्थान का ही एक भाग है। जब यह विदेश की मिट्टी में मिलेगा तो वह भूमि क्यों न वैसी ही हो जायगी। और मेरी आत्मा जो यहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य के दृश्यो से प्रभान्वित हुई है। जो यहाँ शांति पूर्ण वातावरण में स्नेह पूर्ण मित्रों मे आह्लादित हुई है। जब मृत्यु के पश्चात विशुद्ध रूपमें परमात्मा की ज्योतिमें मिलेगी तब भी स्पष्ट रूपमे ब्रह्माण्ड मे मेरे अंग्रेज़ी व्यक्तित्व की छाप डालेगी।

देश-प्रेम के मतवाले, देश प्रेम की उत्कंठा से आह्लादित होने वाले त्यागवीर व्यक्तियों के ऐसे अपूर्व भावों को देखकर उनके प्रति स्वतः श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। धन्य है उन अंग्रेज़ देश-सेवकों को जिन्होंने स्वयं बलिदान होकर भी निज मातृ-भूमि के मान को बढ़ाया।

भारत में भी देश प्रेम के रसिया विद्यमान है। यहाँ भी कुछ देश भक्त देश के लिये जान को हथेली पर रक्खे प्रस्तुत हैं। पर हमारी यह धरोहर केवल व्यक्तिगत है। सामुहिक देश प्रेम की कमी खटकती है। और यही हमे अंग्रेज़ो से सीखना है। देश प्रेम के पुजारियो का दल का दल चाहिये। नाम के भूखे, प्रशंसा के प्यासे आत्म-विज्ञापक नेताओ से देश-सेवा की आशा नही रखी जा सकती। ऐसे नेता किस काम के जो अपनी शक्ति मान-पत्र प्राप्त करने के गुप्त प्रयत्न में व्यय करते है। आज आप को अंग्रेज़ो के सच्चे देश-भक्तो के नाम तक जानने को नहीं मिलेंगे। वहाँ के सच्चे देश-सेवक बिना विज्ञापन व कीर्ति-कामना के चुपचाप ठोस काम कर रहे हैं। हमारे यहां तो अधिकांश देश-सेवक नामवरी के भूखे हैं। जिनकी इच्छा हर घर में अपने चित्र देखने की हो, जिनकी अभिलाषा समाचार पत्रों के अग्र-लेख व शीर्षक पंक्तियो मे अपने नाम को छपा देखने की हो, जिनकी कामना जुलूस में पुष्पहार पहन कर अपने देश भाइयों से दो फोट ऊँचा चलने की हो वे भला हमें क्या निहाल कर सकेंगे ? उनसे कुछ काम नहीं बनने का।

सोचिये जिस देश ने हमें पाल पोष कर बड़ा बनाया। जिसकी मिट्टी में हम आनंद से खेले, जिसकी प्राकृतिक छटा को हृदयंगम करके नैसर्गिक छटा का रसास्वादन किया। जिसके मीठे फलों और सुगन्धित फूलों का भोग किया। जिसके मृदुल सुवासित समीर के झोंको मे हम मग्न होते रहे; जिसके स्वच्छ और ठण्डे जल को अमृत की तरह पिया; जहाँ के पक्षियों की कलरव ध्वनि मे अनुपम स्वर्गीय संगीत का माधुर्य अनुभव किया; जहाँ की अमोघ औषधियों के प्रभाव से स्वास्थ्य को बनाए रखा; जहाँ के गगन चुम्बी पहाड़ों की शीतल जलवायु का बार बार उपयोग किया-क्या ऐसा प्यारा, दुलारा, आँखों

का तारा और जीवन का सहारा हमारा भारत हमारे लिये परम गौरव की चीज़ नहीं है। जहाँ की भाषा भाव और भेष में अनूठी दिव्यता झलकती है-क्या ऐसे सुसंस्कृत देश के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिये हम आना-कानी करेंगे ?

नहीं, हम अपने देश की आन, मान और मर्यादा की जी जान से रक्षा करेंगे। हम सब पैंतीस करोड़ भारतीय-माता के नौनिहाल लाडिले पुत्र और पुत्रियाँ हैं। इसकी बेहतरी और शोभा के लिये हम भी अंग्रेज़ों की तरह तन, मन, जन और धन से इसकी सेवा करने—समय पर इसके लिये सर्वस्व तक बलिदान करने को तैयार रहेंगे। हम भी अपने बच्चों को श्री गणेश में ही, कुत्ता-बिल्ली के नाम न रटा कर, सिखाएँगे—हम सब से पहिले भारतीय हैं और पीछे कुछ और। भारत के लिये हम सब कुछ करने को सदैव तत्पर रहेंगे। महान् अफ़सोस है हम अंग्रेज़ों के इतने लम्बे सहवास से इतना भी पूर्ण रूप से नहीं सीख पाए। खैर—जागे तब ही से सवेरा।

देश के कला कौशल को बढ़ाने के लिये, यहाँ की उपजाऊ भूमि को विशेष उपजाऊ बनाने के लिये, यहाँ के बेकार भाइयों को धन्धे पर लगाने के लिये, यहाँ के निरक्षर ऋण-ग्रस्त कृषकों को उठाने के लिये और यहाँ की स्त्रियों को जागृत करने के लिये हम आज ही से तत्पर होंगे।

साहस

कहना पड़ेगा अंग्रेज़ मौत से खेलना जानते हैं। भय इनके लिये कोई चीज़ ही नहीं। शीत प्रधान देश के कोमलांग अंग्रेज़ों को जब मारवाड़ जैसे रेगिस्तान की खिलखिलाती धूप में—नहीं नहीं तपती लूओं में जब ऊँट की पीठ पर मीलों दौरा करते देखता हूँ तो उनके साहस का कायल हो जाता हूँ। आफ्रीका ... आदि लिया जैसे अज्ञात स्थानों में जिस उत्साह, लगन और ... से इन्होंने काम किया है, संसार उसे देखकर स्तंभित है।

विज्ञान के आविष्कारों के लिये न मालूम इन्होंने कितने अटल धैर्य, दृढ़ आत्म-विश्वास और अनवरत साहस से काम लिया है। एक बार तो ये आकाश से पुष्प लाने को भी आगे बढ़ जॉयगे। ये धुनके पक्के, टेव के परिश्रमी और काम के पिछ-लगुवे हैं। सात समुद्र तेरह नदी पार कर ऐसे ऐसे भू भागों मे प्रवेश किया है जहॉ की भाषा का ये क. ख. ग. भी नहीं जानते। जहाँ के निवासी बस चले तो इन्हे ज़िन्दा हड़पने को तैयार हैं। जहॉ की जलवायु इनकी प्रकृति से सर्वथा प्रतिकूल है। पर ये लगन के सच्चे, साहस के पुतले, उत्साह के अवतार, परिश्रम के पक्के और कार्यक्षेत्र के कर्मवीर पक्की और अटल चाल से सफलता की दौड़ में सरपट आगे निकल रहे हैं।

एक हम हैं जो बिल्ली मार्ग काट गई तो रास्ते ही में पस्त-हिम्मत होकर रुक गये। किसी ने श्री गणेश करते ही छींक दिया तो चहरे पर असफलता की रेखा खिंच गई। गदहा दाहिनी ओर आ गया तो उत्साह मर गया। छिपकली उल्टी गिर पड़ी तो लौट चले। पीछे से किसी ने आवाज़ दे दी तो आशा पर पानी फिर गया। घर छोड़कर विदेश जाना, तो मौत के बराबर माना। समुद्र यात्रा को शास्त्राज्ञा से पाप समझा। 'घर की आधी भली' के भरोसे सब कुछ छोड़ बैठे। बिना जूते चलना पड़े तो पैर भुन जांये। चार छींटे बिना छाते के लग जांय तो जु़काम हो जाए। कहॉ गया हमारा उत्साह ? महाराणा प्रताप का प्रतिज्ञा-पालन शिवाजी का शौर्य; रणजीत की बहादुरी; हकीकत की हिम्मत; अकबर की अकल; सावित्री का साहस; रानडे की लगन गोखले का गांभीर्य और तिलक की तेजस्विता किधर हैं ? हमें भाग्य का सहारा छोड़ कर उत्साह का कवच धारण करना चाहिये। कायरता को उतार लगन का लबादा पहनना चाहिये। अंग्रेजों के साहस से सबक सीख कर देश के दारिद्र को दूर करने के लिये कर्मक्षेत्र में कमर कस कूद पड़ना चाहिये।

न्याय और स्त्रियों का महत्व

बड़ा अन्याय होगा यदि अंग्रेज़ों के न्याय की भूरि भूरि प्रशंसा इस सम्बन्ध में न की जाय। इनका न्याय निष्पक्ष होता है। क्यों न हो, जिन्हें अपने देश का गौरव हो, जो चाटुकार खुशामदों के झाँसे में न आते हों, जिन्हें दूध का दूध और पानी का पानी करने का विवेक हो, जो सत्य के लिये सर्वस्व त्यागना जानते हों उन्हे न्याय के आसन पर सुयश क्यों न प्राप्त हो? एक अंग्रेज़ इन्साफ़ करते समय सब के दृष्टिकोण से विचार कर लेता है।

हाँ सुना है भारत में भी न्यायकारी उच्च कोटि के थे। एक राजा ने अपने भाई तक का चोरी के अपराध में हाथ कटवा दिया था–पर यह बात है अतीत का। हमें वर्तमान समय में न्याय के मामले में सच्ची राय देने का साहस सीखना चाहिये।

जर्मनी के साथ लड़ते समय जब अंग्रेज़ों पर आफ़त के बादल मँड़रा रहे थे तब वहाँ के निपुण स्त्री समाज ने ही वक्त पर हर कार्य में मदद देकर अंग्रेज़ों की लाज रख दी।

इधर भारतीय स्त्रियाँ हैं जिन्हें पैर की जूती और मोल की बाँदी की उपमा दी जाती है। ये अंधेरे में थर थर काँपती हैं। जीविकोपार्जन में पुरुषों के पूर्ण पराधीन हैं और जिन्होंने कलह के कारण हमारे गृहों को नर्कवत् बना रखा है। स्त्रियों के उत्थान के लिये अब तक हम कुछ भी नहीं कर पाए हैं हमें स्त्रियों को साहसी, साक्षर और स्वावलम्बी बनाने में अब देर नहीं करनी चाहिये। स्त्रियों की योग्यता ही पर देश-रक्षा का दारमदार है।

हमें अंग्रेज़ों के उपरोक्त सब गुणों का सीख कर भारतीयों की गुण ग्राहकता को सार्थक करना चाहिये।

पर्दा क्यों ?

[सुन्दर-सरस-सम्वाद]
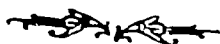
लेखक

श्री पं० शम्भूदयालजी त्रिपाठी

स्थायी ग्राहक बनकर

ज्ञान-माला के भिन्न भिन्न ३२ ट्रैक्टों का अध्ययन करिये

मूल्य एक रुपया-डाक खर्च आठ आना

प्रकाशक

ज्ञान भण्डार, जोधपुर

मुद्रकः—कुँ० सरदारमल थानवी,
श्री सुमेर प्रिंटिंग प्रेस, फुलारोड़ जोधपुर.

सन १९३६ ।

सस्ती ज्ञान-माला के ट्रैक्टों पर

लोकमत

दसवें ट्रैक्ट से आगे—

(१०) "सरस्वती" प्रयाग अपने अप्रेल १६३८ के अंक में लिखती है। ग्राम सुधार कैसे हो? (दूसरा ट्रैक्ट) लेखक श्री० मनफूल त्यागी 'प्रभाकर'—"शिक्षा परिषद्, कृषि परिषद् तथा व्यवहारिक ज्ञान परिषद् की योजनाओं तथा अनेक अन्य उपायों पर विचार किया गया है। इस कार्य के करने वाले लोग इससे लाभ उठा सकते हैं।" मृत्यु भोज कैसे रुके? (तीसरा ट्रैक्ट) लेखक श्रीनाथ मोदी 'विशारद' "किसी व्यक्ति के मरने पर तेरहीं आदि पर दिये जाने वाले मृत्युभोजों की प्रथा के विरुद्ध लेखक ने यह पुस्तक लिखी है। समाज में केवल अज्ञान तथा समाज भय के कारण अनेक अपव्यय कुरीतियाँ प्रचलित हैं। मृत्युभोज उन्हीं में से एक है। विशेषतया गरीब और अशिक्षित लोग जो कर्ज़ लेकर भी इन कुरीतियों को समाज के स्वार्थी तथा लोलुप भोजन भट्टों के भय और दबाव से करते चले जा रहे हैं। इसके लेखक ने इस कुरीति के विरुद्ध आवाज़ उठाकर तथा उसके रोकने के उपायों पर प्रकाश डाल कर समाज की सेवा की है। उपर्युक्त दोनों ट्रैक्ट जनता में वितरित होने चाहियें।

(११) आगरा का प्रसिद्ध साप्ताहिक "सैनिक" अपने ता. २४ फरवरी १६३८ के अंक में सस्ती ज्ञान-माला के ट्रैक्ट नं० १, ३, ५, ७, ८ और ६ की समालोचना इस प्रकार करता है—"उपरोक्त

❀ ॐ ❀

पर्दा क्यों ?

रामदास—भाई नवीन चन्द्र ! उस दिन सुधार-परिषद् के सभापति के पद से मुन्शी रामलालजी ने क्या कहा था कि पर्दा-प्रथा दूर करना स्त्री समाज को पतन की ओर ले जाना है और विशेषतः भारतीय नारियों को जिनमें कि अभी ज्ञान का आविर्भाव ही नहीं हुआ। केवल अधूरा व भद्दा अनुकरण ही उनके सामाजिक जीवन का एक अंग है।

नवीनचन्द्र—भाई रामदास ! आप तो आज कल बड़े बड़े गम्भीर प्रश्नों पर विचार करने लग गये हो। उस दिन की बात आज आकर कही और वह भी विवेचनात्मक रूप में। हाँ, तो भाई क्या सभापतिजी की बातों में आपको कुछ कमी नज़र आई ? मेरे विचार में तो वे बातें ठीक और न्यायसंगत ही थीं।

रा०-भाई, कमी व ज्यादती का कोई प्रश्न नहीं है। न मैं सभापतिजी की ग़लती ही निकालता हूँ, बल्कि मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि उनमें से कुछ बातें मेरे ध्यान में नहीं आईं। सम्भव है सभापति महोदय ठीक ही कह रहे हों पर अपने अपने विचार ही तो है और विचार करने में प्रत्येक पुरुष स्वतन्त्र है। सभापतिजी ने भी अपनी स्वतन्त्र राय ही दी थी। उन्होंने हम लोगों को ऐसे वेद पुराण खोलकर थोड़े ही दिखाये थे जिनमें पर्दा-प्रथा की पुष्टि की गई हो।

न०-तो क्या आपके ख़याल से स्त्रियों को कोल-भीलनी बना कर घुमाना अधिक हितकर है?

रा०-तो क्या कोल-भीलनी ही पर्दा प्रथा न मानने की अधिकारिणी है। अथवा जो पर्दा नहीं करतीं वे सब कोल-भीलनियों की ही कक्षा में हैं। यदि आपके ऐसे विचार हैं तो आपसे इस विषय में चर्चा चलाना व परामर्श करना सर्वथा व्यर्थ ही है।

न०-चाहे आप व्यर्थ समझो या अव्यर्थ मैं तो दावे के साथ कहूँगा और मरते समय तक, नहीं नहीं कब्र में भी कहता चला जाऊँगा कि पर्दा करना अच्छा है। स्त्री समाज की रक्षा है तो पर्दे में, जीवन है तो पर्दे में; उन्नति का मार्ग है तो पर्दा, अवनति की रोक है तो पर्दा, कुल की शान है तो पर्दा, स्वर्ग की सीढ़ी है तो पर्दा। क्या पर्दे के समर्थक प्राचीन बड़े बड़े भारतीय-भद्र पुरुषों ने घास खाकर अपना मस्तिष्क परिपुष्ट किया था? क्या उनके विचार अपना कुछ मूल्य ही नहीं रखते थे?

रा०-क्या यह भी कोई बात है बड़े आदमियों ने जो नियम किसी समय बनाये थे वे आज भी लागू हों? यह तो केवल अंध-विश्वास है। जैसे आज आप उनकी नक़ल करते हैं सम्भव है वे भी अपने अग्रजों का अनुकरण इसी अन्ध-विश्वास से करते रहे हों और नियम बनाने वालों ने समयानुकूल कोई नियम किसी मुख्य कारण-वश थोड़े समय के लिये बना लिया हो।

न०- तो क्या आपकी समझ में अब पर्दे की आवश्यकता नहीं है। ये जो बड़े बड़े घरानों के लोग पर्दा रखते हैं क्या वे बेसमझ-बमल्ल ही हैं?

रा०—बौड़म-बसन्त की बात नहीं। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि प्रत्येक मनुष्य अपने विचारों में स्वतन्त्र है। हो सकता है कि उनके विचार इसी पर्दा-प्रणाल को दाद देते हों अथवा उनमें भी कुछ सज्जन आपकी तरह अन्धविश्वासी हों या कुछ हृदय की संकीर्णता से लोक-लज्जावश ऐसा करने के लिये विवश हों। पर मेरी राय में तो अब पर्दे की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी आप उसकी पुष्टता करते दिखाई पड़ते हैं।

म०—आप अंग्रेजी रंग में रंगे हैं इसलिये आपका ऐसा उत्तर देना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भला यह तो बताइये कि क्या पर्दा रखने वालों में कोई भी मेधावी-विचारक नहीं है जो इसकी हानियाँ पर विचार कर इस कुप्रथा को दूर करता। मुझे तो पर्दा दूर करने में कोई लाभ दिखाई नहीं देता, और है भी तो नहीं।

रा०-क्या लाभ कुछ भी नहीं? तुम भी कैसी बातें करते हो [illegible]वीन! देखिये! कोल-भीलनी पहाड़ी व जंगली जातियाँ जो इस प्रथा से सर्वथा परे हैं, कैसी हृष्ट-पुष्ट हैं। पर्देवालियों से ज़रा [illegible]ाथ तो मिलवाइये, मिलाते ही मूली की तरह तोड़ धरेंगी। [illegible]र्दा न रखने से उन्हें खुली साफ़ वायु मिलती है। सूर्य-प्रकाश [illegible] दर्शन होते हैं। तभी तो शरीर सुदृढ़, नीरोग तथा मन [illegible]त्साही और उनके जीवन सुखमय हैं।

म०—हाँ भाई! अगर यही मूर्खता-पूर्ण जीवन आपको रुचि-[illegible]र व सुखमय मालूम पड़ता है तो "ऊधो मन माने की बात, [illegible] छुहारा छाँड़ि अमृत फल विष कीड़ा विष खात" वाली [illegible]हावत है। मेरी समझ में तो पर्देवाली स्त्रियाँ काफ़ी मोटी

ताज़ी हैं और विचारी भीलनी दुबली-पतली, मैली-कुचैली और रोगल सी है।

रा०—यह तो केवल आपका भ्रम है। दुबले पतले ही यदि रोगी ख़याल कर लिये जाँय तो मोटे मानव-समुदाय का कभी सर भी नहीं दुखना चाहिये। लेकिन मैं इसके विपरीत देखता हूँ, नागरिक कहाने वाली कोमलांगनाओं मे बड़े बड़े सक्रामक रोग पाये जाते हैं। सैकड़ों, हज़ारों प्रतिवर्ष अकाल-काल के गाल में पड़ती हैं, लाखों औषधालयों में अपना जीवन बिताती हैं, अपर्याप्त संख्या में इस जीवन से दुःखी हो अपना अन्त ही कर बैठती है। मृत्यु-संख्या के आँकड़ो से साफ़ प्रकट होता है कि पर्दे में रहनेवालियों की मृत्यु संख्या खुली हवा में रहने वालियों अथवा पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक और रोमाञ्च-कारी है।

न०—इससे तो यह मालूम हुआ कि आप अंक गणित में बहुत कमज़ोर हैं। अरे! नगरों व क़स्बों की आबादी, जंगली छोटे छोटे गाँवों की अपेक्षा कहीं अधिक है। और यहाँ बहु संख्या में पर्दे वाली हैं। पहाड़ी, जंगली पुरवों (ढाणी) में आबादी बहुत कम है। इसलिये मृत्यु भी आबादी के अनुपात से होती है। इसमें पर्दे बेचारे ने कौनसा यम-दूतों को निमन्त्रण देकर बुलाया है!

रा०-नहीं, तुम्हारे विचार सीमित हैं। जिस प्रकार प्रत्येक बीमारी का जन्मदाता नगर है उसी प्रकार उन रोगों का ... पर्दा है।

न०—तब तो अंग्रेज़ युवतियों को बीमार ही नहीं होना चाहिये क्योंकि वे तो पर्दे के इतनी ही विरोध में हैं जितनी कि नाक से सर के पिछले भाग की चोटी।

रा०—हाँ तो वे आपको पर्दे वालियों से कम मात्रा में बीमार मिलेंगी। आप मलेरिया के समय मे अंग्रेज़ों के बंगलों पर जाकर देखिये और एक बार अपनी पर्दे वालियों की ओर, तब दोनों क तुलना कीजिये।

न०—तो पर्दा न करने से उनमें दोष भी पाये जाते हैं। इच्छित स्थानो पर घूमती है, मन चाहे पुरुषों से हाथ मिलाती हैं। उन से उचित अनुचित सभी प्रकार की बातें करती है पर्दा न करने से ये हानियाँ भी तो हैं।

रा०—अरे! ये बातें जो आपको दृष्टि में दोष हैं उनकी सभ्यता में शामिल हैं। येपर्दगी ने इसमें क्या कर दिया? मानलीजिये आपकी स्त्री पर्दा नहीं करती तो क्या बिना बोले या हाथ मिलाये लोग उससे बोलने या हाथ मिलाने लगेंगे? भारत के कुछ प्रान्तों में पर्दा न करने वाली स्त्रियाँ भी है किन्तु, वे न कहीं वेमतलब घूमती है न हाथ मिलाती है न बात करती है क्योंकि उनकी सभ्यता उनको ऐसा करने के लिये मज़बूर नहीं करती।

न० -तो कम से कम भारत में ऐसे कई उदाहरण आपको मिल जायेंगे, जिनसे साफ़ प्रकट होता है कि पर्दा न करने से देश को भारी हानि हुई है। चित्तौर की पद्मिनी रूपवती थी। भाटों ने उसकी प्रशंसा अलाउद्दीन के कानों तक पहुँचाई। वह सेना लेकर चढ़ आया। फल यह हुआ कि अपने मान पर मर-

मिटने वाले लाखों राजपूत तलवार के घाट उतारे गये। यदि पद्मिनी पर्दे में रहती और सिवाय राणा भीमसिंह के उनको कोई देखता ही नहीं तो अलाउद्दीन को क्या कोई स्वप्न आता था जो लाखों का ख़ून करता। भाई! इससे तो यही स्पष्ट है कि पर्दा मान-प्रतिष्ठा का रक्षक है।

रा०-हाँ यह बात आपकी सत्य है। वह समय पर्दे का अवश्य था और वैसे कामुक-पुरुषों के शासन-काल में यह प्रथा उपयुक्त थी, मगर अब ऐसे सुख-शान्तिमय वातावरण में पर्दे की क्या आवश्यकता है? अब तो इससे लाभ के बदले भयंकर हानियाँ हो रही हैं सुनिये पिछले साल का तो क़िस्सा आप ने भी सुना होगा जो अजमेर स्टेशन पर हुआ था।

न०-कौन सा क़िस्सा? मुझे तो उस क़िस्से का ज़रा भी ध्यान नहीं है।

रा०- कहते हैं कि एक सज्जन अपनी स्त्री और अल्प वयस्क शिशु के साथ अजमेर स्टेशन पर उतरे। कुली पर सामान लदा-कर आगे आगे आप, उनके पीछे सामान से लदा कुली तथा कुली के पीछे बच्चे को गोद में लिये आपकी श्रीमती जा रही थीं। बाबूजी किसी ऐसे गम्भीर विचार में निमग्न थे कि स्त्री बच्चे का उन्हें ध्यान ही न रहा और इस प्रकार बहुत आगे निकल गये। कुली था गुन्डा। मौक़ा पाकर एक ऐसे मार्ग से निकला जहाँ का बाबूजी ख्वाब में भी ख़याल न कर सकते थे। अब चूँकि बेचारी स्त्री ने अपने घूँघट के अन्दर अपने नेत्रों को क़ैद कर रखा था। इसलिये उसे सिवाय कुली के पैरों के और कुछ दिखाई न देता

था। बस बेचारी कुली के पीछे पीछे चली गई, बाबूजी को इन बातों का कुछ पता ही न था। जब बहुत दूर निकल गये तो घूम कर देखा पर "अब पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत"। न स्त्री थी, न बच्चा, और न सामान। बहुत दौड़-धूप की रोये-चिल्लाये मगर स्त्री-बच्चे का कोई पता न लगा। आखिर अपनी अज्ञानता व पर्दा-बन्धन को रोते-कोसते चले गये। सोचिये तो! बेचारी अबला की क्या दशा हुई होगी? कहिये यह पर्दा कैसा भाव पड़ा? भाई, ऐसे पर्दे से तो खुदा बचावे।

न० भाई! आप तो एक-आध अपवाद लेकर एक प्राचीन था लाभदायक-प्रथा का अकारण खण्डन कर रहे हैं और व्यर्थ उसको कामुक-वातावरण का परित्रायक सिद्ध कर रहे हैं। अच्छा तो बताओ, त्रेतायुग तो कामुकों का शासन-काल न था, उस समय तो भारत अपना आदर्श समस्त देशों के समक्ष रखता था। ऐसे समय में भी विश्वामित्रजी जब घोर तपस्या में निमग्न थे तो मेनका नामक अप्सरा ने अपने रूप-लावण्य तथा हाव-भावादिकों से उनका मन अपनी ओर सहज ही में खींच, उनके हजारों वर्ष के तप को क्षण भर में धूल में मिला दिया। यदि वह पर्दा करती होती और विश्वामित्र के सामने प्रत्यक्ष रूप में न आती तो ऐसा भयंकर अनर्थ क्यों होता? जब ऋषियों की यह दशा है तो जन साधारण की तो बात ही क्या?

रा०-आप ने भी तो विश्वामित्र का एक अपवाद ही प्रस्तुत किया। अच्छा आप ही बतलाइये कि पहले समय में पर्दा करना कैसा था? स्त्रियाँ पुरुषों की भाँति सब कार्य ... [illegible]

युद्ध करती थीं, पठन-पाठन कर कार्य सम्पादन करती थीं, यहाँ तक कि पुरुषों का वामांग स्त्रियाँ थीं और अब केवल पैर की जूती समझी जाती हैं। क्योंकि हमने पर्दे में बन्द कर उनकी मानसिक-शारीरिक-शक्ति को नष्ट कर दिया है, वे हमारे किसी कार्य में सहायक होने योग्य ही नहीं रही। देखो! श्री रामचन्द्र जी सरीखे महान् पुरुषों ने भी स्त्री को उचित स्थान दिया था। यहाँ तक कि जंगल में भी अपनी स्त्री सीताजी को साथ रखा। यह स्त्रियोचित स्वतन्त्रता ही तो उनके जीवन को उज्ज्वल व सुखमय बनाती और वे अन्यान्यों के लिये आदर्श रूप बनती थीं। क्या आपको मालूम है कि ऋगवेद जो सब से प्राचीन है, किसके मस्तिष्क के विकास का फल है? वे भी तो स्त्रियाँ ही थीं।

न०—स्त्रियाँ किसी समय में उन्नति पथ पर अवश्य थीं पर उनकी यह उन्नति चिरस्थायी नहीं रही। रामचन्द्रजी का ही उदाहरण लीजिये न, यदि सीताजी आजकल की पर्दावालियों की तरह घर में पर्दा करके रहतीं और वन में रामचन्द्रजी के साथ न जातीं तो रावण उनको कभी न देखता और न उनका हरण करता। रावण ने जंगल में उनके रूप लावण्य को देखा और उसे मोह उत्पन्न हुआ, बस उसने चोरी की अर्थात् सीता को वायुयान पर चढ़ा अपनी राजधानी लंका में ला रखा। रामचन्द्रजी ने सीता जी की रक्षा के लिये लंका पर चढ़ाई की। फलस्वरूप असंख्य प्राणियों का संहार हुआ और देश एक युग के लिये बल, विद्या बुद्धि से रहित हो अपंग हो गया। क्या आप नहीं मानेंगे कि इस सर्वनाश का कारण बेपर्दगी थी? भाई! एक नहीं अनेक

उदाहरण ऐसे बता सकता हूँ कि बेपर्दगी देश को रसातल में पहुँचाने की कुञ्जी है। क्या आप नहीं जानते कि भारत मुसलमानों के हाथ कैसे आया ? जयचन्द राठौड़ की पुत्री संयुक्ता का हरण पृथ्वीराज ने उसके सौन्दर्य के कारण किया। क्योंकि पृथ्वीराज ने प्रशंसकों द्वारा पहले ही उससे शादी करने का निश्चय कर लिया था। ज्यों ही सभा-मण्डप में संयुक्ता आई, पृथ्वीराज ले भागा। यदि आजकल की तरह घर के अन्दर शादी होती तो पृथ्वीराज को न ऐसा मौक़ा मिलता और न भारत के दो सम्राटों मे मनमुटाव होता।

रा०-भाई ! सर्वनाश का कारण बेपर्दगी कहना कदापि न्यायसंगत नहीं। यदि ऐसा ही था तो सूर्पणखा उत्तम रूप धारण कर राम व लक्ष्मण दोनों भाइयों के पास जब आई थी। तो ये लोग उस पर मोहित क्यों न हुए और इन लोगों ने उसे स्त्री बनाना क्यों न स्वीकार किया ? यह एक ही उदाहरण आपको समझावेगा कि पर्दा करने व न करने से पुरुषों की इच्छाओं में कोई परिवर्तन नहीं होता। पर्दा तो केवल दोषों को ढकने का आच्छादन है।

न०-भाई ! इसका कारण तो यह था कि शूर्पणखा जंगल में घूमा करती थी। इन लोगो ने इसे कई बार देखा था। उसके रूप लावण्य में वास्तविकता कुछ भी न थी केवल कृत्रिमता थी। आकर्षण वास्तविकता में ही है, कृत्रिमता में नहीं; अतः राम लक्ष्मण इसके चंगुल में न फँसे। यदि शूर्पणखा वास्तव में सीता जी के समान रूप लावण्य में होती और इस प्रकार वन में

अकेली घूमती तो सम्भव था कि विश्वामित्र जी की तरह से राम लक्ष्मण को भी अपनी नीयत डिगानी पड़ती।

रा०-आपके कहने से यह भी निष्कर्ष निकाला जासकता है कि सदा घूमने और पर्दा रहित बाला पर लोगों का झुकाव कम होता है और इसके विपरीत बन्द, गोप्य वस्तु की ओर जन साधारण का मन विशेषरूप से आकर्षित होता है। अर्थात् एक स्त्री यदि मार्ग में खुले मुँह जारही है तो लोग एक बार से अधिक उस पर दृष्टि पात भी न करेंगे और पर्देवाली बाला के साथ सौन्दर्य जिज्ञासु नेत्र बार बार आँख मिचौनी खेलेंगे और न मालूम यह जिज्ञासा किस रूप में परिणत हो जाय? भाई, ऐसी परिस्थिति में तो यह पर्दा समाज के लिये कण्टक है। कण्टक ही नहीं विषधर साँप है।

न०-यह कल्पित जिज्ञासा न कोई स्थायित्व है और न कोई मार्मिक आघात। बल्कि ऐसे उदाहरण मिल जायेंगे जिनसे सिद्ध होता है कि पर्दानशीन स्त्रियों के रूप सौन्दर्य पर लोगों का उतना ही विश्वास है जितना कि आर्यसमाजियों का भूतों पर।

रा०—सो कैसे?

न०-सुनिये? एक बार का जिक्र है कि किसी प्रान्त में स्त्री विक्रय का बाज़ार ऐसा गर्म हुआ जैसा पशुओं का होता है। बिक्री का ढंग यह था कि स्त्री को साफ़ सुथरे कपड़े पहना कर एक बुर्का ओढ़ा दिया जाता था। खरीदने वाले महाशय केवल पैर का रंग देखकर खरीद करते थे। एक दिन इसी प्रकार आदमी ने ग्यारह सौ रुपये में एक स्त्री खरीदी। मगर

जब घर लेजा कर देखा तो साठ वर्ष की सफेद बालों की बुढ़िया निकली। सारे प्रान्त में सनसनी सी फैल गई तथा उस दिन से पर्दा-आच्छादित-सौन्दर्य का कोई मूल्य ही न रहा। न पर्दे वाली स्त्रियो के सौन्दर्य तथा अवस्था की ही लोग कल्पना कर सके। इस प्रकार से पर्दा कई संक्रामक सामाजिक रोगों से हमें मुक्त करता है।

रा०-यही तो एक मार्के का दोष पर्दे के अन्दर छिपा था। अगर उस बुढ़िया को यों ही बिना पर्दा लोग बेचते तो शायद उसको कोई आँख उठाकर भी न देखता, लेकिन पर्दा के आकर्षण ने ग्राहक को अन्धा बना डाला, जिसके कारण वह इन्द्रिय-श्रेष्ठ आँख से भी काम न ले सका। पर्दे ने उसके मन को अधीर कर दिया। भाई! यहाँ तो घोर पतन का कारण पर्दा ही था और वास्तव में अधीरता व आकर्षण का कारण पर्दा ही है। नाटक में जाओ जब तक पर्दा नहीं उठता, मन-आँखें अत्यन्त उत्सुकता-पूर्ण उधर ही लगी रहती है। पर्दा हटने पर कुछ विशेषता दृष्टि-गत नहीं होती। जादूगर का खेल देखिये जब तक पर्दे में हाथ व सामान रहते है; मन में क्या क्या भावनायें जागृत होती है। छात्रों की परीक्षा का समय देखिये? जब तक पर्चे पर्दे अर्थात् लिफाफा में रहते है छात्रों के मन में क्या क्या कल्पनायें होती है। इस प्रकार एक नहीं दो नहीं सैकड़ों उदाहरण ऐसे मिल जावेंगे जो पुकार पुकार कर कह रहे हैं "पर्दे का मार्ग पतन की ओर है"। पर्दा कौमी ताकत को बरबाद करता है।

न०-अच्छा आप ने पर्दे के अनेक दुर्गुण बखान किये और

कर दिया पर यह तो आप मानते हैं कि पर्दा न करने वाली स्त्रियाँ भीलनियों के रूपाकार की होती हैं और स्त्रियोचित गुण रूप लावण्य से तो सर्वदा उन्हे वंचित ही रहना पड़ता है तो फिर ऐसी कुरूपा स्त्रियों का पुरुष समाज की दृष्टि में क्या मान हो सकता है ?

रा०-अफ़सोस ! आप मेरी अर्थमेटिक कमजोर बताते थे पर आप ने अपनी भूगोल की तरफ़ तो ध्यान दिया ही नहीं जो वास्तव में कमज़ोर है। क्या आप ने काश्मीर-प्रदेश के पहाड़ी गांवों के सौन्दर्य का अवलोकन किया है ? आप ज़रूर यहाँ तर्क करेंगे कि शीत-प्रदेश प्राकृतिक सौन्दर्य-देश है। ऐसी परिस्थिति में आप जैसलमेर के रेगिस्तान की ओर चलिये। वहाँ स्त्रियाँ पुरुषों से बलवती हैं, रूप सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमायें हैं, स्वास्थ्य की जीवित जागृत मूर्तियाँ हैं, आप दूर न जाइये अपने नगर ही में देखिये न, जो जतियाँ पर्दा-प्रथा की क़ैद में सड़ती हैं, उनके सौन्दर्य की उपमा सिवा कपास के और किस से दी जा सकती है और अगर कोई उपमा संसार में है भी तो हल्दी या पीला रंग, किन्तु जो जातियाँ पर्दे के कठिन कारागार में कैद नहीं हैं, अपना समस्त कार्य अपने हाथों करती हैं उनका सौन्दर्य कुछ और है। उनके सौन्दर्य में स्वास्थ्य का अपूर्व संयोग है। एक ओर स्थान-सौन्दर्य तथा दूसरी ओर स्वास्थ्य और सौन्दर्य दोनों। "बस सोने में सुगन्ध है"।

न०-खूब, तब तो तुलसीदास जैसे दिग्गज कवि प्रकाण्ड विद्वान आपकी नज़र में कुछ भी मूल्य नहीं रखते। उन्होंने पूरे शब्दों में लिखा है कि "जिमि स्वतन्त्र होइ बिगरहिं नारी"

आख़िर उन्होंने भी सोचा हो होगा और ठीक भी तो है स्वतन्त्रता की पहली क्लास पास करना पर्दा-प्रथा को दूर कर देना है।

रा०-भाई तुलसीदासजी का स्थान साहित्य में चाहे जो कुछ भी हो पर सामाजिक क्षेत्र में उनका रूप ही दूसरा है। आप भले ही मेरा नाम मुँहफटों की सूची मे लिख दें पर मैं बेसाख़्ता कहूंगा कि उनकी रामायण पक्षपात से खाली नहीं है। सिवा एक सीताजी के सारे संसार की स्त्रियाँ उनकी दृष्टि में धूलवत् या पाप मूर्तियाँ थीं। भाई! चिराग़ को अपने नीचे का अन्धेरा नहीं दिखाई देता। देखिये न बेचारी उर्मिला का उन्होंने कहीं जिक्र तक न किया जिसने अपने सुखों पर लात मार कर अपने सुहाग वीर लक्ष्मण को भाई की सहायता व क्षात्र--धर्म को निबाहने के उद्देश्य से चौदह वर्ष के लिये सानुरोध वन में भेज दिया था। ऐसे संकीर्ण हृदय सामाजिक स्थिति से अनभिज्ञ साधु महात्माओं ने भारत को और भी रसातल में भेज दिया है।

म०--अन्त में आपको मानना ही पड़ेगा कि पर्दा प्रथा को दूर करने से स्त्री में अहमन्यता के अंकुर उत्पन्न होते हैं। धीरे धीरे वे अपनी मर्यादा को बिल्कुल भूल बैठती हैं। आत्मीय-जन गुरु-जन सब उनकी दृष्टि में हेय हो जाते हैं। गृह-कार्य में उनका मन नहीं लगता। मनमाने काम मनमाने पुरुषों से बात चीत करती हैं। जिन देशों व जातियों की आप नक़ल कर रहे हैं क्या आप जानते हैं कि उन में निन्दित नारकीय कुत्सित कुकर्मों की सामाजिक विषैली गैस नहीं फैली है? क्या आपको मालूम है कि जिस समाज में स्त्रियों को विशेषाधिकार हैं, हमारी

अपेक्षा उनमें कितनी शुद्धता है ? मैं तो समझता हूँ उनकी जड़ में दीमक लग चुकी है। देखिये न आपके कथनानुसार जब भारत में पर्दा--प्रथा न थी तो कैसे कैसे अनर्थ हुए और वह भी ऐसे साधु सन्तों द्वारा जिनके सम्बन्ध में ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

रा०--भाई साहब ! यह पर्दे की कमी नहीं, यह तो शिक्षा शैली की कमी है। क्या सावित्री देवी को आप भूल गये ? क्या उस देवी ने समान अधिकार पाकर किसी को दुःख दिया था, अवज्ञा की थी अथवा अधिकारों का दुरुपयोग किया था ? क्या भक्त शिरोमणि मीरा बाई ने शिक्षित होकर और पर्दे के पाप से बचकर समाज को धक्का पहुंचाया था ? यह तो हमारा आपका केवल भ्रम--मात्र है कि स्त्रियाँ अधिकार पाकर कंटक बनेंगी। मैं बलपूर्वक कह सकता हूँ कि भारतीय ललनाओं ने भारतीय पुरुषों को समय पड़ने पर देश के उत्थान में सहयोग दिया है।

न०--भाई ! यह सहयोग की बात समझ में नहीं आई और विशेष कर देश के उत्थान में सहयोग देना। हाँ यदि केवल इतना ही कहते कि गृह सम्बन्धी कार्य रोटी पानी के अतिरिक्त अपने छोटे छोटे बच्चों को शिक्षा दे लेती थी तो बात माननीय भी थी। आपके शब्द तो स्त्रियों के ऐसे पृष्ठ-पोषक हैं मानो उन्होंने फ्रांस और जर्मन को विजय कर देश के उत्थान में सहयोग दिया हो।

रा०-अरे भाई ! फ्रांस व जर्मन नहीं-ये तो स्वर्ग पर भी विजय प्राप्त कर चुकी हैं। क्या मालूम नहीं, जब राजा दशरथ

इन्द्र की सहायता के लिये स्वर्ग-लोक गये थे तो वहाँ पर असुरों के साथ युद्ध होते समय राजा दशरथ के रथ की धुरी टूट गई थी उस समय कैकेई ने जो वीरता दिखाई थी आज तक भारत का बच्चा बच्चा उसे जानता है।

न०-तो क्या आपके विचार से स्त्रियों को "शेक हैण्ड" करना चाहिये ? कम से कम मैं तो इन बातों का कट्टर विरोधी हूं।

रा०-"शेक हैंड" का तो मैं आपसे भी ज़्यादा विरोधी हूं पर इसका भी विरोधी हूं कि तीन फीट का लंबा घूँघट है और बनावटी शर्म के मारे भीगी बिल्ली की तरह बदन सिकोड़े बैठी है। यहाँ तक कि घर तक के किसी आदमी को भी छाया दिखाना पाप समझती है। परन्तु व्याह इत्यादिक मनोरंजक अवसरों पर देवर, जेठ, सास-ससुर, भाई तथा पिता के सम्मुख गाली गाने और अश्लील शब्द सुनाने में एक शब्द भी उठा नहीं रखती हैं ? मैं तो केवल उचित मर्यादा-पालन के पक्ष में हूं।

न०-तब तो कोई झगड़ा ही नहीं। मैं तो यह समझता था कि आपको सभापतिजी की बातें पसन्द ही नहीं आईं और आप आवेश में आकर उनका खण्डन करने लगे हैं।

रा०-नहीं भाई ! सभापतिजी तो अपने गुरु ही हैं, उनकी बातों का खण्डन करना मेरे लिये तो ऐसा है जैसे चींटी का समुद्र पार करना। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि अपने अपने विचार हैं। आप इस विषय में सभापतिजी से चर्चा भी न चलाना। सम्भव है वे ख़याल कर बैठें कि "लड़के हमारी बातों का विरोध करते हैं" और इस प्रकार उनके हृदय पर आघात

पहुँचे। इससे मुझे भी दुःख होगा। हमारी यह तर्क-वितर्क-शक्ति उनके चरणों का ही आशीर्वाद है।

न०-तो आप डरते भी जाते हैं और विरोधात्मक बातें भी करते जाते हैं। भाई खूब! आप तो दोनों पहलू पर नाचने वाले पुरुषों में से हैं।

रा०-डरने का प्रश्न तो यह कि जो अपने पूज्य से न डरे वह मनुष्य मनुष्य ही नहीं। तभी तो मैंने कहा था कि स्वतन्त्रता खराब नहीं शिक्षा की शैली खराब है। मैं तर्क वाचस्पति भी हो जाऊँ तो भी क्या अपने सभापतिजी से बहस में बाजी ले सकता हूँ! हमारा आपका तो पारस्परिक मैत्री-संलाप था।

न०-भाई! तो अब चलता हूँ आज तो बहुत अधिक समय वार्तालाप में ही व्यतीत होगया। माताजी ने आवश्यक कार्यवश बाज़ार भेजा था वे प्रतीक्षा करती होंगी।

रा०-तो आप जायँगे ही? अच्छा पधारिये। यदि विनोद में आकर मैंने कुछ ऐसे वैसे शब्द कह दिये हों तो क्षमा करना

न०-अरे यार! क्षमा का प्रश्न कैसा? हमने भी तो ऐसे वैसे शब्द कहे होंगे। मैत्री में क्षमा-याचना कैसी? अच्छा तो अब यह तो न पूछोगे—पर्दा क्यों?

रा०-खूब यह एक ही कही?

न०-(हँसता हुआ) अच्छा, आज्ञा हो।

रा०-पधारिये।

स्थायी ग्राहकों की क्रमशः सुनहरी नामावली
[पूरे पते सहित]

बारहवें ट्रैक्ट से आगे—

२८७ श्री महावीर जैन विद्यालय खीचन, २८८ गजमलजी सिंघवी माणक चौक जोधपुर, २८९ चंदूलालजी अध्यापक दरबार हाई स्कूल जोधपुर २९० देवकीनन्दनजी हैड मास्टर दरबार लोअर प्राईमरी स्कूल चाडी पो० खींवसर, २९१ बालकृष्णजी व्यास पता डाक्टर भैरूंदासजी चतानियों की गली आऊवा की हवेली के पीछे जोधपुर, २९२ अमरचंदजी कोचर अमर भवन फलोधी, २९३ वीरेन्द्र नैनजी गुप्ता M.A. अध्यापक दरबार हाई स्कूल जोधपुर, २९४ रामकृष्णजी पता राधाकृष्णजी गांगेलाव की पोल जोधपुर, २९५ गिरधारीलालजी चुन्नीलालजी पो० हाला (सिंध), २९६ मेहरचंद दयारामजी बैंकर पो० हाला (सिंध), २९७ माणकलालजी नेनूरामजी खांगर की हवेली के पास जोधपुर, २९८ सूर्यप्रकाशजी मोतीलालजी गुलाब सागर की नहर पर नागोरियों का बास जोधपुर, २९९ गोवर्धनजी शर्मा जसवन्त सराय के सामने हेमराजजी का ढाबा जोधपुर, ३०० सीतारामजी लालस अध्यापक नागौरी गेट स्कूल जोधपुर

(आगे तेरहवें ट्रैक्ट में देखिये)

दुकानदारी कैसे सफल हो ?

लेखक—

श्रीनाथ मोदी 'विशारद'

इन्स्ट्रक्टर, गवर्नमेन्ट टीचर्स ट्रेनिंग स्कूल जोधपुर

नैष्ठिक ब्रह्मचारी महात्मा 'ॐ' श्री आनन्दस्वरूपजी महाराज
का

ज्ञान-माला के प्रथम पाँच ट्रैक्टों पर अभिमत

इन्हें सामाजिक सुधार तथा तत्संबंधी क्रांति एवं मनुष्योपयोगी सामग्री से परिपूर्ण पाया। सुधारेच्छुक पुरुषों को इन्हें पढ़ कर स्वयं लाभ उठाकर दूसरों को लाभ पहुंचाना चाहिये।—ॐ विश्वात्मा जोधपुर।

प्रकाशक

धीरजमल पच्छावत.

ज्ञान भण्डार. जोधपुर.

मुद्रक—कुं० सरदारमल थानवी

श्री सुमेर प्रिंटिंग प्रेस [illegible], जोधपुर

[illegible] १९३६ } स्थाई ग्राहकों से १२ ट्रैक्टों का [illegible]
डा० ख० सहित [illegible]

स्थाई ग्राहकोंकी पूरे पते सहित नामावली

३३६ मंत्रीजी ओसवाल हितकारणी सभा लाडनू, ३३७ मोहनलाल
वेद श्रीचन्दजी चम्पालालजी ७-१ बाबू लाल लेन कलकत्ता, ३३८ बच्छ
जी वेद तनसुखलालजी श्रीचन्दजी चौथी पट्टी लाडनू, ३३९ डालमचन्द
मोहनलालजी वेद चौथी पट्टी लाडनू, ३४० सागरचन्दजी भंसाली, मो
चन्दजी भैरूंदानजी भंसाली दूसरी पट्टी लाडनू, ३४१ जौहरराजजी
हनोरमलजी चेतरूपजी कोठारी लाडनू ३४२ झूमरमलजी पूनमचन्द
पगारिया सातवीं पट्टी लाडनू, ४३ चन्द्रमलजी मूलचन्दजी पगा
सातवीं पट्टी लाडनू, ३४४ चिरंजीलालजी वर्मा अलवरवाले टेलर मा
फलोदी, ३४५ रामचन्द्रजी राठी पीम्पलगाव काला (बुलडाना-बरार)
३४६ त्रिवेनीप्रसादजी हैड मास्टर दरबार स्कूल लूनी जंक्शन, ३४
उम्मेदसागरजी यति उपाश्रय नारलाई पो० घानेराव, ३४८ मूलचन्द
चण्डालिया नारलाई पो० घानेराव, ३४९ मुकुन्दलालजी जोशी असि
दरबार स्कूल नारलाई पो० घानेराव, ३५० मोतीलालजी हैड मास्टर दरबा
स्कूल नारलाई पो० घानेराव, ३५१ विशनराजजी भंडारी कष्टम थाना
देसूरी, ३५२ शिवपुरीजी भैरोपुरीजी देसूरी, ३५३ मूलसिंहजी B A
L. B. नायब हाकिम देसूरी, ३५४ डाक्टर रामसिंहजी स्टेट डिस्पेंसरी देसू
३५५ हिम्मतमलजी जैन प्रोटर देसूरी, ३५६ अमरसिंहजी अध्यापक पो
गोनम महम। (बन्नी), ३५७ मंत्रीजी हितवर्द्धक जैन सभा देसूरी, (अपूर्ण)

ॐ

दुकानदारी सफल कैसे हो ?

आज चारों ओर से यही पुकार सुनाई देती है कि व्यापार में शिथिलता छा रही है; दुकानदारी में पूरा पल्ले नहीं पड़ता; माल की बिक्री धड़ल्ले से नहीं होती; माल की खपत घट रही है। ऐसी दशा में व्यापारी करें तो क्या ?

परन्तु आपको यह भी मानना ही पड़ेगा कि वर्तमान समय में लोगों की आवश्यकताएँ निरन्तर बढ़ रही हैं। नित्य नई चीज़ों के आविष्कार हो रहे हैं। तब क्या कारण है कि ऐसी परिस्थिति में भी भारतीयों की दुकानदारी नहीं पनपती ? इस लिये आवश्यक है कि दुकानदारी की वर्तमान दशा पर विचार किया जाय और बिक्री बढ़ाने के नवीन साधनों को प्रकाश में लाया जाय।

कच्ची चीज़ों का संग्रह कर विदेश भेज देना व्यापार के लिये बुरा है क्योंकि इससे उद्योग धन्धों को धक्का पहुँचता है। जिस देश में पक्की चीज़ें तैयार की जाती हैं वहीं व्यापार चलता है। कल कारखानों की तैयार की हुई चीज़ों को प्रयोग करने वालों के पास पहुँचाने का सबसे उत्तम और सुविधा का साधन ही दुकान है। दुकानदारी की पद्धति ही चीज़ों के प्रचार में प्रधान सहायक है। जिस देश में दुकानदारी की प्रथा दूषित होती है वहाँ के कल कारखाने पनपते ही नहीं। इतना ही नहीं ग्राहकों को भी चीज़ें प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

भारतवर्ष के दुकानदारों ने जिस पद्धति का अभ्यास कर रक्खा है उससे ग्राहकों और दुकानदारों दोनों को बहुत दिक्कत उठानी पड़ती है। ग्राहक सदैव दुकानदार से सशंक रहता है कि कहीं मुझे वह ठग न ले। और तो और चीज़ों के मूल्य के निर्णय में ही बहुमूल्य समय का अपव्यय होता है। इस तरह मौजूदा प्रणाली दुकानदारी के लिये परम घातक है। ऐसी एक नहीं अनेक बातें गिनाई जा सकती है-पर उन सबका यह उल्लेख करना व्यर्थ है क्योंकि यह सब लोगों के अनुभव की बात है।

अतः वर्तमान दुकानदारी की आलोचना न कर आदर्श दुकानदारी के सिद्धान्तो पर ही इस ट्रैक्ट में प्रकाश डालना इष्ट है।

स्वतंत्र सफल दुकानदार बनने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि पहले किसी की दुकान में नौकर रह कर अनुभव प्राप्त किया जाये। जिस तरह की दुकान करने को रुचि, योग्यता और इच्छा हो उसी तरह की दुकान में नौकरी करली जाय और कुछ वर्षों तक परिश्रम पूर्वक काम सीखा जाय। चाहे वेतन कम ही मिले पर काम तत्परता और ध्यान से किया जाये स्वतंत्र दुकानदारी करने के पहिले इस प्रकार पराई दुकान में अनुभव प्राप्त कर लेना अत्यन्त आवश्यक है-परन्तु यदि कोई शुरू में ही स्वतंत्र दुकान करेगा तो अनुभव प्राप्ति तक कुछ हानि ही सहनी होगी।

पूंजी—दुकानदारी के लिये सबसे पहला प्रश्न पूँजी का उपस्थित होता है। पूँजी एकत्र करने का सबसे बढ़िया तरीका

हिस्से निकालना है। दुकान खोलने के पहले सूचना छपवाकर हिस्से बेचे जाँय। और हिस्सेदारों को दुकान का उद्देश्य और उज्ज्वल भविष्य बताया जाय। व्यापार की शिथिलता के कारण इन दिनों रकम की लोगों के पास काफी छूट है। दुकान को लिमिटेड कम्पनी का रूप दे देना चाहिये जिससे दुकान की प्रसिद्धि शीघ्र ही हो जाय। आय का अमुक अंश हिस्सेदारों को प्रति वर्ष बांटा जाय। सहयोग द्वारा बहुत ही आसानी से अधिक पूँजी इकट्ठी की जा सकती है और किसी एक व्यक्ति को भार भी नहीं पड़ता है। योरुप में अर्बों रुपयों की पूँजी इस प्रकार एकत्र हो जाती है और लाखों कम्पनियां चलती हैं। बिना गहरी पूँजी के मामूली दुकानदारों की प्रतिस्पर्धा में टिक रहना सम्भव ही नहीं। व्यापार के लिये किसी भी ईमानदार दुकानदार को पूँजी की कमी नहीं रहती। कुछ क्या अनेक दुकानदार ऋण लाकर भी दुकान चलाते है पर उन्हे व्याज की चिन्ता से ही छुटकारा नहीं मिलता। फिर व्यापार बढ़ाने का उत्साह बढ़े तो कैसे? अतः घर की पूँजी अथवा हिस्से द्वारा एकत्र की हुई पूँजी द्वारा ही दुकान की नींव पुख्ता होती है। यदि उपरोक्त दोनों में से कोई भी व्यवस्था न हो तो उधार लाकर भी दुकान चलाई जा सकती है।

यदि वायदे के अनुसार व्यापारियों को रकम पहुंचा दी जाय तो भी माल बेचने के लिये उधार मिल सकता है। अपनी सारी पूँजी को एक साथ दुकान में लगा देना भी बुद्धिमानी नहीं है। प्रतिवर्ष आय का कुछ अंश दबा कर स्थाई पूँजी में जमा करते

रहने से भी कभी व्यापारी को आकस्मिक घटना के अवसर पर काफी मदद मिल सकती है। यदि आग आदि अकस्मातों के लिये दुकान के माल का बीमा वेच दिया जाय तो दुकानदार को फिर किसी भी प्रकार का खतरा नहीं है। मूल पूंजी की रक्षा के लिये प्रतिवर्ष बीमे की क़िस्त को समय पर भर देना बहुत आवश्यक है। यह भी सत्य कहा है कि 'थोड़ी पूँजी दुकानदारी को हड़प जाती है'। अतएव दुकानदारी के लिये शनैः शनै पूँजी को बढ़ाते रहना चाहिये। यही कारण है कि चतुर व्यापारी अधिक मुनाफ़े में कम व्यापार की अपेक्षा कम मुनाफ़े में ज़्यादा व्यापार करना चाहते हैं।

दुकान की स्थिति-व्यापार में माल की बिक्री का दुकान की स्थिति से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। अलग अलग माल के लिये अलग अलग स्थिति उपयुक्त होती है। दवाइयों की दुकान अस्पतालों के रास्ते में, पान और आटे दाल की दुकान चौराहों पर, स्टेशनरी व पुस्तकों की दुकान पाठशालाओं की राह पर, दर्ज़ी की दुकान कपड़े के बाज़ार में, होटल सराय के पास में, नाज की दुकान मण्डी में और कपड़े की दुकान बाज़ार में होनी चाहिये। एक तरह के माल की दुकानें पास पास होनी चाहिये, इनमें ग्राहकों को भी सुविधा रहती है। किसी एक कोने में एक ही तरह की दुकान होने से ग्राहक उधर जाने का साहस नहीं करते। और ग्राहक नहीं आने से दुकानदारी विफल हो जाती है। जिधर से लोगों का आना जाना अधिक हो वहीं दुकान का होना आवश्यक है किराया चाहे अधिक लगे पर दुकान मौके पर ही लेना चाहिये।

दुकान की सजावट—ग्राहकों के चित्त को आकर्षित करने के लिये दुकान की सजावट पर ध्यान देना चाहिये। दुकान का मकान पक्का और लिपा पुता सुन्दर हो। वर्षा के छींटे अन्दर न आ सकें ऐसा प्रबन्ध हो। धूप से रक्षा के लिये पर्दे लगाए जाँय अन्यथा धूप और वर्षा से माल खराब होगा। दुकान का फर्श समतल हो। दीवारें और छत रंगीन हों। जिन पर राह चलते ग्राहक की दृष्टि पड़े ऐसा बड़े अंकों वाला एक कैलेण्डर और एक दीवार घड़ी टंगी रहे। दुकान का सामान कांच की अलमारियों में रखा जाय। अलमारियों की कतार दीवारों से सटी रहे। ऊपर की अलमारियों तक पहुँचने के लिये ठोस निसैनी हो दुकान के बीच में आकर्षक चीज़ें अलमारियों में सम चौरस आकार में लगाई जाँय। बीच बीच में सकड़ी गलियाँ रहें जिनमें ग्राहक घूम कर चीज़ें देख सकें। ग्राहकों के बैठने के लिये हल्की सिमटने वाली कुछ कुर्सियाँ हों। दुकान साफ सुथरी रखी जाय। दुकान के औजार कांटा, बाट, कलमदान आदि साफ रहें। फर्नीचर पर चमकीला पालिश हो। अद्भुत चीज़ें छत पर टंगी रहें। थोक माल के लिये दुकान के पास ही गलियों में सस्ते किराये के कोठार हों। दुकान में प्रकाश का पूरा प्रबन्ध हो। जहाँ बिजलीघर हों वहाँ इलेक्ट्रिक लाइट अवश्य ली जाय। मुख्य द्वार का बल्ब अधिक प्रकाश वाला हो। उजाले के लिये सफेद और आकर्षण के लिये रंगीन बल्ब प्रयोग में लाए जाँय। गर्मी के दिनों में बिजली के पंखों का प्रबन्ध हो ताकि ग्राहक दुकान में आराम से रह सकें। जहाँ बिजली का प्रबन्ध न हो वहाँ पखियाँ रक्खी जाय।

प्रत्येक दुकान अजायब घर की तरह सजाकर रक्खी जाय और दुकान के मुख्य द्वार पर बड़े अक्षरों में लिखा हुआ साइन बोर्ड हो। बड़े अक्षरों में माल का विज्ञापन और नीचे दुकान का नाम हो। साइनबोर्ड पर शहर का नाम लिखवाना व्यर्थ है आदर्श नमूना:—

❀ उत्तम—पान ❀ प्रेमसुख महादेव	बङ्गाली—मिठाई स्वादिष्ट स्वच्छ सुगंधित मनमोहन जगदीशचंद्र

विज्ञापन—बीसवीं सदी विज्ञापन का युग है। ए दुकानदार स्वयं एक समय में एक ही ग्राहक से बात क सकता है और सो भी सारी बातें नहीं कह सकता। परं विज्ञापन द्वारा एक ही समय में सहस्त्रों नहीं लाखों व्यक्तियों पूरी बात कर सकता है। विज्ञापन ही विक्रय की कुञ्जी है दुकानदार को विज्ञापन विज्ञान सम्बन्धी साहित्य भी पढ़ चाहिये। उचित ढंग से किया हुआ विज्ञापन ही फलदाय होता है।

विज्ञापन कई प्रकार से दिया जा सकता है। साइनबोर्ड, हेंडबिल, केलेण्डर, ब्लोटिंग पेपर, पंखे, थैली, रूमाल, ट्रेडमार्क समाचार पत्र, सिनेमाघर में स्लाइड, सूचीपत्र, रेल के डिब्बों में, बिल फार्म, स्टेशनों के प्लेटफार्म पर, चौराहे पर, बिजली की रोशनी द्वारा, उत्सव मनाकर। डाबर का बालामृत, और ब्रह्मचर्य और सुधासिन्धु के विज्ञापन के तरीकों से कौन परिचित नहीं है ?

विज्ञापन में तार की तरह आवश्यक बातों का ही विवरण देना चाहिये। शीर्षक अत्यन्त आकर्षक हो ताकि पाठक को पूरा विज्ञापन पढ़ना पड़े। जो विज्ञापनदाता अतिशयोक्ति से काम लेते हैं वे ग्राहकों का विश्वास खो बैठते हैं। विज्ञापन में वस्तु के मूल्य का जिक्र अन्त में होना चाहिये। रंगीन विज्ञापन अधिक आकर्षक होते हैं। विज्ञापन प्रारम्भ में लाभदायी नहीं होते वरन् जो विज्ञापन बार बार और भिन्न भिन्न साधनों द्वारा निरन्तर दुहराए जाते हैं वे अवश्य लाभप्रद सिद्ध हुए हैं।

आज कल समाचार पत्रों द्वारा विज्ञापन करके कई व्यापारी मालामाल हो रहे हैं। विज्ञापन लेखक को जनता के मनोविज्ञान से भी परिचित होना चाहिये। धनवान और व्यापारी दैनिक, साधारण व्यक्ति साप्ताहिक और विद्वान् लोग मासिक पत्र अधिक पढ़ते हैं। इनके अतिरिक्त तीन प्रकार के पत्र और निकलते हैं। १ जातीय या सामाजिक २ व्यापारिक या धन्धे सम्बन्धी ३ मनोविनोद अथवा हास्य विषयक। अतः जिस तरह के लोगों में अपना माल खपाने की इच्छा हो वैसे ही पत्रों में विज्ञापन देने चाहिये। दुकान का परिचय जितनी बार लोगों के सामने आवेगा उतनी ही सहानुभूति उत्पन्न करेगा। लाहौर, बम्बई, पूना और मथुरा जाने पर स्वतः क्रम से अमृतधारा कार्यालय, वाटरबरीज़ लेडला, पोद्दार और सुख संचारक कम्पनी को देखने की इच्छा उत्पन्न होगी—यह सब उचित ढंग से किये हुए विज्ञापन का ही परिणाम है।

दुकानदारी की आयका दसवाँ अंश प्रति वर्ष विज्ञापन में खर्च कर डालना चाहिये। विज्ञापन कला के सम्बन्ध में प्रत्येक

दुकानदार को पूर्ण परिचित होना चाहिये। प्रायः लोग उन विज्ञापनों पर आकर्षित अधिक होते हैं जो हिलते हों, जिनमें इनाम मिलने की सम्भावना हो, जो अमुक समय तक रियायती मूल्य घोषित करते हों, जिनमें किसी महापुरुष अथवा माननीय पत्र की सम्मति प्रकट हुई हो और जिनकी छपाई मनोहर तथा शुद्ध हो। इस प्रतिस्पर्द्धा के जमाने में जो जितना अधिक विज्ञापन करेगा वह उतना ही अधिक कमावेगा।

यह बात ज़रूर है कि कुछ धोखेबाज़ विज्ञापकों ने विज्ञापन के महत्व को कम कर दिया है पर जो सच्चे विज्ञापनदाता हैं और अपने माल को यथायोग्य ही प्रशंसा ढंग से करते हैं वे अवश्य ग्राहक को आकर्षित कर लेते हैं। प्रत्येक माल अपने ऋतु में ही खपता है अतः उन दिनों से एक मास पहले ही से विज्ञापन शुरू करना चाहिये। पाक व ऊनी वस्त्र जाड़े में, शर्बत पंखे और छाते गर्मियों में, बरसाती कोट, छाते और बीज वर्षा ऋतु में, डायरियाँ और केलेण्डर नवम्बर दिसम्बर में, चित्र और फर्नीचर दिवाली पर, स्टेशनरी और स्कूली किताबें अप्रेल एवं जौलाई में अधिक खपती हैं। परन्तु पौष्टिक औषध का विज्ञापन गर्मियों में करना धन नष्ट करना है।

खरीद—दुकानदार की आय का आधार बुद्धिमानी पूर्वक की हुई खरीद ही है। जो दुकानदार सस्ते दामों [illegible] चीज़ वक्त पर खरीदने की योग्यता रखता हो [illegible] ग्राहकों को सन्तुष्ट कर सकता है। अनुभव से मालूम [illegible] कि अधिकांश दुकानदार जितना परिश्रम बेचने

लिये करते हैं उतना ख़रीदने के लिये नहीं करते। इस संबन्ध मे निम्न सिद्धान्तो का प्रयोग बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है।
१. वस्तु तीनो प्रकार की ख़रीदनी चाहिये–बढ़िया, साधारण और हल्की क्योंकि। दुकान पर सब तरह के ग्राहक आते हैं। कुछ चीज़ें तो ऐसी बिकती है जो मात्र लोग खरीदते ही हैं उनका प्रयोग नहीं करते। साधारण स्थिति के लोग इच्छा होने पर भी उम्दा चीज़ मँहगी होने के कारण नहीं ख़रीद सकते उनके लिये साधारण चीज़ ही मौजूद होनी चाहिये। जो बुद्धिमान और सम्पन्न ग्राहक हैं वे सदैव महँगी परन्तु टिकाऊ और बढ़िया चीज़ ही ख़रीदते है क्योंकि महँगा रोवे एक बार सस्ता रोवे बार बार।

२–ख़रीद मूल कारखाने से अथवा थोक व्यापारी से करनी चाहिये ताकि बीच वालो को मुनाफ़ा न देना पड़े। मुख्य मुख्य कम्पनियों के सूचीपत्र और भावो से दुकानदार को परिचित होते रहना चाहिये यह बात बड़े दुकानदार के लिये विशेष लागू है। जिस दुकान से फुटकल दुकानदार माल बेचने के लिये ख़रीदते हों उन्हे तो मूल स्थान से ही माल मंगाना चाहिये। दुकानदार को यह भी मालूम रहना चाहिये कि उन माल के लिये पृथक् पृथक् चीज़ के कौन सोल एजेन्ट हैं। और यदि किसी माल की भारी ज़रूरत हो तो उसकी स्थानीय सोल एजेन्सी ले लेनी चाहिये। परन्तु फुटकल अथवा छोटे दुकानदार को स्थानीय थोक दुकान से ही अपनी ज़रूरत के अनुसार माल ख़रीद लेना चाहिये। माल के साथ [illegible] से पूछ लेने

चाहिये पर बाहर बड़ा आर्डर देकर खर्चे की बचत के लोभ से अधिक माल मंगा रखने की आवश्यकता नहीं।

३-सदैव एक ही कम्पनी कारखाने अथवा दुकानदार से माल ख़रीदना ठीक नहीं। कई जगह पूछ कर माल का भाव जानते रहना चाहिये। ख़रीदने के लिये जो आंख बन्द कर भरोसा बांध लेता है वह एक न एक दिन अवश्य पछताता है।

४-जो नंबरी या प्रसिद्ध मार्के का माल है उसका आर्डर भले ही दुकान पर आए हुए घूमते फिरते एजेण्ट को दे दिया जावे पर अन्य वस्तुओं के लिए मूल कम्पनियों से लिखा पढ़ी करनी चाहिये और कभी कभी स्वयं जाकर के माल खरीद करके लाना चाहिये जिससे यात्रा द्वारा अनुभव भी बढ़े। माल भी किसी एक ही प्रकार का और एक ही जगह से नहीं ख़रीदना चाहिये। भिन्न भिन्न जगहों से भिन्न भिन्न प्रकार का माल मंगाते रहना चाहिये। ताकि सब तरह के ग्राहकों को पसंद का माल मिल सके।

५ ख़रीद करते समय इस बात का ध्यान रहे कि औसत खपत से कुछ कम ही माल ख़रीदा जाय इससे कई लाभ हैं। पूँजी कम लगानी पड़ेगी, माल तुरन्त समाप्त होने पर व्यापार बढ़ाने का उत्साह बढ़ेगा, माल दुकान में पड़ा पड़ा ग्राहकों की प्रतीक्षा में ख़राब न होगा। जल्दी जल्दी नया नया माल आने से माल की तड़क भड़क भी बनी रहेगी। ख़रीददार को मालूम रहना चाहिये कि किस मेल, रंग और प्रकार का माल दुकान में रहता है और किस माल की वार्षिक औसत खपत क्या है?

उस तरह का माल जो दुकान मे पहले नहीं आया हो मे शुरू थोड़ा ही ख़रीदना चाहिये क्योंकि यह नियम है कि बिल्कुल नई और अनोखी चीज़ को ग्राहक सहसा नहीं अपनाते। और जब कोई नया माल चल निकले तो भी वह माल अधिक नहीं मंगाना चाहिये क्योंकि प्राय. नई फैशन की चलन अस्थाई ही होती है और थोड़े दिनों बाद उसके प्रयोग से लोग ऊब जाते हैं। और साथ मे यह भी होता ही है कि चलत की चीज़ को सब दुकानदार मगा लेते है अतः मुनाफ़ा भी कम रहता है। अतः किसी भी तरह के माल की हद से ज़्यादा ख़रीद अच्छी नहीं। क्योंकि जब माल की खपत होती रहेगी तो मगाते क्या देर लगती है ? एक बार की ज़्यादा ख़रीद की अपेक्षा कई बार की थोड़ी ख़रीद उत्तम है। माल मौसम में ख़रीदा जाय।

६ माल की ख़रीद रोकड़ से करनी चाहिये। अन्यथा उधार ख़रीदने से अवश्य कुछ ज़्यादा माल ख़रीद लिया जाता है और माल देने वाला भी कुछ मुनाफ़ा ज़्यादा ही लगाता है। उधार माल लेने से मूल्य की जाँच भी पूरी नहीं हो पाती और कभी कभी पुराना माल भी पल्ले पड़ जाता है जहाँ पर माल के दाम ३० या ६० दिन बाद चुकाने की सुविधा है वहाँ रोकड़ दाम देने से उतने ही दिन का व्याज आपको मिल जावेगा। पूँजी निज की या पूरी न हो तो बात ही दूसरी है।

विक्रय—दुकानदारी मे सफल होने का प्रधान रहस्य विक्रय कौशल को प्राप्त करना है। दुकानदार को सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि ग्राहक की सेवा करना ही दुकान

का मुख्य ध्येय है। और जो मुनाफ़ा लिया जाता है वह तो सेवा का महनताना मात्र है। क्योंकि बिना मुनाफ़ा लिये दुकानदार खावे क्या और पहिने क्या? दुकान का किराया कहाँ से भरे? अतः ग्राहकों की सेवा करने के बदले उचित मुनाफ़ा लेना दुकानदार का धर्म है बिना किसी विशेष कारण के दुकानदार को कभी घाटा उठा कर व्यापार नहीं करना चाहिये।

घाटा सहकर माल तभी बेचना चाहिये जब ऐसा करने के लिये दुकानदार विवश हो। जब कि निकट भविष्य में दर गिर जाने की संभावना हो। माल नहीं बेचने पर माल सड़ने, बिगड़ने, या नष्ट होने की आशङ्का हो। ख़रीद करते समय दाम अधिक दे दिये गये हों या दूसरे दुकानदार उस चीज़ को स्थायी तौर से सब ग्राहकों को कम मूल्य में देते हो।

मुनाफ़ा कितना लिया जाय इस बात का नियम बाँधा नहीं जा सकता। यह बात व्यक्तिगत दुकानदार पर निर्भर है। परन्तु जैसा ऊपर बताया जा चुका है कम से कम मुनाफ़े पर ज्यादा से ज्यादा व्यापार किया जाय। कुछ नंबरी व मार्के की चीज़ें जैसे सनलाइट साबुन, टेलीफोन का धोती जोड़ा, हाथी छाप मिट्टी का तेल, लिप्टन की चाय और हंस छाप स्याही का मुनाफ़ा कुछ कुशल दुकानदार नाम मात्र का लेते हैं। कारण कि इन वस्तुओं के लिये जो ग्राहक दुकान में आते हैं वे दूसरी चीज़ें भी ख़रीदेंगे और इस प्रकार दुकानदार को मुनाफ़ा प्राप्त हो ही जाता है। अतः सफल दुकानदार

बनने के लिये कुछ वस्तुओं के दाम लगभग लागत मात्र ही लेने चाहिये।

भारतीय दुकानदारी में सब से बड़ी दिक़्क़त मूल्य तय करने का झंझट है। मूल्य स्थिर करने में दुकानदार और ग्राहक का बहु मूल्य समय नष्ट होता है। दस ग्राहक आते हैं तो मुश्किल से एक दो से सौदा पटता है। ग्राहक माल ख़रीद भी लेता है पर सशंक रहता है कि कदाचित् मुझे ठग लिया गया है। इस प्रकारकी दिक्कत दुकानदारको सदा पेश आती है।

जिस दुकान पर एक दाम का बोर्ड टंका होता है वहाँ भी चार दाम होते हैं फिर दुकानदार का कोई विश्वास करे तो कैसे? ऐसी स्थिति में नया दुकानदार क्या करे? जहाँ ९९ दुकानों में रबर दर है वहाँ १ दुकान के एक दाम होने पर; रबर दर के आदी ग्राहक तुरन्त विश्वास नहीं करते। इस बुराई को दूर करना बहुत ज़रूरी है। हर्ष की बात है कि इस ओर दुकानदारों और ग्राहकों दोनों का ध्यान लगा है।

जब एक बार ग्राहक को पक्का विश्वास हो जाय कि अमुक दुकान में एक दाम है तो वह सीधा माल ख़रीदने को वहीं पहुँचता है। अतः जो दुकानदार सफल होना चाहता हो उसे अपनी दुकान के माल का दाम एक ही कहना चाहिये। एक दाम कहने से शुरू में चाहे ग्राहक दो-चार बार लौट भी जावें परन्तु निश्चय होने पर वह बार बार आवेगा। हां दुकानदार में धैर्य चाहिये। एक दाम होने से ग्राहकों को केवल माल पसन्द करने का ही काम करना पड़ता है। मूल्य-निर्णय के झंझट में

वह बच जाता है और इसलिये दुकान का पक्का ग्राहक हो जाता है। एक दाम की पद्धति वाले दुकानदार को सदैव कम मुनाफ़ा लगाना चाहिये। ग्राहकों की संख्या बढ़ जाने से सब मिला कर मुनाफ़ा अधिक ही मिलेगा। एक दाम वाली दुकान पर यदि मुनाफ़ा ज़्यादा लगाया जायगा तो ग्राहकों का आकर्षण नहीं होगा।

वस्तुओं पर मूल्य का संकेत भी होना आवश्यक है। ताकि दाम बताने में भूल न हो मूल्य के संकेत के लिये कई पद्धतियाँ है। उनमें से एक पद्धति यह भी है। संकेत अक्षर नियुक्त किये जाँय जैसे:—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	०
म	ह	ल	प	र	भ	ट	न	ब	द

रम=५१, ब/ल=९/३ आदि

1	2	3	4	5	6	7	8	9	0
m	a	r	k	e	t	s	i	g	n

उधार या नक़द—दुकानदार के सामने यह प्रश्न सदैव खड़ा रहता है कि ग्राहक जब उधार माँगे तो माल बेचा जाय या नहीं। इस सम्बन्ध में अनुभव यह बताता है कि बिल्कुल नक़द का नियम बहुत थोड़ी दुकानों पर ही निभ सकता है। ग्राहक की सुविधा के लिये उधार देना ही पड़ता है। क्योंकि कुछ ग्राहक नक़द दाम दे ही नहीं सकते। उधार देते समय नीचे लिखी बातों पर ध्यान रखना चाहिये (१) ग्राहक किस प्रकृति का है [illegible] ग्राहक के पास सदैव रुपयों की तंगी रहती है। (२) उधार [illegible] पीछे चुकाने की ताकत और समय चाहिये। बिना तकाज़ा

किये १० में से ६ ग्राहक रुपया नहीं देते। (३) ग्राहक रुपया किस रीति से चुकाया करता है? कुछ ग्राहक तनख्वाह मिलने पर प्रति मास एक बार ही रुपया चुकाते हैं। अत तनख्वाह बँटने के दिन उगाई करने को चले जाना चाहिये। (४) जो कुछ उधार दिया जाय उसका लेखा ग्राहक के खाते में शीघ्र लिख लिया जाय ताकि उगाई करने में सुविधा रहे। कई बार ग्राहक पूछा करते हैं "कितना माँगते हो?" उधार देने वाले दुकानदार को रकम बताने को तैयार रहना चाहिये (५) कुछ दुकानदार उधार लेने वाले ग्राहक को सौदा महगा और घटिया देते है। इस कारण से ग्राहक सतुष्ट नहीं रहता और रुपया चुकाने से आना कानी करता है? (६) 'उधार का रुपया समय पर आजायगा, यह भरोसा रखोगे तो धोखा खाओगे। (७) उधार वसूल करते समय शर्म न रखो। अगर तकाज़ा करने का साहस न हो तो उधार दो न दो। (८) कुछ सस्थाएँ (सरकारी और गैर सरकारी) उधार ही माल लिया करती हैं। सब के लिये नकद का नियम बना लेने से ग्राहकों से हाथ धोना पडता है। सस्थाओं को उधार दिया जाय तो ठीक समय पर भेज देना चाहिये और बीच बीच में रुपये के लिये लिख कर याद दिलाते रहो। (९) ग्राहक के माल प्राप्ति के हस्ताक्षर करालिये जाय और समय पर बार बार मांगने पर भी रुपया न चुकावे तो कानूनी कार्यवाही की जाने की सूचना दी जाय और वक्त पर कानूनी कार्यवाही करली जाय।

हिसाब—दुकानदार को पूंजी, आय, व्यय, उधार, कर और फुटकल का सब हिसाब नियमपूर्वक लिखते रहना चाहिये।

संध्या को दुकान की नक़द रकम को गिन कर हिसाब उतार लेना चाहिये। इसमें एक भी दिन की देरी करना दुकान को अंधेरे में डालना है। वर्ष के अन्त में मौजूदा माल की लागत मूल्य आँक कर सरवैया तैयार कर लेना चाहिये। दुकान के नौकरों व हिस्सेदारों का लेन देन चुकता कर लेना चाहिये। चाहे दुकान छोटी ही हो हिसाब लिखना बहुत ज़रूरी है। हिसाब विस्तार से इस खूबी से लिखा जाय कि वक्त पर जब हिसाब पेश करना हो तो बहियाँ अपने आप हिसाब बतला सकें। किसी को समझाने की आवश्यकता न पड़े।

पत्र व्यवहार—यह जमाना डाक द्वारा दुकानदारी करने का है। कुशल दुकानदार पत्र व्यवहार द्वारा बाहर का क्रय विक्रय भी अधिक कर सकता है। ग्राहक को घर बैठे माल मिल जाता है और कई तरह की झंझटों से छुटकारा हो जाता है। दुकान के नाम के कार्ड लिफ़ाफ़े और कागज़ सुन्दर छपे होने चाहियें और दुकान के माल का और जो सामान आप अपने रुपये से खरीद कर भेज सकते हैं सूचीपत्र छपा देना चाहिये। डाक द्वारा माल भेजने का तरीका अभी हिन्दुस्तान में बहुत कम प्रचलित है। दुकानदारों को इस ओर भी ध्यान देना चाहिये। इस प्रणाली में रहस्य यह है कि घर बैठे संसार के किसी कोने में माल भेज सकते हैं अर्थात् आपके ग्राहकों का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है। ग्राहक को भी घर बैठे माल मिल जाता है। असली माल बनाने वाले से आप नक़द दाम देकर माल खरीदेंगे तो आप को माल बहुत सस्ता मिल सकेगा। आढ़त और बीच के व्यापारियों का मुनाफ़ा भी आपको नहीं देना होगा। इस तरह डाक खर्च मिला कर ग्राहक को भी माल सस्ता ही पड़ेगा। और वी० पी० के व्यवहार से आपको भी रकम नक़द मिल जाया करेगी।

लाख रुपये की बातें

१-दुकान को सदैव समय पर खोलो और समय पर बन्द करो। दुनिया का बड़ा राजनैतिक नक़शा भी दुकान में टँका रखना चाहिये। एक दैनिक पत्र भी मँगवाया जाय।

२-दुकान पर बेकार मित्रों को जमा मत होने दो। दुकान 'चौपाल की चर्चा' का स्थान नहीं हो।

३ दुकानदार को सार्वजनिक कामों मे योग्यतानुसार भाग लेते रहना चाहिये। इससे लोगों से परिचय बढ़ता है और वर्तमान संसार का अनुभव प्राप्त होता है।

४ दुकान को साधारणतया नित्य झाड़ा जाय और मास में एक बार विशेष तौर से सफ़ाई की जाय। प्रत्येक चीज़ के लिये स्थान और स्थान के लिये चीज़ नियुक्त हो।

५-ग्राहक को माल अच्छी तरह से पैक करके दिया जाय। ताकि ग्राहक के घर तक सुविधा से पहुँच जाय।

६-नौकरों को वेतन समय पर दिया जाय और उन्हें नियमित विश्राम भी दिया जाय। नौकरों की वेतन वृद्धि का सिलसिला बंधा हुआ होना चाहिये ताकि तरक्की की आशा से उत्साह से काम करें क्योंकि ज्यों ज्यों मनुष्य की आयु बढ़ती है आवश्यकताएं भी बढ़ती जाती हैं।

७-ग्राहक के मांगने पर माल दिखाने मे कभी भी आलस्य नहीं किया जाय। उत्तरोत्तर बढ़िया माल दिखाया जाय। पहले साधारण फिर मध्यम और अन्त में बढ़िया। मन्दी की चर्चा मे यदि ग्राहक मांगे तो सलाह दो [illegible] नहीं। ग्राहक अपने

मतलब की चीज़ स्वयं छांट लेगा। जब तक ग्राहक माल पसंद न करले उसके सामने सब नमूने रहने दीजिये।

८ यदि किसी भी कारण से ग्राहक माल न खरीदे तो रोष प्रकट न किया जाय। अपनी अथवा ग्राहक की अयोग्यता प्रकट होने का अवसर न आवे तो अच्छा है।

९-यदि किसी विशेष कारण से दुकान बन्द रखी जाय तो वापस खुलने के समय की सूचना दुकान के बाहर टाक दी जाय।

१०-अपने लाभ या हानि के भेद को ग्राहक पर प्रकट न किया जाय। दुकान की शाख बनी रहे।

११-जहाँ तक हो एक ही प्रकार का व्यापार किया जाय और उसे अच्छे ढंग से किया जाय। बे मेल की चीज़ें बेचना दुकानदार की अयोग्यता प्रगट करता है जैसे अत्तार का पुस्तकें बेचना या बज़ाज़ का कुर्सियाँ बेचना।

१२-कुछ दुकानदार ग्राहक के प्रश्नों का उत्तर असावधानी या रुखाई से देते हैं। परिणाम यह होता है कि ग्राहक भी आगे चल देता है।

उपसंहार

यद्यपि मैं दुकानदार नहीं परन्तु दुकानदारों के सम्पर्क में रात दिन आता हूँ; यद्यपि मेरा पेशा व्यापार नहीं पर व्यापारियों की समाज में ही पला हूँ; यद्यपि मैं इस विषय का अधिकारी नहीं पर इस विषय के लिखने और पढ़ने में मेरी प्रबल रुचि है-इसी के आधार पर मैंने दुकानदारी विषयक यह मौलिक निबन्ध लिखा है। आशा है नये दुकानदारों को इससे अवश्य लाभ पहुँचेगा। सच कहा है "कर दुकान बन धनवान"।

ज्ञान-माला के नियम

१ इस माला द्वारा समय समय पर कला, धर्म, विज्ञान, शिक्षा, समाज व साहित्य विषयक उपयोगी ठोस ट्रैक्ट प्रकाशित होते हैं। राजनैतिक विषयों से इस माला का कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा।

२ सब ट्रैक्ट इसी आकार प्रकार के होंगे। (साइज २०×३० सोलह पेजी मूल और चार पेज रंगीन टाइटिल विशेष)

३ स्थाई ग्राहकों को ३२ ट्रैक्ट सिर्फ डेढ़ १॥) रुपये में डाक खर्च सहित मिलेंगे। वी० पी० से १॥≡)

४ स्थाई ग्राहकों को अपने पते के परिवर्तन की सूचना अवश्य देनी चाहिये।

५ स्थाई ग्राहकों के नाम पूरे पते सहित ट्रैक्टों में एक बार छपेंगे।

६ लोकोपयोगी ठोस निबन्ध भेजने वाले लेखकों को पारश्रमिक भी अवश्य दिया जायगा। प्रकाशन का सर्व अधिकार ज्ञान भण्डार जोधपुर को रहेगा।

७ फुटकर पुस्तक लेने वालों को प्रति ट्रैक्ट तीन पैसे और

ॐ

फिर अछूत क्यों ?

आज हमने अपने भाइयों को भंगी मान कर दूर कर रक्खा है तो सारा संसार हमें अपने से दूर रखता है—हमें छूने से घृणा करता है। कनाडा और अफ्रिका निवासियों का प्रवासी भारतीयों के साथ किया हुआ वही भंगियों और अछूतों सा बर्बर बर्ताव इसका जीता जागता प्रमाण है। वहाँ के निवासी चाहे वेश्यागामी, शराबी और अपव्ययी हों फिर भी वे एक शिक्षित, सभ्य और सदाचारी काले भारतीय को छूने में परहेज करेंगे। उसे कोई अधिकार नहीं है कि वह 'महाप्रभुओं' की सड़क पर भी चल सके, उनके होटल में रोटी खा सके, सवारी में उनके बराबर स्थान पा सके, उनके बाजार में व्यापार कर सकें, या उनकी भूमि में खेती कर सकें। वहाँ की बात तो दूर रही, उसे जाने दीजिये; हम अपने साम्राज्य में ही कितने पतित हुए! कितनों को भर पेट भोजन और तन ढकने को पूरे चिथड़े तक भी नहीं मिलते। क्या कि हम हिन्दू—हिन्दू जाति के सिरमौर—अपने ही हिन्दू भाइयों को हजारों वर्षों से अधिकार-हीन रखते आ रहे हैं, उन्हें पशुओं और ढोरों से भी गया बीता बर्ताव करने में हमें [illegible] दूर रहा जरा भी संकोच नहीं हुआ और उन्हें [illegible] पतित, नगण्य, असहाय और अछूत मानते आए हैं।

अब यदि संसार की अन्य जातियाँ भी हमारे साथ वही सलूक करें—हमें ठीक उसी तरह दुरदुरावे, हम उनकी आँखों में नीच समझे जावें और किसी अवसर पर ठुकराए भी जावें, तो यह कौनसी अचरज की बात है।

'जैसी करनी वैसी भरनी' यह संसार का अचूक और अटल नियम है। इतिहासकार हमें साफ़ बतला रहे हैं कि आक्रमणकारी आर्य जाति ने भारत के मूल निवासियों के साथ ठीक वैसा ही सलूक किया जैसा कि अन्य विजेता जातियाँ पराजितों के साथ आज तक करती आरही हैं। अगर इतिहास की इन पंक्तियों में सत्य और तथ्य कुछ अंशों में है तो हम नक्कारे की चोट दावे के साथ कह सकते हैं कि हमने एक अछूत जाति की रचना करके बड़ी भारी भूल की। उसी भूल का नतीजा हमें आज लाचारी, बेकारी और महामारी के रूप में मिल रहा है। फिर भी आज के दिन निरे नामधारी धर्म गुरुओं का कहना कि अछूत जाति ईश्वर निर्मित है—सिर्फ भ्रमपूर्ण एवं कपोल कल्पना के सिवाय और कुछ नहीं। ऐसा कहना तो परम पिता परमेश्वर पर सरासर कलङ्क के काले धब्बे लगाना है। क्या उसने ही अपने पक्षपात पूर्ण हृदय से मानव समाज के एक समूह को अछूत और अपवित्र बनाया? नहीं, कदापि नहीं।

इतिहास के सैकड़ों पृष्ठ आज हमें साफ़ साफ़ बतला रहे हैं कि आर्यों के हमले का सामना करनके लिये जिन मूल भारतवासियों ने घमसान लड़ाई के बाद हार कर उनकी आधीनता स्वीकार करली उन्हीं मूल निवासियों को आर्यों ने अपनी सेवा का काम सौंप दिया। उस समय तक आर्यों की द्विज जाति में ब्राह्मण,

क्षत्रिय और वैश्य ये तीन ही वर्ण विद्यमान थे। वेदों की यह बात किस कट्टर पंथी के कानों को नहीं खोलती कि उन शूद्रों का खास काम तीनों वर्णों के घर भोजन तैयार करना था। इसके पीछे अपनी स्वाधीनता पर मर मिटने वाले बहादुर मूल भारतीयों के जिस समूहने एक आक्रमणकारी जाति की गुलामी मंजूर करना अपनी मान मर्यादा और आत्माभिमान के विरुद्ध समझा —उसी समूह को आर्यों ने शत्रु भाव से देखा। जीतने वाली कौम का अपने को श्रेष्ठ और शत्रु को बुरा बताना मानव स्वभाव की कमजोरी का एक साधारण लक्षण है। इसीलिये आर्यों ने अपने अन्दरूनी द्वेष के कारण उनके दस्यु, निषाद, यातुधान, असुर और राक्षस आदि नाम रक्खे। यही पंचम वर्ग हुआ जिसे बहिष्कृत शूद्र कहा गया।

महाभारत का भी कहना है कि "एक वर्ण मिदं पूर्वं विश्व-मासीद् युधिष्ठिर।" (वनपर्व)। हे युधिष्ठिर संसार में पहले एक ही वर्ण था आगे चल कर गुण-कर्म के विभाग से चार वर्ण

कारण आज तक उसे समाज और जाति से बहिष्कृत रहना पड़ा। वह वीर जाति धन्य है जिसने संसार की वेदी पर अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हुए अपने आपको इस प्रकार बलिदान कर दिया।

आज उसी चिर-बहिष्कृत जाति की मौजूदा हालत देख कर कौन भला मनुष्य अपनी आँखों के आँसू रोक सकेगा? कौन मर्द ऐसा होगा जिसका खून उबल न उठेगा? आज अगर जाति का वही दुरदुराया हुआ समूह शिक्षा प्राप्त कर पनपा होता, अपने पैरों पर खड़े होने का अधिकारी होता तो कौन कह सकता है कि वह साहस और मान मर्यादा का समुद्र कितना उपयोगी साबित होता?

बहिष्कृत शूद्र—अन्त्यजों की मुख्य जातियां (भंगी, डोम, चमार, भील, ढेढ, धोबी, मोची, सरगरा, ढोली, जटिया आदि) का खास काम मैले का दूर हटाना, सफ़ाई रखना या चर्म से सम्बन्ध रखना है। बहुतों की यह लचर दलील है कि उनका पेशा गंदा अथवा मैला है इसलिये हम उन्हें अछूत मानते आए हैं, लेकिन उस—मैला दूर करने के धन्धे को भी कोशिश की जाय तो बहुत सफ़ाई से किया जा सकता है। केवल बढ़िया ढंग से काम करने की तरकीब से परिचित होने और उसे काम

सारा काम करती ही हैं। चीर-फाड करने वाले डाक्टरों का काम नित्यप्रति मैले को दूर हटाने का ही है। वे लोग सर्व साधारण के फायदे के लिये ऐसा काम करते हैं, इसलिये उनके काम को सहर्ष परोपकार मान हम उनका आदर करते हैं। डाक्टर लोगों का यह काम केवल बीमारों के लिए ही होता है, पर बेचारे भंगियों का काम तो सारे संसार की भलाई के लिये है और इसीलिये यह काम विशेष महत्व-पूर्ण, उपयोगी, जरूरी और पवित्र है। अगर डाक्टर अपना धंधा छोड़ दें तो बीमारों को ही हानि हो, पर यदि भंगी लोग अपना काम करने से पीछे हट जाँय तो सारे संसार में भयंकर खलबली मच जाये इसलिये हम नक्कारे की चोट दावे के साथ दृढ़ता पूर्वक कह सकते हैं कि जरूरी काम करने वालों ही को अपवित्र मानकर उन्हें दुरदुराना भयंकर पाप है। हमें तो चाहिये कि हम उनका ठीक वही डाक्टरों का सा आदर करें और उन्हें साफ रहने के लिये बाध्य एवं प्रेरित करें। उनमें शिक्षा का प्रचार कर उन्हें सफाई का सबक सिखावें। यदि हम उन्हें अपनाकर गंदी आदतें छुड़ाने की कोशिश करेंगे तो हम जरूर इस काम में कामयाब होंगे। उनपर हार्दिक प्रेम दिखाने पर कोई कारण नहीं कि वे हमारी नेक सलाह पर कान न दें?

मालूम होता है फिर भी इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि आज हमने उन्हें अपना पुश्तैनी गुलाम बना रखा है, उनकी बढ़ती के सारे दरवाजे बन्द कर दिये है, उनकी सारी सेवाओं के बदले में हम उन्हें खाने को अपना झूठन, पीने को गंदे कुए का पानी और पहनने को फटे पुराने चिथड़े देते हैं। कई हजार वर्षों की प्रचलित रूढ़ि में रहने के आदी बने हुए हमारे ये पिछड़े हुए भाई झूठन के रूप में भी सुखाद्य पाने की लालसा से इसमें अपना एक प्रकार का शायद गौरव ही समझते होंगे, परन्तु हमारी नीचता का नमूना तो देखिये कि जिस झूठन को हम अपने पालतू पशुओं जैसे गाय, कुत्ता और भैंस आदि को भी खिलाने को कभी तैयार नहीं होंगे, उसी झूठन को ये मनुष्य कहलाने वाले हमारे ही भाई खावें। और यदि किसी प्रकार हमारा कुत्ता उनके यहाँ बची हुई झूठन खा आवे तो भी हमें उसे पुचकारने और छूने में कोई एतराज नहीं होता। वह कुत्ता फिर भी हमारी मोटर या बग्घी में साथ घूमने का पूर्ण अधिकारी है—परन्तु उस भंगी भाई को छूने मात्र से हमें पाप होगा। मैं कहता हूँ, एक मनुष्य के नाते उन्हे छूने से परहेज करना हमारा भयंकर अपराध है। यह छूत छात ही हमारे सिर का कलंक है और ऐसे घृणायुक्त थूकने योग्य नृशंस अत्याचार करके ही हमने अपनी मानवता को मिट्टी में मिला दिया है। भाइयो! देवताओं के अमृत पुत्रो, मनुष्य कहलाने का कुछ दम भरते हो तो अपनी की जानेवाली पाशविक काली करतूतों को समझो; मनुष्यता की रक्षा करो और अपनी आबरू को बचाओ।

आज के दिन अस्पृश्यता का विष और मानसिक मलीनता का मैल हम हिन्दुओं की रग रग में रम चुका है। छूत और अछूत के सबन्ध मे जो प्रथा पुरखाओं के जमाने से चली आई है—वह चाहे कितनी भी निन्दनीय ही क्यों न हो, छोड़ी नहीं जाती। इस प्रथा को भारतवर्ष में चले करीब दो हजार से भी अधिक वर्ष हो चुके है, केवल इसी लिये यह प्रथा वंश-परपरा के सस्कारों की प्रेयसी बन कर बैठी है। यदि कोई इस प्रकार के अन्त्यजों के बहिष्कार की तथा छूत अछूत की प्रथा को उठाने को कहे तो आश्चर्य की इसमे कौनसी बात है कि लकीर के फकीर रुढ़िवादी अपने मत की पुष्टि के लिये किसी धर्म—ग्रन्थ के कुछ वचन सुना देंगे। जहाँ तक देखा गया है वे श्रुति और स्मृति में विशेष अन्तर ही नहीं मानते। परन्तु हम दावे के साथ कह सकते हैं कि श्रुति की आज्ञाएं सदा के लिये एकसी हैं और स्मृति की आज्ञाएँ समय के साथ बदलती रहती है क्यों कि स्मृति—ग्रंथ सामाजिक राजनैतिक तथा धार्मिक प्रबन्ध के नियम मात्र है और श्रुति—ग्रन्थ प्रकृति की नीति से कभी भी न बदलने वाले सिद्धान्त है। समय के साथ बदलने वाली स्मृतियों का असली कार्य-क्षेत्र देखा जाय तो यह साफ समझ मे आ जाता है कि एक राज्य नष्ट होकर दूसरा स्थापित होने पर या एक राज्य शासन बदल कर दूसरा राज्य तन्त्र आरम्भ होने पर पहले के नियमों के बदले मे नये और भिन्न कानून बन पड़ते हैं। यही बात आज कल व्यवहार मे भी पाई जाती है। अत वर्तमान समय मे पाँच हजार वर्ष पहले के नियमों से न्याय पाने की इच्छा निरी मूर्खता होगी। क्या अब एक [illegible] की [illegible] के

किसी चोर का हाथ काट डालना युक्ति संगत कहा जायगा क्या स्वप्न में दिए हुए वचन को निभाने के लिये सर्वस्व त्याग कर दर दर की भीख मांगने वाला राजा आदर का पात्र होगा ? कदापि नहीं।

ऐसी परिस्थितियों में मनुस्मृति और पाराशर स्मृति तथा अन्य स्मृति-ग्रन्थ पुरातत्व-ग्रन्थों के संग्रह मात्र का महत्व रखते हैं उनकी व्यावहारिक उपयोगिता तो अब नहीं के बराबर समझिये। मनु बाबा के "बाबा वाक्यं प्रमाणं" ही के आधार पर समाज में कितने ही भयङ्कर अन्याचार आज तक भी होते आए हैं परन्तु प्रत्येक पढ़े लिखे को इन स्मृतियों की वर्तमान कालीन अनावश्यकता अवश्य ही महसूस करनी चाहिये। ग्रीष्म काल के बीत जाने पर जाड़े में भी बारीक-पतले-कपड़े पहिने रहना हमारी अल्पज्ञता और अज्ञानता के अलावा और क्या कहा जा सकता है।

इस समय हमें देखना चाहिये कि हमारे श्रुति-ग्रन्थ अस्पृश्यता के सम्बन्ध में क्या आज्ञा देते हैं। उनमें सात्विक प्रेम, विश्वबन्धुत्व, परम भाईचारा और समान भाव आदि कूट कूट कर स्थान स्थान पर भरे पड़े हैं। हम कुछ मन्त्रों का अर्थ उद्धृत कर उनकी महानता का सिंहावलोकन कराना अपनी विषय पुष्टि के लिये अत्यावश्यक समझते हैं।

—"तुममें कोई बड़ा नहीं, कोई छोटा नहीं। तुम सब आपस में भाई हो; लोक में सब से अच्छे ऐश्वर्य के लिये मिलकर बढ़ो अर्थात परस्पर साहाय्य-सहायक के भाव से मिलकर प्रयत्न करो"। ऋग्वेद। ५। ६०। ५।

२—"ए मनुष्यों! तुम लोगों के पानी पीने और भोजन करने की जगह एक ही हो। समान धुरी में मैंने तुम सब को समानता से जोत दिया है। जिस प्रकार चक्र की नाभि में आरे जमे रहते हैं; उसी प्रकार तुम लोग एकत्र होकर परमात्मा की उपासना करो"। अथर्ववेद ३। ३०।

३—"एक स्थान में इकट्ठे हो जाओ, संवाद करो, अपने मतों को एक करो और जिस प्रकार पहले विद्वान अपने नियत कर्त्तव्य के लिये एकत्र होते थे, उसी प्रकार तुम भी हो।"

ऋग्वेद १०। १९१

इन उपरोक्त स्पष्ट आदेशों को देखकर ऐसा कौन पुरुष होगा जो अस्पृश्यता को शास्त्रोक्त और विधि विहित कहने का दुस्साहस करेगा। श्रुति-ग्रन्थों में स्थान स्थान पर ऐसे अनेक मंत्र भरे पडे हैं जो हमारे पूर्वजों के पारस्परिक मेल-जोल और भाईचारे को साबित करते हैं। जिनके आँखें है वे श्रुति-ग्रन्थों को आँखें खोल कर देखें कि छूत-अछूत के सम्बन्ध में शास्त्रकारों की निष्पक्ष राय क्या है।

आगे हम लोकमान्य महाभारत के भी उदाहरण देकर बतला देना अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते हैं कि महाभारत—काल तक इस अस्पृश्यता का नाम निशान भी न था।

"चारों वर्णों मे कोई भेद नही है, सभी के भीतर परमात्मा व्याप्त है। जो जैसे जैसे कर्म करता है वह वैसे वैसे वर्ण पाता है। वर्ण कर्म के द्वारा पाता है—जन्म के द्वारा नहीं"।

महाभारत शांति पर्व १८९

"शूद्रों की सन्तान शूद्र ही हो और ब्राह्मण की सन्तान ब्राह्मण यह कोई जरूरी बात नहीं है किन्तु वर्ण बदल भी सकते हैं।

महाभारत शांतिपर्व १८६

"यदि शूद्र शील—सम्पन्न हो तो उसे गुणवान ब्राह्मण समझना चाहिये और ब्राह्मण यदि क्रिया—हीन हो तो उसे शूद्र से भी नीच जानो।"

महाभारत वनपर्व १८० श्लोक

उधर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने विश्व विख्यात ग्रन्थ गीता में भी तो यही स्पष्ट कथन किया है कि गुण—कर्म के अनुसार ही चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था है।

"ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और म्लेच्छ अपने जन्म से कभी कोई नहीं होता, किन्तु अपने गुण—कर्मानुसार ही मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और म्लेच्छ हुआ करते हैं।"

शंकर नीति।

ब्रह्मा ने ब्रह्मपुराण के अध्याय २२३ में कहा है कि सदाचारी होने से शूद्र भी ब्राह्मण की तरह पूज्य हो सकता है।

धर्मशास्त्रों में हमें अस्पृश्यता कहीं नाममात्र का भी नहीं मिलती। यहाँ तो पदपद पर प्रेम और भाईचारे का आदेश नज़र आरहा है। अब हम हिन्दू धर्म के अन्य पन्थों और संप्रदायों की दृष्टि से भी जरा विचार करते हैं कि यह कहाँ अपना अस्तित्व कहाँ तक कायम रखती है।

पहले पहल हम श्री शङ्कराचार्य के चलाए हुए अद्वैत पन्थ का ही आपको दर्शन कराते हैं। जिस में द्वैत, ऊँच नीच, भेद-भाव का पूर्ण अभाव हो वही अद्वैत है। एक परब्रह्म ही नाना रूप में विद्यमान है। जब सृष्टि ही मिथ्या है तो उसमें रहने वाला

जाति-भेद तथा छूत अछूत की कल्पनाएँ भी भ्रम-मूलक होनी चाहिये इसी लिये श्रीशंकराचार्यजी ने कहा है "यह ब्राह्मण है यह चाण्डाल है—इस प्रकार का भेद तो भ्रम मात्र है वास्तव में मनुष्य—मनुष्य में कोई अन्तर नहीं।"

इससे आगे बढ़ कर हम यह बात देखते हैं कि श्रीरामानुजाचार्य ने किस प्रकार समानता का उपदेश देकर अंत्यज अछूत ढेढ़, चमार, भंगी व रेगरों के लिये बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने मन्दिरों के द्वार खुलवा दिये तथा उनको अपने पंथ के पाँच संस्कारों का अधिकार भी दे दिया।

श्रीरामानुजाचार्य ने इनके उत्थान के लिये इन्हें 'तिरुकुलनार' नाम दिया। इसका अर्थ 'श्रेष्ठ जाति के लोग' है। इसमें आचार्य श्री का यही लक्ष्य नज़र आता है कि किसी प्रकार उनके प्रचलित नाम मिट सकें तो उनको आशातीत सहायता और सफलता मिल सकेगी। आचार्यवर्य ने अन्त्यजों को वैष्णव-धर्म के पांच संस्कारों का अधिकार देकर धर्म आचार नाम तथा देवालय प्रवेश के द्वारा उनकी उन्नति का प्रबन्ध किया। श्री रामानुज का यह कार्य कितना प्रभावशाली था; इसका दिग्दर्शन तो हमें तब होता है जब कि हम यह देखते हैं कि वे लोग जो दूसरों के दृष्टिपात—मात्र से अपने भोजन को अपवित्र मानते हैं वे ही लोग बराबर तीन दिन तक प्रतिवर्ष ढेढ़, चमार, भंगी आदि अछूतों के साथ कंधे से कंधा मिला कर रहते हैं। इस

"शूद्रों की सन्तान शूद्र ही हो और ब्राह्मण की सन्तान ब्राह्मण यह कोई जरूरी बात नहीं है किन्तु वर्ण बदल भी सकते हैं।
महाभारत शांतिपर्व १८८

"यदि शूद्र शील—सम्पन्न हो तो उसे गुणवान ब्राह्मण समझना चाहिये और ब्राह्मण यदि क्रिया— हीन हो तो उसे शूद्र से भी नीच जानो।"
महाभारत वनपर्व १८० श्लोक

उधर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने विश्व विख्यात ग्रन्थ गीता में भी तो यही स्पष्ट कथन किया है कि गुण—कर्म के अनुसार ही चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था है।

"ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और म्लेच्छ अपने जन्म से कभी कोई नही होता, किन्तु अपने गुण—कर्मानुसार ही मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और म्लेच्छ हुआ करते हैं।"
शुक्र नीति।

ब्रह्मा ने ब्रह्मपुराण के अध्याय २२३ में कहा है कि सदाचारी होने से शूद्र भी ब्राह्मण की तरह पूज्य हो सकता है।

धर्मशास्त्रों में हमें अस्पृश्यता कहीं नाममात्र का भी नहीं मिलती। यहाँ तो पदपद पर प्रेम और भाईचारे का आदेश नज़र आरहा है। अब हम हिन्दू धर्म के अन्य पन्थों और संप्रदायों की दृष्टि से भी जरा विचार करते हैं कि यह रूढ़ि अपना अस्तित्व कहाँ तक कायम रखती है।

पहले पहल हम श्री शङ्कराचार्य के चलाए हुए अद्वैत पन्थ का ही आपको दर्शन कराते हैं। जिस में द्वैत, ऊँच नीच, भेद-भाव का पूर्ण अभाव हो वही अद्वैत है। एक परब्रह्म ही नाना रूप में विद्यमान है। जब सृष्टि ही मिथ्या है तो उसमें रहने वाला

जाति-भेद तथा छूत अछूत की कल्पनाएँ भी भ्रम-मूलक होनी चाहिये इसी लिये श्रीशंकराचार्यजी ने कहा है "यह ब्राह्मण है यह चाण्डाल है—इस प्रकार का भेद तो भ्रम मात्र है वास्तव में मनुष्य—मनुष्य में कोई अन्तर नहीं।"

इससे आगे बढ़ कर हम यह बात देखते हैं कि श्रीरामानुजआचार्य ने किस प्रकार समानता का उपदेश देकर अंत्यज अछूत ढेढ, चमार, भंगी व रेगरों के लिये बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने मंदिरों के द्वार खुलवा दिये तथा उनको अपने पंथ के पाँच संस्कारों का अधिकार भी दे दिया।

श्रीरामानुजआचार्य ने इनके उत्थान के लिये इन्हें 'तिरुकुल नार' नाम दिया। इसका अर्थ 'श्रेष्ठ जाति के लोग' है। इसमें आचार्य श्री का यही लक्ष्य नज़र आता है कि किसी प्रकार उनके प्रचलित नाम मिट सकें तो उनको आशातीत सहायता और सफलता मिल सकेगी। आचार्यवर्य ने अत्यजों को वैष्णव-धर्म के पांच संस्कारों का अधिकार देकर धर्म आचार नाम तथा देवालय प्रवेश के द्वारा उनकी उन्नति का प्रबन्ध किया। श्री रामानुज का यह कार्य कितना प्रभावशाली था, इसका विश्वास तो हमें तब होता है जब कि हम यह देखते हैं कि वे लोग जो दूसरों के दृष्टिपात—मात्र से अपने भोजन को अपवित्र मानते हैं वे ही लोग बराबर तीन दिन तक मन्दिर में ढेढ, चमार, भंगी आदि अछूतों के साथ कंधे से कंधा मिला कर रहते हैं। इन

खुले शब्दों में कह सकते हैं कि उनका यह विचार कदापि नहीं था कि किसी खास जाति पर छूत-अछूत का दोष लगाया जाय

अब रामानन्दजी को लीजिये—ये उपर्युक्त आचार्यजी के पन्थ के पिछले आचार्य थे। इनके प्रमुख शिष्य बारह थे। जो सब के सब अलग अलग हीन जातियों से चुने गये थे। इनके समय में श्री वैष्णवधर्म राष्ट्रीयता को प्राप्त कर चुका था। उस समय चमार अन्त्यज भंगी आदि अच्छी योग्यता वाले होते थे। यदि इनकी भी यही धारणा रहती कि अन्त्यज सदा के लिये ही अछूत और बहिष्कृत रहें तो वे उन्हें अपने सम्प्रदाय की दीक्षा कदापि नही देते। इसी प्रकार कबीर, चैतन्य आदि महापुरुषों ने भी अपने अपने धर्मों का प्रचार किया।

चैतन्य का प्रधान उपदेश यही था कि मनुष्य किसी भी रंग और जाति का क्यों न हो, वह ईश्वर की भक्ति से अवश्य ही शुद्ध हो जाता है। इन्हीं चैतन्यदेव के प्रयत्न से अन्त्यज और ब्राह्मण सब श्री जगन्नाथपुरी की छत्र छाया में एक साथ समानभाव से आकर इकट्ठे होने लगे। सब लोग ऊंच नीच के भावों को छोड़ कर यदि किसी मन्दिर में एक साथ प्रवेश करते हैं तो वह है केवल श्री जगन्नाथपुरी ही का मन्दिर। वास्तव में यही मन्दिर राष्ट्रीय मन्दिर कहलाने योग्य है।

सिक्खमत—सिक्खमत गुरु नानक का चलाया हुआ है। जान पड़ता है कि इस मत में छूत-अछूत का भाव प्रारम्भ ही से नहीं है। इनके माननीय शास्त्र "गुरु ग्रन्थ साहब" स्पष्ट बताते हैं कि जन्म के कारण लोगों का किस प्रकार का

भी बहिष्कार न करो। मनुष्य की पहिचान उसके आचरण से होनी चाहिये। ग्रन्थ साहिब का निम्न उद्धरण मेरे कथन को पुष्ट करेगा।

"१-पतित लोग परमेश्वर की भक्ति ही से पवित्र होते हैं। २-जाति या वर्ण की न तो पूछ ताछ करो और न उनका आदर करो। ३-वेही नीच बनते हैं जो दुष्कर्म करते हैं। ४-सम्पूर्ण संसार के लोग समान हैं। ५-परमेश्वर की भक्ति से नगर तक पवित्र हो सकते हैं तब देह अशुद्ध तथा अछूत कैसे रह सकती है ?"

इसी प्रकार दक्षिण के समर्थ गुरु रामदास तथा सन्त तुकाराम आदि के मत रहे हैं; परन्तु स्थानाभाव से हम यहां उन्हें अंकित करने में असमर्थ हैं।

जैनधर्म—जैनियों के चरम तीर्थंकर महावीर स्वामी ने भी इस नृशंस वर्ण-भेद और अन्त्यजों पर होने वाले अत्याचार के विपक्ष में घोर आन्दोलन उठाया था। जैनियों के मान्यवर मुनिवर्य हरिकेशी, मेहतारज और चित्रसम्भूत भी जन्म से अन्त्यज ही थे पर उत्तम चारित्र के कारण पूज्य माने गये।

आर्यावर्त देश के लोगों का जीवन ही धर्ममय बना हुआ है। जिनके "अहिंसा परमो धर्मः" ऐसा धर्म का मूल है "आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति स पण्डितः" आदि सिद्धान्तों को संसार जानता है। आज उन्हीं के द्वारा अपने ही भाइयों का तिरस्कार व बहिष्कार किया जाना धर्म के मूल पर कुठाराघात करना नहीं तो और क्या है? [illegible]

रात-दिन का अन्तर है। रूढ़ियों के सेवक बन कर हमने सत्य को नहीं पहिचान पाया। दयाधर्म के मर्म को हम अनुभवगम्य नहीं कर सके। अहिंसा धर्म के पालन में पिछड़ रहे। अहिंसा का अर्थ तो है मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणी को दुःख पहुँचाने का संकल्प तक न करना? क्या हम अपने ही भाइयो से इस प्रकार घृणाकर उस धर्म का पालन कर रहे हैं अथवा उसकी खिल्ली उड़ा रहे हैं ?

एक तरह से लोगों ने परोक्ष मे तो अछूतपन और अस्पृश्यता के भेदभाव को तिलांजली दे दी है, पर प्रत्यक्ष में अपने मुँह से यह बात स्वीकार करने का उन्हें साहस नहीं होता। कारण यही कि उनकी आत्माएँ अत्याचार करने के कारण दब गई है। लोग हार्दिक बात को आम जनता में प्रकट करते भी हिचकते हैं। अपनी इन निम्न लिखित बातों को देख कर तो स्वयं उन्हे भी स्वीकार करना पड़ेगा कि सब तरह से उन्होंने अस्पृश्यता को ठुकरा दिया है।

१—दलितोद्धार के विरोधी बाजार का अचार, मुरब्बा, सोडावाटर, लेमनेड आदि सब कुछ खाते पीते है। क्या वे यह सिद्ध कर सकते हैं कि यह समस्त खाद्य व पेय सामग्री कोई ब्राह्मण ही बनाता है और अस्पृश्य कहलाने वाले इन्हे बनाते हुए कभी नहीं छूते ?

२—दवाखाने में जहां अस्पृश्य और अछूत दवाई नहीं माने जाते वहां जाकर आप लोग क्या इनसे छुए बिना रह सकते हैं ?

वहां की दवा लेकर अथवा पीकर तो आपने परोक्ष ही

नहीं-प्रत्यक्ष में भी साबित कर दिया कि अस्पृश्य के छुए जल को पीकर आप सुधारक श्रेणी में दर्ज हो गये।

३—आप लोग गुड़ काम मे लाते हैं वह किस प्रकार तैयार होता है ? शूद्रों की जूतियाँ तक उससे छू जाती हैं।

४—सांभर की झील में बकरे, गधे, ऊँट और आदमी आदि गिरजाने पर उन सब का नमक बन जाता है। क्या आप लोगों ने उस नमक का खाना छोड़ दिया है ?

५—आपके इन देव मन्दिरों, पवित्र मूर्तियों और कूओं को बनाने वाले कौन थे ? ब्राह्मण अथवा वे ही अछूत कहाने वाले लोग ? इनके बनाने में सहायक होने वाले लोग ही इनके उपयोग से वञ्चित रहें। यह अंधेर नहीं तो क्या ?

६—चमारों द्वारा मढ़े नगारे, ढोल, ढोलक और तबले आदि तो आप मन्दिरों में सहर्ष काम में लाते हैं, पर उन्हें मन्दिरों मे आने देना आपको असह्य है। ऐसा क्यों ?

७—व्यभिचारिणी, कुलटा वेश्याएं और उनके भड़ुवे तो ठाकुरजी के सामने नाच गा कर मन्दिर को महापवित्र (!) कर सकते हैं, पर एक सदाचारिणी भीलनी दर्शन मात्र से वंचित रहे। कितना अंधेर ?

८—जब अछूत इन अत्याचारों से बचना पर विधर्मी के चोले में आवें तो आप उनसे हाथ मिलाने में गौरव और उच्च आसन देने को तत्पर रह कर "जी हुजूर! हां साहब!" आदि सम्मान सूचक शब्दों से सम्बोधन करने में अपना मान समझते हैं।

प्रकृति के आदेश तो सब मान्य होने ही चाहियें। अछूत और ब्राह्मण के अंगोपांग में जन्म के समय कुछ होता है? क्या अछूत और द्विजों के शरीर में एकसा खून और हड्डियां नहीं हैं? क्या अपमान सहकर अछूत की आत्मा दुःख अनुभव नहीं करती है? क्या उच्च कहलाने वाले वर्ण के लोगों के सर पर सुर्खाब के पर लगे रहते हैं? इस तरह के अनेकों प्रश्न पूछे जा सकते हैं, पर सबके उत्तर में यही मानना होगा कि जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अस्पृश्य हरिजन आदि सब का शरीर एक ही आकार-प्रकार का होता है। भंगी भी मनुष्य है और मानवता के नाते से भाईचारे के व्यवहार का वह भी वैसाही अधिकारी है, जैसे कि हम।

यदि प्रकृति की तरफ से किसीको अछूत कहा जा सकता है तो वह है बिजली, जिसे आप चाहने पर भी छू नहीं सकते, और यदि मानवीय सभ्यता से अछूत कहलाने के अधिकारी कोई हो तो ये हैं—धन के लोभ से अपनी अबोध बालिकाओं को निर्दयतापूर्वक पशुओं की भांति हजारों रुपयों में बेचने वाले स्वार्थी माता पिता, भारी ब्याज के द्वारा भोले कृषकों के खून को चूसने वाले लोभी बोहरे लोग, भीख द्वारा द्रव्य बटोर कर शराब पीने वाला, व्यभिचार करने वाला लंपट मंगता, दुध-मुँहे बच्चों की बेंतों से खाल उधेड़ने वाला क्रोधी मास्टर, भड़कीले विज्ञापनों द्वारा अनुभव-शून्य व्यक्तियों को ठगने वाला विज्ञापन बाज, आज्ञाकारिणी धर्मपत्नी को लातों द्वारा पीटने

॥ ॐ ॥

ऋण मुक्त कैसे हों ?

ऋण कई प्रकार के होते हैं; यथा मातृ-पितृ ऋण; गुरु ऋण; जाति ऋण, देश ऋण इत्यादि। इन ऋणों (कर्ज़ों) को हम साधारण अर्थों में कर्त्तव्य या फ़र्ज़ कह सकते हैं। माता, पिता, गुरु, जाति, देश तथा बान्धव आदि के प्रति हमारे जो जो कर्त्तव्य हैं उनको पूर्ण रूपेण पालन करने से उपरोक्त ऋणों का परिशोधन हो जाता है अथवा यों कहिये कि कुछ बोझ हलका हो जाता है। ये ऋण हमको आत्म-शुद्धि करने और सात्विक जीवन बिताने के लिए प्रेरणा करने वाले हैं।

मुत्सद्दी और मुसाहिब भी लेन देन करने वालों के क़र्ज़दार हैं। और गाँव में बसने वालों (किसानों) में तो शायद ही कोई ऐसा हो जो अपने खुद के तथा बाप दादों द्वारा किये गये क़र्ज़ के बोझ से न दबा जा रहा हो।

क़र्ज़दारी वाक़ई एक भयंकर बला है, महान् विपत्ति है। जो व्यक्ति एक बार इस जाल में फँस जाता है उसकी फिर सद्गति नहीं। उसकी हालत तो फिर छछूंदर को मुंह में लिये हुए साँप की सी हो जाती है। सांप अगर छछूंदर को खा जाता है तो उसके ज़हर से वह मर जाता है और अगर छोड़ देता है तो अंधा हो जाता है। इसी प्रकार एक बार जिसने क़र्ज़ ले लिया वह अगर चुकाने में समर्थ नहीं हुआ तो उसकी बड़ी दुर्गति होती है।

एक बाबू साहब हैं। उनका वेतन तो है २० या २५ रुपये मासिक और घर का खर्च ५० रुपये का। अब हर मास का यह घाटा कैसे पूरा हो ? फिर बेटे का और बेटी का विवाह भी करना है और माँ बाप मर गये अतः न्याति पञ्चों की आज्ञानुसार हलुआ पूरी भी न्याति वालों को खिलाना है। तब बाबूजी स्वभावतः ही एक बोहरे से एक मोटी रक़म उधार लाते हैं और बच्चों की शादी और माँ बाप का मौसर करते हैं। उधार लिये हुए रुपयों का भारी ब्याज देने और निश्चित समय के भीतर सारी रक़म चुका देने का वादा बोहरेजी से कर आते हैं। लेकिन न आमदनी बढ़ाने का कोई उपाय करते हैं न खर्च घटाने का। नतीजा क्या होता है ? मूल तो एक तरफ रहा,

दिन प्रति दिन, सुरसा के मुँह की तरह, ब्याज भी बढ़ता जाता है। बाबूजी इज्जतदार आदमी हैं। जब बाज़ार में जाते हैं तब कई लोग आपको सलामें भी करते हैं। इसी समय कर्ज़दाता भी कहीं से आ टपकता है और सरे बाज़ार बाबूजी को दस बीस जली कटी सुनाने लगता है। बाबूजी अपना मुँह लटकाये घर की तरफ खिसकने लगते हैं? क्या यह दशा सहन करने योग्य है?

एक सेठजी थे। उनके कोई सन्तान नहीं थी। फिर भी लेन देन के अनुचित तरीकों से हजारों रुपये उन्होंने जोड़ लिये। जब तक जीये कभी किसी लोकहितकारी कार्य में एक पैसा नहीं दिया। मरने से कुछ मास पूर्व उन्होंने एक सजातीय लड़का गोद ले लिया। थोड़े दिन बाद सेठजी इस संसार से चल बसे। लड़का पढ़ा लिखा नहीं था, अतः बुरे आचरण के लोगों के चक्कर में पड़ गया और अपने नये पिता की [illegible] अनैतिक कार्यों में पानी की तरह बहाने लगा। जब '[illegible]' ने उसको मना किया या ठीक रास्ते पर चलने की [illegible] तो उसे मार पीट कर घर से निकाल दिया। दुश्चरित्र [illegible] के कारण यह लड़का अनेक संक्रामक रोगों का शिकार हो गया। अतः बची हुई 'खुरचन' (शेष जमा पूँजी) [illegible] डाक्टरों की भेंट पूजा में खर्च हो गई। लेकिन लड़का फिर भी रास्ते पर नहीं आया। उसने न दुकान खोली और न [illegible] खर्च ही घटाया। फिर अपनी औरत के जेवर गिरवी रख कर रुपया उधार ला कर खर्च चलाने लगा। उसके [illegible] बहुत अच्छी थी। अतः कुछ दिन और [illegible] के [illegible]

लोग उसे क़र्ज़ देते रहे। पर जिनको उसके असली हालात मालूम हुए तो उन्होंने नया क़र्ज देना बन्द कर दिया। अब लोग उसे क़र्ज चुकाने के लिये तंग करने लगे। अन्त में अपनी इज्ज़त और आबरू जाती देख उसने ज़हर खा लिया और दूसरों के लिये एक भारी नसीहत छोड़ गया।

एक किसान था। उसके एक बड़ा खेत था। कई गायें, भैंसे थीं। बड़ा मेहनती था। अतः परिवार का अच्छी तरह भरण पोषण करता था और कुछ बचा भी लेता था। एक बार भयंकर अकाल पड़ने के कारण उसके खेत में कुछ भी पैदा नहीं हुआ। उसी साल बदकिस्मती से उसकी माता का स्वर्गवास होगया। अतः जो कुछ पैसे उसने अकाल का मुकाबला करने के लिये जोड़े थे वे उसे अपनी माँ के मोसर में खर्च कर देने पड़े। और एक सेठजी से बहुत कड़ी कड़ी शर्तों पर जानवरों के घास चारे के लिये कुछ रुपये उधार लिये। बेचारे ने सोचा था कि अगले साल जब खेत में अच्छी पैदावार होगी तो ये रुपये चुका दूँगा लेकिन अगले साल टिड्डी पका पकाया सारा धान खागई। अब उसे फिर कड़ी शर्तों पर एक रकम बोहरे से उधार लेनी पड़ी। पहली रकम के व्याज में कुछ गायें व भैंसें बोहरे के हवाले करनी पड़ीं। गाय भैंस दे देने से उसकी रही सही आमदनी भी मारी गई। इतने में ही उसके बेटे बेटा के विवाह भी आ पहुँचे। तब उसको अपनी रही सही सम्पत्ति बोहरे को देकर इस औसर (अवसर) पर अपनी शान दिखानी पड़ी। इस प्रकार वह कर्ज के दल दल में बुरी तरह फँस गया है। क्या उसका कर्ज़ से सहज ही पिण्ड छूट सकता है ?

इसी प्रकार अनेक उदाहरण दिये जा सकते है। हमारा यह निश्चित मत है कि कर्ज़दारी के कारण सैकड़ों ही नहीं, हजारों और लाखों घर बर्बाद होगये हैं, उजड़ गए है।

कर्ज़ लेने के मुख्य कारण निम्न लिखित हो सकते हैः—

१—विवाह शादी के लिये। (भोज, टीका, दहेज, वस्त्र और ज़ेवर)

२—माता पिता आदि के मृत्यु भोज के लिए। (मोसर, श्राद्ध, बरसी आदि)

३—मुक़द्दमेबाज़ी के लिये। (ज़र, जोरू और ज़मीन)

४—तीर्थ यात्रा के लिये।

५—सट्टा, फाटका या जूआ खेलने के लिये। (लॉटरी, घुड़दौड़, प्रतियोगिता)

६—मकान खरीदने व बनवाने के लिये।

७—जेवर बनवाने के लिये।

८—व्यापार या उद्योग शुरू करने व उनमें नुकसान होने पर घाटा पूरा करने के लिये।

९—कर्ज़ा चुकाने के लिये।

१०-जच्चा के प्रसूति काल के खर्च के लिये।

११-घटी आमदनी अपनी गरीबी छिपाने के लिये

१२-शान शौकत के लिये। (मोटर, रेडियो, घोड़े आदि खरीदने)

१३-खेती नष्ट होने पर दाना [illegible] पेट भरने के [illegible]

१४-अपने बाप दादा व परदादों का कर्ज [illegible]

* १५-शराब, अफीम आदि नशों के लिये।

१६-बाजारू औरतों की भेंट चढ़ाने के लिये। (वेश्यानृत्य व गमन)

१७-अपनी तथा अपने घर के किसी आदमी की बीमारी का इलाज कराने के लिये। (दवाई, वैद्य की फीस, प्रवास, जन्तर मंतर, डोरे आदि)

* १८-भाटों और चारणों आदि का 'नेग' चुकाने के लिए। (दक्षिणा, त्याग)

१९-सैर सपाटों के लिये। (रेल, मोटर, टमटम का किराया, होटल, खरीद)

२०-सजावटी सामान खरीदने व नाटक सिनेमा देखने के लिये।

२१-पेट के खड्डे को भरने व शरीर की लाज को बचाने के लिये।

यह बीसवीं सदी है, नया युग है और जाग्रति का ज़माना है। लेकिन सर्वतोमुखी उन्नति के इस युग में भी मैं अपने देश बन्धुओं को घोर निद्रा मे सोए हुए देखता हूँ तो दिल मसोस कर रह जाता हूँ। हम लोग किस मनोवृत्ति के आदमी हैं कुछ समझ मे नहीं आता ? न हम अपने पूर्वजो के सादगी के आदर्श पथ पर ही चल रहे हैं और न नवीन विचारों का स्वागत ही कर रहे है। हम दूसरों की नकल भी करते हैं तो अच्छी बातो की नहीं। उदाहरण के लिये हमारे बडेरे (पूर्वज)

---

* ये कर्ज़ आम तौर पर गाँवों के किसान ही लिया करते हैं—लेखक

बहुत थोड़े रुपयों में अपना खर्च चला लेते थे। वे अपने परिवार के किसी भी सदस्य को बेकार नहीं रखते थे। आदमी काम धंधे पर जाते थे; स्त्रियाँ घर पर सूत कातती थी और घर का सब कार्य कर लेती थीं। कोई धरती माता की पीठ का बोझ नहीं था; कोई बेकार नहीं था। जब कोई निठल्ला नहीं था तो दंगे फिसाद, आपस की कुत्ता फजीती भी नहीं होती थीं। जातीय पंचायतें भी उन दिनों स्वार्थियों के हाथों में नहीं थीं। पंच न्याय प्रिय होते थे। फल स्वरूप मुकदमेबाजी कतई नहीं होती थी। विवाह शादी में पानी की तरह 'होड़ा होड़ी' (प्रतिस्पर्द्धा के साथ) रुपया खर्च नहीं होता था। [illegible] गरीब लोगों को निबाह लेते थे। मृत्यु भोज भी [illegible] जिनके पास पैसा होता, वही करता था और सो भी बहुत थोड़े [illegible] में। आज कल की तरह कर्ज लेकर कोई अनाप-सनाप [illegible] खर्च नहीं करता था। पंच लोग किसी से जबरदस्ती [illegible] नहीं करवाते थे। तीर्थ यात्रा पहले पैदल ही की जाती [illegible] जिससे तीर्थ यात्रियों को भिन्न २ देशों की आबहवा, बोली, रहन सहन; खेती-बाड़ी के हाल-चाल आदि मालूम हो जाते थे। तीर्थयात्रा का महत्व पैदल चलने में ही है। [illegible] मोटर भी [illegible] या [illegible] में बैठकर जाते हैं [illegible] शान शौकत के लिये होने लगा है—[illegible] लिये बना जाता है यह [illegible] Standard of living है।

बहुत से मूर्ख और धन के लोभी सारी दुनियां का धन बटोर लेने की लम्बी चौड़ी आशाओं को बाँधकर सट्टा फाटका या जूआ खेलते हैं। जब उसमें घर बार आदि बेचकर बर्बाद होते हैं तब कर्ज ले लेकर कुछ दिन काम चलाते हैं या जेल की हवा खाते हैं।

बहुत से आदमी जिनके बड़ी बड़ी हवेलियाँ हैं, नौकर हैं, चाकर हैं, घोड़े हैं बग्घियां है। पर जिनके अब पहले जैसी कमाई बन्द हो गई हैं, अपने ठाट को बनाये रखने के लिये कर्ज़ पर कर्ज़ लेते रहते हैं। अन्त में उनकी शान मिट्टी में मिलती है। उनका हाथी कौड़ियों के मोल में कुर्क होकर बिकता है।

किसान लोगों की क़र्ज़दारी की कहानियाँ हृदय द्रावक हैं। अनपढ़ होने के कारण उनको लम्पट वर्ग हर प्रकार से चूसता है। कुदरत, चूहे, टिड्डी, कातरा, जंगली जानवर आदि उनके सैकड़ों जानी दुश्मन हैं। अंधश्रद्धा, अशिक्षा और ग़रीबी की नंगी तलवारें उन पर सदैव लटकती रहती हैं। दुनियां में कोई उनके साथ सच्ची सहानुभूति रखने वाला नहीं, उनकी उपज को बेचने का प्रबन्ध नहीं, उनको खुद को ज्ञान नहीं, वे हर प्रकार से वे बस हैं—लाचार हैं। फिर भी वे अपना संगठन नहीं करते। इतने पर भी वे नहीं चेतते और शराब खोरी, औसर मोसर तथा अनेक भोपा भोपी के पूजन में तथा बुरे-गंदे रिवाजों के पालन में अपनी गाढ़ी कमाई को उड़ा देते हैं। कर्ज़ लेकर चालाक लोगों के "खरीदे हुए गुलाम" बन जाते हैं और सदैव नंगे फ़क़ीर बने रहते हैं। कर्ज़ की चक्की में पिस

रहे हैं; ऋण के कोल्हू में पिल रहे हैं, सूद की भट्टी में भस्मी-भूत हो रहे हैं और देने के दुःख तथा चिन्ता में मृत प्रायः दशा में जीवन की अन्तिम साँस ले रहे हैं। भगवान् ही उनका बेली (सहायक) है।

इस समय भारतीय समाज की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई है। हमने दूसरे देशों की आराम तलबी और फैशन को अपना कर अपना खर्चा बेहद बढ़ा लिया है। हम आलसी हो गये हैं। हमें प्रत्येक कार्य के लिये दूसरों के आश्रित रहने की आदत हो गई है। रोटी बनवावेंगे तो नौकर नौकरानी से, कपड़े खुद नहीं धोवेंगे। स्त्रियाँ आटा घर पर नहीं पीसेंगी, पानी भी नौकर से मँगवावेंगे। बाहर २०—२५ कदम भी पैदल नहीं चलेंगे। मेज कुर्सियाँ, झाड़ फानूस; अश्लील चित्र, कीमती पलंग आदि अनेक ऐसी चीज हैं जिनके बगैर हमारा काम चल सकता है, फिर भी हम उन्हें शान व शौकत दिखाने के लिये खरीदते रहते हैं। इन सबके लिये रुपया कहाँ से आवे? जिनके पास है वे नकद पैसा देकर खरीदते हैं। दूसरों का कर्ज लेकर [illegible]।

स्वार्थ की भावना हममें इतनी घुस गई है कि किसी सार्व-जनिक कार्य; जाति कार्य या पुण्य कार्य के लिए एक पैसा देते हुए भी हमें संकोच होने लगता है, पर अपने खुद के [illegible] के लिए पानी की तरह रुपये बहाने में भी हिचकिचाहट नहीं [illegible] स्थान पर अकाल पड़ा हुआ है। हजारों [illegible] दाने को तरस रहे हैं और कई जानवर [illegible] तड़प तड़प कर मर रहे हैं। पर हम उनकी [illegible]

अपने बटुए के बटन ढीले नहीं करते । २) या ४) देते नानी मर जाती है । पर यार दोस्तों की पार्टियों में देने के लिये, विवाह शादी में, औसर मौसर में, मुक़द्दमें बाज़ी में, नशाखोरी तथा जूए बाज़ी और खेल तमाशों मे हज़ारों रुपये कर्ज़ लेकर फूँक डालते हैं ।

मैं यह नही कहता कि कर्ज़ा लेना कोई पाप है या भयकर गुनाह है । अनिवार्य अवस्थाओं में मनुष्य को कर्ज़ लेना ही पड़ता है । किन्तु व्यापार या उद्योग शुरू करने, अकाल एव दैविक आफतो का मुकाबिला करने, घर के किसी व्यक्ति की दवा दारू करने, पेट को भरने या बच्चो की पढ़ाई का खर्चा भरने के अलावा और कोई ऐसा कारण नही दीखता जिसमें क़र्ज़ की बला मोल लेना ही अनिवार्य सिद्ध होती हो । और इन कामो के लिये जो क़र्ज़ लेते है उसको चुकाने के लिये नीचे लिखी बातों पर ध्यान रखना चाहिये । क़र्ज़े से पिण्ड छुडाने के लिये ये उपाय अमोघ हैं, एक भुक्त-भोगी के अनुभव हैं । यदि आप स्वय क़र्ज़दार है तो इनसे ज़रूर लाभ उठाइए और यदि ईश्वर की कृपा से अऋणी हो तो भी इनको ध्यान मे रख कर अपने पड़ौसी या मिलने जुलने वाले क़र्ज़दारों को क़र्ज़े के बोझ से छुड़ाने मे समय पर अपनी सलाह से मदद देने की कोशिश करिये ।

१—क़र्ज़ बहुत से आदमियों से न लेकर सिर्फ एक ही आदमी से लो ।

२—जो कम से कम सूद (व्याज) लेकर क़र्ज़ दे उसी से क़र्ज़ लो ।

३—जहाँ तक हो सके; जब तक पहिले का ऋण साफ़ न हो जाय, तब तक नया ऋण न लेना चाहिये।

४—अपने ऋण का अपने खुद के पास पूरा पूरा हिसाब रखना चाहिये।

५—ब्याज के साथ साथ मूल रक़म को चुकाने की भी फिक्र करनी चाहिये। मूल रक़म जितनी कम होती जायगी उतनी ही फालतू (ब्याज) में कटने वाली रक़म कम होती जायगी।

६—झूठी आशाओं पर कभी क़र्ज़ मत लो।

७—अपने जीवन को सादगीमय बनाओ। झूठी शान के पीछे मत मरो।

८—अपनी सच्ची स्थिति प्रगट करने में मत [illegible] मत डरो। अगर घर में गरीबी है तो उसको [illegible] के लिये कर्ज लेकर ठाट बाट कायम मत रक्खो।

सोच समझ कर करो और समय पर अदा करदो। किश्तों द्वारा भारी कर्ज़ भी आसानी से चुकाया जा सकता है।

१२–कर्ज़ लेते समय ब्याज पर ब्याज न देने की शर्त रखाने की कोशिश करो।

१३–जिह्वा और मन पर सयम रक्खो। आवश्यकताएँ घटाओ।

१४–आय व्यय का लेखा रक्खो और अपनी आर्थिक स्थिति का माप प्रतिवर्ष लगाओ और बजट के अनुसार खर्च करो।

कर्ज़ देने वालों मे सबका दिमाग़ एक सा नहीं होता। जिसको ईश्वर ने कुछ समझ और हृदय दिया है और जो दूसरे की कठिनाइयों पर सहानुभूति के साथ विचार कर सकता है वह तो अपने कर्ज़दार को तंग नहीं करता, सरे आम उसको जली कटी सुना कर नीचा दिखाने की कोशिश नहीं करता। पर ऐसे व्यक्ति आज के ज़माने में बहुत ही थोड़े हैं। कर्ज़दारों को ज़लील करके जैसे तैसे उनको तंग करने वाले कर्ज़दाता बहुत है। इस पिछली श्रेणी के आदमी कर्ज़ वसूल करने के लिये अनुचित उपायों का अवलंबन करने में भी सकोच नहीं करते। फिर मान लीजिये कि आप दस या इससे अधिक साहूकारों से रुपया कर्ज़ पर ले आए है। लेकिन कारणवश आप उसे समय पर नहीं चुका सके तो फिर आपको इन दस या बीस कर्ज़दाताओं की खुशामद करनी पड़ेगी। उन दस या बीस व्यक्तियों के आगे हर बात में आपको दबना पड़ेगा, यहाँ तक कि आप को घर के गुम

भेद भी बताने पड़ेंगे। उनके आगे अत्यन्त दीन और दास भाव प्रगट करना पड़ेगा। अतः एक ही व्यक्ति का क़र्ज़दार होना अच्छा है। एक का हिसाब भी साफ़ रहता है; अलग अलग को चुकाने की चिन्ताएँ नहीं रहतीं। अगर आपके ऋणदाता कई हों तो पहले क़र्ज़ उनको चुकादो जिनकी रकम थोड़ी हो। अथवा पहले उनको चुकाओ जिनकी सूद की दर अधिक है। क़र्ज़ से पिण्ड छुड़ाने का यही सरल पथ है।

बहुत से आदमी लम्बी लम्बी और झूठी आशाओं पर भारी क़र्ज़ ले लेते हैं। यह नितान्त अनुचित है। इसके अलावा चार्वाक मतावलम्बियों की तरह यह सोच कर भी क़र्ज़ लेना [illegible] है कि—"यावद् जीवेत् सुखं जीवेत्। ऋणं कृत्वा घृतम् पीवेत्।"

काल्पनिक बातों (झूठी आशाओं) पर कर्ज़ा लेना सब प्रकार से अनुचित है।

आज कल के जमाने में सहयोग समितियों (Co-operative Societies) का महत्व बहुत बढ़ता जा रहा है। कुछ लोग मिल कर एक समिति खोलते हैं। वे अपनी आमदनी का थोड़ा थोड़ा हिस्सा बचाकर उसमें जमा करते जाते हैं। जब उसके मेम्बर को रुपये की अत्यन्त आवश्यकता होती है तो समिति साधारण व्याज पर उसे रुपया उधार देती है और धीरे धीरे किश्तों मे उसे वसूल करती है। समिति के पास जो रुपया होता है वह दूसरों को भी व्याज पर दिया जाता है। ये सोसाइटियाँ हर प्रकार की दैनिक व्यवहार की चीज़ें भी विक्रयार्थ रखती हैं और कम मुनाफे पर अपने हिस्सेदारों को देती हैं। इनका हिसाब बाकायदा रहता है। सरकारी ऑडिटर तक इनका हिसाब जांचते रहते हैं। ये सोसाइटियाँ कर्ज़ लेने वाले की हैसियत देख कर कर्ज़ देती है और पहले से तय की हुई किश्तों के अनुसार ही रुपया वसूल करती हैं। सूद खोरों की तरह बार बार और जगह ब जगह आ कर कर्ज़ लेने वालों को तंग नहीं करती। हाँ, हर महीने या निश्चित अवधि के अनुसार, बीमे की किश्त की तरह, कर्ज़दार को अपनी किश्त चुका देनी चाहिये। समिति वाले रुपया देते समय रसीद लिखा लेते हैं; तारीख महीना सन् सब उसमें दर्ज करते है। और जब जब आपके रुपये किश्त के रूप में जमा होते हैं तब तब आपको रुपये प्राप्त होने की रसीद देते है। उसमें कितना रुपया आपने

जमा कराया और कितना आपके नाम अब बाक़ी रहा, यह सब दर्ज करते हैं। इस प्रकार आपके सामने हर दम आपका हिसाब आईने के समान रहता है पाठकों को इस प्रकार की सहयोग समितियाँ स्थापित करवाने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। इस प्रकार अनेक कर्ज़दारों का निर्दय ऋणदाताओं से सहज ही में पिण्ड छूट जाता है।

और जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है बीमारी, अकाल, बेकारी का मुकाबिला करने तथा बच्चों की तालीम के लिये भले ही कोई थोड़ा बहुत रुपया उधार लें, अन्यथा जिस प्रकार

उपसंहार

(सम्पादक)

(तर्ज़—कमली वाले ने)

क़र्ज़े के कारण क्रोड़ों को, भारत में नींद न आती है।
करना नहीं काम सुहाता है, रोटी नहीं पूरी भाती है ॥टेर॥
करजे कर जेवर बनवाते, वश होकर के नर नारी के
उन लोगों के घर में आफत, नित बिना बुलाये जाती है-क०
बिन काम का सौदा कर्ज़े से, आसानी से मिल जाता है।
फिर व्याज का पैसा चढ़ने से, दूनी लागत लग जाती है-क०
बिन रोकड़ पैसे चार जगह, नहीं देख सके वे मन चाही।
रद्दी चीज़ें महँगी क़ीमत से, उनके सिर चिप जाती हैं-क०
देखा देखी करते खर्चा, चर्चा जब चलती ब्याहों की
क्या कमती खरचा करने से, कहीं नाक किसी की जाती है-क०
आमद कमती ख़रचा ज़्यादा, क्यों कि नहीं बजट जमाते हैं।
जब लेने वाला आता है, दिखता वह उनको घाती है
करजे का कितना कष्ट महा, क्या कलम विचारी कह सकती
यह भुक्त भोगी ही जानत है, जिनकी दाभी यों आती है-क
करजे को जड से काटन की, मैं युक्ती सरल बताता हैं
पहले छोटे सब करजों को, देने से आफत जाती है
फिर बड़े करज वालों को कुछ, तुम मूल सहित देते जाओ
'श्रीनाथ' नया फिर कर्ज न लो, तो फारखती हो जाती है
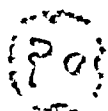
ज्ञान माला पर लोकमत (क्रमशः)

११ वें ट्रैक्ट से आगे—

(१७) श्री सोहनराजजी भंसाली 'परिचित' उम्मेद जैन बालाश्रम उम्मेदपुर से ता० २१-११-३५. के पत्र में लिखते हैं—

प्राप्त ६ ट्रैक्ट हस्तगत हुए 'सस्ती ज्ञान माला' जैसा नाम वैसा कार्य भी है। ट्रैक्ट खूब सस्ते, शुद्ध और सुन्दर है। आपका उत्साह, साहस और परिश्रम वास्तव में सराहनीय एवम् अभिनन्दनीय है। इन ट्रैक्टों से समाज का बड़ा ही उपकार और हित होगा, ऐसा पूर्ण विश्वास है। आपके 'शुभ गीतों' की तरह समाज इनको भी अपनावे इसमें कोई आश्चर्य प्रतीत नहीं होता। अभी से २५० स्थाई ग्राहक संख्या हो जाना आपकी सफलता का प्रज्ज्वलन्त उदाहरण है। मैं आपके इस कार्य की हार्दिक सफलता चाहता हूँ। मेरी तो हार्दिक अभिलाषा है कि आप इसे स्थाई और मासिक रूप देवें।

(१८) श्री० लूम्बचन्दजी धूलाजी जैन पो० गुढ़ा बालोतरा से ता० २-११-३६ के पत्र में लिखते हैं—" आपके भेजे हुए ट्रैक्ट १५ मिले। ट्रैक्ट बहुत ही प्रभावशाली है। अगर ऐसे ऐसे ट्रैक्ट निकाला करेंगे तो अवश्य समाज की उन्नति हो सकती है। मैं आशा रखता हूँ कि समाज ज्ञान-माला के ट्रैक्टों को अपनावेगी।" (अपूर्ण)

समालोचकों से:—

कृपया ज्ञान माला के ट्रैक्टों की खरी समालोचना हमें भेजिये। इसके लिये हम आपके चिर ऋणी रहेंगे और अपनी भूलें सुधार लेंगे।

सम्पादक—

ब्रह्मचर्य कैसे सधे ?

हृदय में स्फूर्ति भरने वाली, जीवन में ज्योति उत्पन्न करने वाली, मानवीय सभ्यता को उच्चासन पर बिठाने वाली, शक्ति को महाशक्ति में बदलने वाली, अलभ्य शक्ति क्या है ? उसका संक्षिप्त उत्तर मेरी समझ में तो ब्रह्मचर्य पालन, केवल ब्रह्मचर्य पालन ही है। ब्रह्मचर्य शब्द की व्युत्पत्ति है "ब्रह्मणि चरणम् इति ब्रह्मचर्यम्"। बृह् या बृंह्—धातु का अर्थ बढ़ाना, विकास करना इत्यादि है। इसमें मनिन् प्रत्यय जोड़ देने से ब्रह्म शब्द बन जाता है। जिसके अर्थ वृद्धि आदि अनेक होते हैं। अब बाकी रहा चर्य शब्द जिसका अर्थ प्रयत्न करना, विचरण करना आदि है। ब्रह्मचर्य, इस समासान्त शब्द का पूरा अर्थ यह है कि ब्रह्म विचरण करना। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह भी निकाला जासकता है कि वीर्य धारण करना या वीर्य की रक्षा करना।

प्राचीन इतिहास अवलोकन करने से पता चलता है कि वीर्य की रक्षा करने से पुरुष कैसे बली, शूर और साहसी होते थे। वे वीर्य रत्न का मूल्य समझते थे और बातों ही बातों में उसका नाश नहीं करते थे। इसी की रक्षा से वे दीर्घजीवी होते थे। ओज एवं तेज उनके चेहरे से टपकता था। उनकी मुख प्रभा कमल की प्रभा को भी मात करती थी। उनके वचनों में कैसी अपूर्व शक्ति होती थी। उनके वचन श्रोताओं पर जादू का सा असर रखते थे। मृत्यु तक उनके सन्मुख करबद्ध खड़ी रहती थी। कहा भी है "ब्रह्मचर्येण तपसा देवामृत्यु मुपाघ्नत"। वे मृत्युञ्जयी थे तथा ब्रह्मचर्य के तप से ही उन्हें इच्छामरण की शक्ति प्राप्त हो जाती थी। आजन्म कठिन ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने से ही तो भीष्म अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सके थे कि यदि मैं आज श्रीकृष्ण को चक्र ग्रहण न करा दूँ तो शान्तनु-पुत्र न कहलाऊँ सूरदासजी ने इसका क्या ही अच्छा वर्णन किया है।

आजु जो हरि हि न शस्त्र गहाऊँ।
तौ लाजौं गंगा जननी को, शान्तनु सुत न कहाऊँ॥
स्यन्दन खण्डी महारथ खण्डौ, कपि ध्वज सहित डुलाऊँ।
इति न करौ सपथ तो हरि की, छत्रिय-गति हि न पाऊँ॥
पाण्डव दल सन्मुख ह्वै धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊँ।
सूरदास रन विजय सखा को जियत न पीठ दिखाऊँ॥

धन्य भीष्म पितामह! स्वयं भगवान् को भी अपनी प्रतिज्ञा भंग करके शस्त्र (चक्र) ग्रहण करना ही पड़ा। बाणों से बिध ...ने पर भी दक्षिणायन में मृत्यु शय्या पर लेट उन्होंने

उत्तरायण में स्वेच्छा से शरीर का त्याग किया था। परशुरामजी हनुमानजी आदि भी अनेक बालब्रह्मचारी होगये हैं। वर्तमान समय में स्वामी दयानन्दजी भी आदर्श ब्रह्मचारी हो चुके हैं। जिन्होंने भारतवर्ष को निद्रा से जागृत कर दिया है। भारतवासी, ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही भारत को कीर्ति दिग्दिगन्त में व्याप्त कर सके। ब्रह्मचर्य के बल से ही व भारत को सर्व देशों का शिरोमणि बना सके। किसी भी अन्य विदेशी का साहस नहीं होता था कि भारत से लोहा ले। यदि किसी ने दुस्साहस किया भी तो उसे उल्टी मुँह की खानी पड़ी। क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि ब्रह्मचर्य की महिमा अपार है। ब्रह्मचर्य साधना बुद्धिमान व्यक्ति अवश्य चाहेगा। आज इसी पर विचार करें कि यह कैसे सध सकता है।

कितना ही धीर वीर प्रसन्न आनन बालक क्यों न हो, वीर्य भ्रष्टता के कारण ही दीन हीन होजाता है। वीर्य रूपी अमूल्य हीरे को खो देने से मनुष्य सदा भयभीत रहता है और निरुत्साही होजाता है। उसका स्वभाव क्रूर और रूखा हो जाता है। वह सदा उदास बना रहता है। उसे चिड़चिड़ेपन की बान पड़ जाती है। निर्बलता आ घेरती है जिससे वह अनेक रोगों से ग्रसित हो जाता है। कहा गया है "तीन दवाखत निसंक ही राजा पातक रोग"। बाद में वह रोगी के समान दर दर मारा मारा फिरता है। वैद्य को परमात्मा समझता है। अखबारों में प्रकाशित हुए विज्ञापनों को पढ़ता है। यथा साध्य और यथा शक्ति लाखों प्रयत्न करता है। हाथ से खोये हुए वीर्य की पुनः प्राप्ति के लिए कोई कसर उठा नहीं रखता। रुपयों पैसों को तो पानी की तरह बहा देता है। किन्तु अन्त में परिणाम क्या? वही पश्चात्ताप। पर 'अब पछताए होत क्या चिड़िया चुग गई खेत"। देखा वीर्यनाश का परिणाम! सच पूछा जाय तो हम उन भेड़ों की तरह हैं जो एक को खड्डे में गिरते देख कर भी अपने बचने का उपाय नहीं सोचतीं बल्कि अनुसरण करती ही रहती हैं। दुःख का विषय है कि यद्यपि हम वीर्यनाश के भयंकर परिणाम का अनुभव करते हैं तथापि न जाने हम पर कैसा जादू का सा प्रभाव पड़ गया है जिससे हम अभी तक उससे नहीं बच पाये। जैसे तोता बोलना तो जानता है कि बिल्ली आवे तो उड़ जाना पर बिल्ली के आने पर भी वह उड़ता नहीं। बस, बिल्ली वहाँ आती है और उसे हड़प कर जाती है। खैर! हुआ सो हुआ। बीति ताहि बिसारिदे आगे की सुधि लेय।

नहीं परन् आसानी से ही अपनी तरफ खींच लेती हैं। बाल्यावस्था में ही बच्चों के हृदय रूपी क्षेत्र में बुरे संस्कारों का बीज आरोपित हो जाना कितना बुरा है। क्योंकि बचपन में जो संस्कार के चित्र बच्चों के हृदय पटल पर खचित होजाते हैं वे आजन्म विधाता की रेखा के समान अमिट रहते हैं। अतएव मानवी जीवन की सब अवस्थाओं में बाल्यजीवन एक बड़ी महत्व की अवस्था है। सदाचार के अमृत रूपी वृक्ष का बीज बालपन ही में बोया जाता है और दुराचार के विष वृक्ष के बीज आरोपण का भी यही समय है। क्या ही उत्तम हो यदि बालकों के चरित्र पर उच्च और स्थाई छाप डालने वाली उपयुक्त पाठ्य पुस्तकें पाठ्यक्रम में नियत करदी जाँय। हमारा तो ध्रुव विश्वास है कि ऐसी ही पुस्तकों के पढ़ने से बालकों का चरित्र सुधर सकता है।

आज कल का अधिकांश शिक्षक वर्ग भी ऐसा स्वार्थी है जो कि स्कूलों में किताबी शिक्षा देने के सिवाय बच्चों के आचरण के विषय में कुछ भी ध्यान नहीं देता। क्या केवल पुस्तकें पढ़ा देने से ही शिक्षक के कर्त्तव्य की इति श्री होजाती है? शिक्षक तो पिता तुल्य होता है। बच्चों की बागडोर शिक्षक के ही हाथ में होती है। वह चाहे जिधर उसे मोड़ सकता है। क्या ही उत्तम हो यदि शिक्षक वर्ग उन बच्चों को, जिन पर देश, समाज और जाति का उत्थान और पतन निर्भर है, वीर्यरक्षा सम्बन्धी शिक्षा* दे जिससे बालकों के सन्मार्ग पर आजाने की पूर्ण सम्भावना है।

* लोग वीर्यरक्षा संबंधी बातें बताते सकुचाते है जिसका परिणाम यह होता है कि बालक जिज्ञासु स्वभाव से यह बातें अनाधिकारी व्यक्तियों से मालूम कर उनका दुरुपयोग करते है। बच्चों को संतति विज्ञान का बोध कराने के आधुनिक नवीन तरीकों से मां बापों और शिक्षकों को परिचित [होना] चाहिये— सम्पादक

के मन को विचलित करने के लिए मेनका को भेजी। थोड़ी देर तक तो विश्वामित्र निर्निमेष बैठे रहे मगर अन्त में मेनका के रूप-रंग, हाव-भाव और हास्य-नाच पर अपने मन को काबू में न रख सके। परिणाम यह हुआ कि इन्द्र का मनोरथ सफल हो गया। तब ऐसे सहवास से साधारण बालकों के मन चलायमान हो जावें तो आश्चर्य ही क्या है। अमुक बालक अमुक बालिका के प्रेम जाल में फंस गया, इत्यादि अनेक घटनाएँ समाचार पत्रों मे प्रकाशित होती ही रहती हैं। अभी तक तो सहशिक्षा हानिकारक सिद्ध हुई है आगे भगवान् जाने। कक्षा मे पढ़ते समय भी बालकों का ध्यान अपनी प्रेमिका के प्रति ही रहता है। वे ध्यानपूर्वक प्रोफेसर के भाषण को नहीं सुनते। वे तो यही चाहते हैं कब घण्टा बजे और कब बाहर जावें और कब प्रेमिका के साथ प्रेम से वार्तालाप करने का सुअवसर प्राप्त हो। इससे अध्ययन तो होवे ही क्या, अमूल्य हीरे रूपी वीर्य को भी अपने हाथ से खो बैठते हैं। सह शिक्षा के द्वारा हानियों का विचार कर यदि इसका समूल नाश * कर दिया जावे तो बालकों का बहुत कल्याण होने की सम्भावना है।

(इ) ग्रामीण छात्रालय और ब्रह्मचर्य—माँ बाप की गोद में रह कर शहरी स्कूल मे अध्ययन करने वाला छात्र ब्रह्मचर्य व्रत

* लोअर प्राइमरी स्कूलों मे जहां केवल अध्यापिकायें ही पढ़ाती हों यदि वहाँ छोटे बालक भी भर्ती कर दिये जांय तो कोई हानि नहीं। लेखक का यह मतलब ऊँची कक्षाओं से ही है—सम्पादक

का पालन कठिनता से कर सकता है क्योंकि वहां का वातवारण ही दूषित होता है किन्तु ग्रामीण छात्रालय में रह कर छात्र उसे आसानी से निभा सकता है। क्योंकि वहाँ हैं केवल छात्र अर्थात् ब्रह्मचारी समाज और छात्रालय अर्थात् ब्रह्मचारियों का समाज। ब्रह्मचारियों से रहित छात्रालय छात्रालय नहीं कहा जा सकता। ब्रह्मचर्य ही छात्रालय का प्राण है किन्तु आज कल यह भी दूषित वायु मण्डल से अछूता नहीं बचा है। जिसके अनेक कारण हैं। आज कल के माता पिता भी अज्ञान वश इतने मोहान्ध होगये हैं कि सदाचारी बालकों को तो छात्रालय में भेजते ही नहीं हैं। वे तो उन बालकों को छात्रालय में प्रविष्ट कराना अत्युत्तम समझते हैं जो किसी न किसी दूषण से अवश्य ग्रसित हों। वे दुराचारी बालक स्वयं तो मुश्किल से सुधरते ही हैं किन्तु अपने दुर्गुणों का प्रभाव अन्य छात्रों पर भी डालते हैं और अवश्य ही रात दिन की संगति के कारण अन्य बालक भी उन दुराचारी बालकों के समान बन जाते हैं। जैसे सड़े (लगे) हुए एक पान की संगति से दूसरे सभी पान सड़े बगैर नहीं रह सकते। ठीक इसी प्रकार दुष्ट छात्र की संगति से भले छात्र दूषित हुए बगैर नहीं रह सकते।

किसी तरह से छात्रालय के गृहपति एवं संचालक को पता चल जावे कि अमुक बालक आचरणभ्रष्ट है और वे उस बालक को संस्था से पृथक् करना चाहें तो उस लड़के का पिता धमकी देता है और कहता है कि आप तो अमुक पद के बरबे का ही ध्यान देते हो; हमारे लड़के को क्यों रखोगे। इस

के मन को विचलित करने के लिए मेनका को भेजी। थोड़ी देर तक तो विश्वामित्र निर्निमेष बैठे रहे मगर अन्त में मेनका के रूप-रंग, हाव-भाव और हास्य-नाच पर अपने मन को काबू में न रख सके। परिणाम यह हुआ कि इन्द्र का मनोरथ सफल हो गया। तब ऐसे सहवास से साधारण बालकों के मन चलायमान हो जावें तो आश्चर्य ही क्या है। अमुक बालक अमुक बालिका के प्रेम जाल में फंस गया, इत्यादि अनेक घटनाएँ समाचार पत्रों मे प्रकाशित होती ही रहती हैं। अभी तक तो सहशिक्षा हानिकारक सिद्ध हुई है आगे भगवान् जाने। कक्षा में पढ़ते समय भी बालकों का ध्यान अपनी प्रेमिका के प्रति ही रहता है। वे ध्यानपूर्वक प्रोफेसर के भाषण को नहीं सुनते। वे तो यही चाहते हैं कब घण्टा बजे और कब बाहर जावें और कब प्रेमिका के साथ प्रेम से वार्तालाप करने का सुअवसर प्राप्त हो। इससे अध्ययन तो होवे ही क्या, अमूल्य हीरे रूपी वीर्य को भी अपने हाथ से खो बैठते हैं। सह शिक्षा के द्वारा हानियों का विचार कर यदि इसका समूल नाश * कर दिया जावे तो बालकों का बहुत कल्याण होने की सम्भावना है।

(इ) ग्रामीण छात्रालय और ब्रह्मचर्य—माँ बाप की गोद में रह कर शहरी स्कूल मे अध्ययन करने वाला छात्र ब्रह्मचर्य व्रत

* लोअर प्राइमरी स्कूलों मे जहां केवल अध्यापिकाएँ ही पढ़ाती हों यदि वहाँ छोटे बालक भी भर्ती कर दिये जांय तो कोई हानि नहीं। लेखक का यह। मतलब ऊँची कक्षाओं से ही है—सम्पादक

का पालन कठिनता से कर सकता है क्योंकि वहां का वातवारण ही दूषित होता है किन्तु ग्रामीण छात्रालय में रह कर छात्र उसे आसानी से निभा सकता है। क्योंकि वहाँ हैं केवल छात्र अर्थात् ब्रह्मचारी समाज और छात्रालय अर्थात् ब्रह्मचारियों का अखाड़ा। ब्रह्मचारियों से रहित छात्रालय छात्रालय नहीं कहा जा सकता। ब्रह्मचर्य ही छात्रालय का प्राण है किन्तु आज कल यह भी दूषित वायु मण्डल से अछूता नही बचा है। जिसके अनेक कारण हैं। आज कल के माता पिता भी अज्ञान वश इतने मोहान्ध होगये हैं कि सदाचारी बालकों को तो छात्रालय में भेजते ही नहीं हैं। वे तो उन बालको को छात्रालय में प्रविष्ट कराना अत्युत्तम समझते हैं जो किसी न किसी दूषण से अवश्य ग्रसित हो। वे दुराचारी बालक स्वयं तो मुश्किल से सुधरते ही है किन्तु अपने दुर्गुणों का प्रभाव अन्य छात्रों पर भी डालते हैं और अवश्य ही रात दिन की संगति के कारण अन्य बालक भी उन दुराचारी बालकों के समान बन जाते हैं। जैसे सड़े (लगे) हुए एक पान की संगति से दूसरे सभी पान सड़े बगैर नहीं रह सकते। ठीक इसी प्रकार दुष्ट छात्र की संगति से भले छात्र दूषित हुए बगैर नहीं रह सकते।

किसी तरह से छात्रालय के गृहपति एवं संचालक को पता चल जावे कि अमुक बालक आचरणभ्रष्ट है और वे उस बालक को संस्था से पृथक् करना चाहें तो उस लड़के का पिता धमकी देता है और कहता है कि आप तो अमुक पक्ष के लड़के को ही स्थान देते हो, हमारे लड़के को क्यों रखोगे। इस

लिए अब हम छात्रालय की सहायता नहीं करेंगे। इसी से संचालक एवं गृहपति अपने कर्तव्य पथ से विचलित होकर नियमों का भंग कर देते हैं और उसे गुरुकुल में रहने देते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि यह गुरुकुल जनता की सम्पत्ति है, समाज का इस पर अधिकार है। समाज के ही धन से छात्रालय चल रहा है। यदि अमुक पिता छात्रालय के विरुद्ध खड़ा होगया तो यह छात्रालय रूपी वृक्ष और धन रूपी जल के पाए सूख जायगा। क्योंकि उसकी जड़ें तो मज़बूत होती नहीं है। यही कारण है कि दूसरों का मुँह ताकना पड़ता है। अब रहा प्रश्न यह कि जनता उसके बहकावे में क्यों आजाती है। इसका उत्तर यह है कि आज कल के लोग अपने झगड़े को समाज में डाल देते हैं और समाज को इतना अवकाश कहाँ कि सत्यासत्य का निर्णय करे। कहा भी है 'तथ्यो अतथ्यो वा महिमा हरति जनरवः' समाज तो उसके वचनों को ब्रह्म वाक्य समझ लेता है और उसके बहकावे में आकर छात्रालय को क्षति पहुँचाने में कोई कसर उठा नहीं रखता। यही कारण है कि छात्रालय भी इस रोग से अछूते नहीं बचे हैं। यह लिखे बगैर नहीं रहा जा सकता कि समाज अपना हिताहित सोचे बिना ही एक लड़के के लिए दूसरों का भी बुरा करता है। यह उचित नहीं है।

समाज का कर्त्तव्य है कि ऐसे अवसर पर छात्रालय का पक्ष ले और सड़े हुए पान की भाँति उस आचरण भ्रष्ट बालक को संस्था से पृथक् कर दूसरे बालकों का उपकार करे और ऐसे दुराचारी बालकों के सुधार के लिये अन्य साधन सोचे।

(३) माता पिता—सन्तान का बिगड़ना एवं सुधरना अधिकांश में माता पिता के प्रयत्न पर निर्भर है। आज कल के माता पिता भी सन्तान के आचरण की अवमानना करते हैं। ब्रह्मचर्य व्रत के खण्डन का भी गणेश यहीं से होता है। रात्रि के समय वे बच्चे को पास में सुलाते हैं और सोचते हैं यह तो अभी अज्ञान है और अब इसे निद्रा ने घेर लिया होगा। उसकी उपस्थिति में वे अमर्यादित और स्वच्छन्द जीवन विताते हैं। बालक चाहे निद्रित हो या जागृत परन्तु समीपवर्ती शुभाशुभ वातावरण और क्रिया का प्रभाव उसके मन पर गुप्त रूप से पड़े बिना नहीं रह सकता। जब बच्चा गलियों में खेलने जाता है तब भी वे उनका ख्याल नहीं रखते। बालक और बालिका वहाँ पति पत्नी का खेल खेलते हैं जिससे ब्रह्मचर्य खण्डित हुए बिना नहीं रह सकता।

उपर्युक्त दोनों निर्दिष्ट कारण तो ऐसे हैं जो उपेक्षा भाव से होते हैं। किन्तु तीसरा कारण तो सुनिये। वे जान बूझ कर सोचते समझते हुए अपने हाथों से ही उन्हें कूए में धकेल देते हैं। अखिल भारत वर्ष में और विशेष कर राजस्थान में, मोहान्ध माता पिता जो अपनी पुत्रवधू को जल्दी देखने के इच्छुक हैं असामयिक अवस्था में ही अपनी सन्तति का पाणिग्रहण कर देते हैं। 'अकाले कुसुमानीव' की भाँति जिसका परिणाम बुरा होता है। कच्चे फल को तोड़ कर खाने से न तो खाने वाले को मज़ा आता है और न किसी तरह से लाभदायक होता है। उसका तो जन्म लेना या न लेना एकसा हो जाता है। विवाह हो जाने के बाद नव दम्पति अपरिपक्व अवस्था में ही भोग

करते हैं जिससे हानि के सिवाय लाभ की तनिक भी संभावना नहीं है क्योंकि उस समय वीर्य भी तो कच्चा होता है। इसमें संतानोत्पत्ति का होना असंभव नही वरन् महाकठिन अवश्य है। यदि सन्तान होवे भी तो केवल रोगी, निरुत्साही और दुर्बल। नव दम्पति तो अपने जीवन से हाथ धो बैठते हैं। वे धर्मार्थ काम मोक्ष में से एक को भी प्राप्त नहीं कर सकते। समय बीत जाने पर वे वीर्य रक्षा करने एवं सुधारने के लिए लाखों कोशिशें करते हैं किन्तु फिर क्या हो सकता है। क्या इस भाँति का बिगड़ा भी सुधर सकता है? कदापि नहीं। जैसे रहीम ने कहा है, "रहिमन बिगड़े दूध को मथे न माखन होय"। प्राचीन समय के अनुसार तो २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना चाहिये। तत्पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना श्रेयस्कर है। मगर अभी का जमाना देखते हुए बालक का विवाह १८ वर्ष की अवस्था में तथा कन्या का विवाह भी उपयुक्त अवस्था में रजस्वला होने की सम्भावना के पूर्व किया जाय तो कहीं लाभ कर सिद्ध हो।

(उ) अन्य-आज कल तेरह वर्ष की अवस्था वाले या तेरह वर्ष से भी कम अवस्था वाले बालकों में कोई न कोई बुरी आदत प्रायः पाई जाती है। अनेक चञ्चल और स्वमान प्रिय बालकों में जो एकान्त प्रिय होते हैं, हस्त दोष की टेव पाई जाती है।

हस्त दोष—जब बालक किसी न किसी भारी चिन्ता समुद्र में मग्न होजाते है जिससे उनका मस्तिष्क असह्य भाराक्रान्त होजाता है। तब वे चिन्ता और भार के निवारणार्थ कुतूहल वश हस्तदोष का उपयोग करते हैं। इससे एक क्षण भर के लिए

के अशान्त मन को घातक शान्ति प्राप्त होजाती है जिस का

परिणाम भयंकर होता है। वे अशक्त होजाते हैं। आलसी, निकम्मे और एकान्तप्रिय बालकों के हृदय में बुरे विचार और चिन्ताएं उत्पन्न होती हैं जिससे वे अमूल्य वीर्य का नाश करने में किंचिन्मात्र भी नहीं हिचकिचाते हैं। अधिक मिर्चों, चटनी, चाय-काफ़ी, तम्बाकू और शराब आदि उत्तेजक पदार्थ बालकों को किसी न किसी बुरे दोष की तरफ़ अवश्य घसीट ले जाते हैं।

सृष्टि विरुद्ध मैथुन—रूपवान्, सुन्दर वस्त्रधारी और केशों से अलंकृत बालकों के प्रति दूसरों का दिल आकर्षित हो जाता है; जिससे दोनों में वासनामयी मित्रता होती है। पाठाभ्यास में मदद देने का व्यवहार शुरू हो जाता है। प्रायः प्रत्येक कार्य दोनों साथ में ही करते हुए दृष्टि-गोचर होते हैं। एकान्त में बैठ कर प्रेम पूर्वक वार्तालाप और हास्य विनोद करते हैं। वहाँ परस्पर अंग स्पर्श से बिजली का सा असर होता है इसी स्नेह रस मे लिप्त हुए प्रसंग प्रसंग पर बारम्बार मिलने का बहाना ढूँढ़ते रहते हैं। विकास करते करते चुम्बन आलिंगन का भी दुर्व्यवहार होने लगता है। तत्पश्चात् क्रमशः चढ़ते चढ़ते अन्तिम पद (पैढ़ी) पर पहुंच जाते हैं अर्थात् सृष्टि विरुद्ध मैथुन भी होने लगता है। इसका चस्का बहुत बुरा होता है। परिणाम भयंकर होता है, नामर्द तक हो जाने की सम्भावना है। छात्रालय में गृहपति और घर पर माता पिता विशेष रूप से ध्यान रक्खें तो बालक इस दोष से बच सकते हैं।

स्वप्न दोषः—उपर्युक्त दोनों बुरी आदतों से ही स्वप्न दोष की भी टेव पड़ जाती है। गंदी पुस्तकें पढ़ने से तथा बुरे विचा

को हृदय में स्थान देने से स्वप्न दोष होने लगता है। अजीर्ण के कारण तथा परीक्षा के समय अतिशय चिन्ता से भी स्वप्न दोष शुरू हो जाता है। स्वप्न दोष संबन्धी चिन्ता करने से यह रोग घटने के बजाय बढ़ता ही रहता है। सौ बात की एक बात यही है कि वीर्य की एक बूंद भी किसी प्रकार से व्यर्थ खोना केवल बालक के लिए ही नहीं किन्तु जनमात्र के लिए हानि कारक है।

ब्रह्मचर्य साधने के अमोघ उपाय

(१) इंद्रिय निग्रहः—ब्रह्मचर्य की सिद्धि के लिए इन्द्रियों को अपने आधीन करना परमावश्यक है। शरीर रूपी हौज में वीर्य रूपी जल भरा हुआ है। इन्द्रिय रूपी छिद्रों द्वारा वीर्य रूपी जल के बाहिर निकल जाने की संभावना है। एतदर्थ इन्द्रिय संयम आवश्यक है।

देखने का कार्य आँखें करती हैं। जैसा देखा जाता है वैसा ही प्रतिबिम्ब हृदय पट पर अङ्कित हो जाता है। एतदर्थ विकारोत्पादक सिनेमा ड्रामा आदि न देख कर सृष्टि की नैसर्गिक सुन्दरता का ही अवलोकन करना चाहिये। गन्ध नाक द्वारा ली जाती है। बुरे और उत्तेजक पदार्थों की गन्ध ही न लेनी चाहिये। जिन वस्तुओं से दिल में विकार पैदा न हो उनकी ही सुगन्ध लेना उचित है। शब्द ग्रहण कान द्वारा होता है। हरिण आदि द्रुतगामी पशु भी वीणा आदि की मधुर ध्वनि से मोहित होकर अपने प्राण खो बैठते हैं। इश्क तथा शृंगार रस के गायन आदि से कोसों दूर ही रहना चाहिये। भक्ति एवं वैराग्य रस के तथा औपदेशिक भजन कर्ण-गोचर करने से बहुत लाभ होने की संभावना रस का मज़ा जिह्वा ही लूटती है। कहा है:-'रसमूलानिव्याधय' तेज मिर्चें, खट्टे पदार्थ और

तेल आदि वर्जित पदार्थ जिन से वीर्य नाश की सम्भावना है और जो तामसिक हैं नहीं खाने चाहिये। जिन से सात्विक वृत्ति बनी रहे वे ही पदार्थ भोजनार्थ ग्रहण करने चाहिये। फलाहार तथा दुग्ध पान करना उचित है। बिना स्वाद को जीते ब्रह्मचर्य पालने की डींग मारना व्यर्थ है। जिह्वा के गुलाम होना वीर्यनाश को न्यौता देना । जगत् पूज्य महात्मा गाँधी का निजी अनुभव है कि जो व्यक्ति जिह्वा के स्वाद के वश में है वह ब्रह्मचय साधने के सर्वथा अयोग्य है। गाँधीजी का यह गम्भीर अनुभव गांठ बांधने की वस्तु है। स्पर्शेन्द्रिय त्वचा है। स्पर्श से शरीर में बिजली का सा झटका पहुँचता है। स्पर्श सुख का अनुभव होने से बड़े बड़े ऋषि मुनि भी विचलित होगये हैं। पर-स्त्री अथवा पर-पुरुष स्पर्श तो सर्वथा निषेध है।

(२) मातृ भाव की दृष्टि—स्व स्त्री के अतिरिक्त अन्य प्रत्येक स्त्री पर पवित्र दृष्टि ही रखना उचित अल्पायु वाली को पुत्री तुल्य, समान अवस्था वाली को भगिनी तुल्य और विशिष्ट वयवाली को माता के सदृश ही देखें। इसी तरह स्त्रियों को भी छोटी उम्र वालों पर तथा बड़ी उम्र वाले पुरुषों पर क्रमशः पुत्र-भाव, भ्रातृ-भाव और पितृ-भाव की दृष्टि धारण करनी चाहिये। इस तरह पवित्र दृष्टि होने से शुद्ध वायुमण्डल हो सकता है और आचार विचार भी पवित्र बन सकते हैं।

(३) सादी रहन सहन और उच्च विचार—स्वच्छ गाढ़े और पवित्र कपड़ों को ही पहिनना उचित है। चटकीले और मुलायम वस्त्रों का तो बहिष्कार ही श्रेयस्कर है। भोजन भी

दाल, रोटी, दूध, शाक, फल आदि सात्विक ही करना चाहिए। विशेष रूप से मिष्टान्न तथा चर्के पदार्थ त्याज्य हैं। विचारों को उच्च रखना चाहिये। लक्ष्य बिन्दु तुच्छ नहीं होना चाहिये। विचारों को उच्च रखे बिना मनुष्य अपनी उन्नति कदापि नहीं कर सकता। जीवन का उद्देश्य निश्चित हो और सब प्रवृत्ति उसके साधनार्थ ही हो।

(४) सत्संगति और पवित्र ग्रन्थ पठन— जन मात्र का बिगड़ना एवं सुधरना संगति पर निर्भर है। अनेक उदाहरण प्रसिद्ध हैं कि कुसंगति के कारण बड़े बड़े पुरुष भी ब्रह्मचर्य व्रत को त्याग कर नष्ट भ्रष्ट हो चुके हैं और सत्संगति के कारण नीचों का भी उद्धार होगया है। संगति ऐसे मित्रों की करनी चाहिये जैसे तुलसीदासजी ने बतलाये हैं। "कुपथ निवारि सुपन्थ चलावा। गुण प्रगटे औगुण ही दुरावा"॥ ब्रह्मचर्यव्रत को पालन करने के लिये सुसंगति आवश्यक ही नहीं वरन अनिवार्य है क्योंकि कुत्सित मित्रों की कुसंगति से ब्रह्मचर्य व्रत खण्डित हुए बिना नहीं रह सकता। धार्मिक एवं पवित्र तथा शिक्षाप्रद ग्रन्थ पढ़ने से ही सद्विचारों की जागृति होती है। स्नान करने के पश्चात् नित्य प्रति धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय उचित है। आज कल उन उपन्यासों का प्रचार विशेष रूप से है, जो सत् विचारों को परिवर्तित कर देते हैं। केवल उपन्यास ही नहीं किन्तु प्रत्येक दुर्विचारोत्पादक ग्रन्थ न पढ़ना ही लाभप्रद है।

(५) जल्दी सोना और जल्दी उठना— जल्दी ६॥ बजे के करीब सोना और जल्दी उठना सौभाग्य के चिह्न हैं। नाटक सिनेमा तथा व्यर्थ वार्तालाप में काल का अपव्यय कर विलम्ब से निद्रा देवी की शरण लेना बुरा है। सोने का स्थान स्वच्छ, शुद्ध हवासे युक्त और प्रकाशमय होना चाहिए। बिछौना [illegible] न हो, सख्त बिछौने पर सोने से तथा प्रातः कालमें

जल्दी ४॥ बजे के करीब जागृत होजाने से स्वप्न दोष भी नहीं होता। जवानों को रात्रि में सात घण्टे से अधिक नींद नहीं लेनी चाहिए। दिन में सोना तो बुरा है। सोने के पहले शुद्ध विचार करना अच्छा है।

(६) एकान्त त्याग और शुद्ध वायुसेवन— जो वीर्य दोष से दुःखी हैं, उन्हें एकान्त त्याग करना ही अच्छा है। उन्हें अच्छे पुरुषों के सहवास की परमावश्यकता है। प्रातः काल तथा संध्या समय शुद्ध वायु सेवनार्थ गाँव या कसबे या शहर के बाहर खुले मैदान में जाने से अनेक लाभ होते हैं। शुद्ध वायु आरोग्यकारी होती है। वायु पञ्चामृत में से एक है। शुद्ध वायु, शुद्ध जल, शुद्ध भूमि, विपुल प्रकाश और विपुल आकाश ये पञ्चामृत हैं।

(७) प्राणायाम व्यायाम— सिद्धासन लगा कर प्राणायाम करने से वीर्य सख्त होजाता है। और वीर्य दोष बन्द होजाते हैं। मन स्थिर और शान्त होता है और मन में कुविचार नहीं आते। वीर्यरक्षा के लिए प्राणायाम अत्यन्त उपयोगी है। योग्य और नियम पूर्वक अभ्यास से स्वप्न दोष आदि सब तरह के दोष दूर होजाते हैं। व्यायाम करने से सब मल दूर होते हैं। रक्त निर्दोष होता है। रुधिराभिसरण होने से शरीर के सब अवयव सुडौल तथा हृष्ट पुष्ट बन जाते हैं। तैरना, खेलना तथा अन्य व्यायाम करना ब्रह्मचर्य के लिए आवश्यक है। व्यायाम करने से शरीर में वीर्य स्थिर होजाता है। इस लिए ब्रह्मचर्य धारण करने वाला पुरुष नियमित रूपसे व्यायाम करे। व्यायाम करते समय नाक से श्वास लेना चाहिये।

ब्रह्मचर्य को पालो मित्रों ये ही दवा अनूठी है।
मुर्दे को जिन्दा करने की यही संजीवनी बूँटी है॥

स्थाई ग्राहकों की पूरे पते सहित नामावली

ट्रैक्ट न. १९ के आगे—४३१ किस्तूरचन्दजी पेमचंदजी कपड़े के व्यापारी वाली मारवाड, ४३२ नारायणदासजी अग्रवाल किराने के व्योपारी वाली मारवाड़, ४३३ मूलचंदजी, हजारीमलजी अमीचंदजी कपड़े के व्योपारी मझगांव, ट्राम टर्मीनस बम्बई (१०), ४३४ मंगलचन्दजी गर्तांडय अध्यापक सीसरवादा सोजत रोड, ४३५ कुन्दनमलजी बालचन्दजी ननके पाटी सादड़ी मारवाड़, ४३६ दुर्गाशंकरजी कृष्णलालजी वैद्य माणसावाव शिवगन्ज एरिनपुरा, ४३७ एक गुप्त दानी की ओर से भेंट श्री रामकृष्ण गोपाल प्राणी सेवा समिति शिवगन्ज, ४३८ फौजमलजी बालाजी की ओर से शिवगन्ज गुरुकुल को भेंट, ४३९ सुखराजजी जीवाजी तोखी विशनगढ़-(जालोर) ४४० मदनराजजी सुखराजजी आउवा ४४१ मुलचन्दजी जीवराजजी आउवा ४४२ भींवराजजी केसाजी सायला जालोर ४४३ कुन्दनमलजी कपूरजी आहोर ४४४ दलोचन्दजी जीवराजजी मूथा आउवा ४४५ धनरूपमलजी अचलदासजी आउवा ४४६ सुमेरमलजी B. A.L.L.B. वकील देसूरी ४४७ मन्त्री खर्त्तरगच्छ जैन लाइब्रेरी, कानमलजी मोहनराजजी रानी

(आगे इक्कीसवें ट्रैक्ट मे देखिये)

सूची—१ शिक्षित बेकार क्या करें ? २ ग्राम सुधार कैसे हो ? ३ मृत्यु भोज कैसे रुके ? ४ स्त्रियों के कार्यक्षेत्र क्या हो ? ५ आदर्श दिनचर्या क्या हो ? ६ वृद्ध विवाह कैसे रुके ? ७ कब तक चूसते रहेंगे ? ८ हाय ! मेरी शादी क्यों हुई ? ९ जीवन प्रभावशाली कैसे बने ? १० उन्नति का मूल मन्त्र क्या है ? ११ अंग्रेज़ों से क्या सीखें ? १२ पर्दा क्यों ? १३ सत्यानाश कैसे हुआ ? १४ हारमोनियम बजाना कैसे सीखें ? १५ दुकानदारी कैसे सफल हो ? १६ फिर अछूत क्यों ? १७ समाज सुधार कैसे हो ? १८ ऋण मुक्त कैसे हो ? १९ बच्चों को कैसे सुधारें ? प्रत्येक का मूल्य तीन पैसे।

मंगाने का पता—ज्ञान भण्डार, जोधपुर।

हिन्दी की सब से सस्ती ट्रैक्ट माला

ज्ञानमाला

सफलता कैसे प्राप्त हो ?

निबन्ध लेखक—

श्रीनाथ मोदी 'विशारद'

इन्सट्रक्टर

गवर्नमेण्ट टीचर्स ट्रेनिङ्ग स्कूल

जोधपुर (राजपूताना)

प्रकाशक—

धीरजमल बच्छावत,

ज्ञान भण्डार, जोधपुर

मुद्रकः—कुँवर मग्दारमल थानवी

श्री सुमेर प्रिंटिंग प्रेस जोधपुर

एप्रिल १९३७ | तीन पैसे

स्थाई ग्राहकों की पूरे पते सहित ना

ट्रैक्ट नं. २० से आगे—४४८ चम्पालालजी B. A. ... वेमूरी ४४६ छगनलालजी राणा हेडमास्टर जोधर ... वाली (मारवाड़) ४५० संतोषचन्दजी B. Sc. ... धनरूपचन्दजी, गोडीदासजी हुक्मचंदजी गोडीजीकी पाल ... ४५२ एम० एफ० सिंघी, रोहिड़ा वालों का वास शिवगंज ४५३ के० पी० सिंघी, रोहिड़ा वालों का वास शिवगंज ... भगाजी, नई धर्मशाला के पास शिवगञ्ज ४५५ डा० ... नवसारी वाडी शिवगञ्ज ४५६ सुन्दरमलजी गेमावत की ओर से शिवगंज को भेंट ४५७ एम० एन० पोरवाल एण्ड कम्पनी ... शिवगञ्ज ४५८ पीरचंदजी हेमचंदजी रोहिड़ावाला किराना ... शिवगञ्ज ४५९ चिमनमलजी गेमावत शिवगञ्ज ४६० ... बीचा शिवगञ्ज ४६१ देवकीनन्दनजी अध्यापक दरबार मिडिल स्कूल ... ४६२ छोगसिंहजी अध्यापक दरबार स्कूल पचपदरा ... हेड मास्टरजी उम्मेद स्कूल जोधपुर (आगे बाइसवें ट्रैक्ट में ...

सूची—१ शिक्षित बेकार क्या करें ? २ ग्राम सुधार ... ३ मृत्यु भोज कैसे रुके ? ४ स्त्रियों के कार्यक्षेत्र ... ५ आदर्श दिनचर्या क्या हो ? ६ वृद्ध विवाह कैसे रुकें ? ... तक चूसते रहेंगे ? ८ हाय ! मेरी शादी क्यों हुई ? ९ ... प्रभावशाली कैसे बने ? १० उन्नति का मूल मन्त्र ... ११ अंग्रेजों से क्या सीखें ? १२ पर्दा क्यों ? १३ ... हुआ ? १४ हारमोनियम बजाना कैसे सीखें ? १५ ... कैसे सफल हो ? १६ फिर अछूत क्यों ? १७ समाज सुधार ... हो ? १८ ऋण मुक्त कैसे हो ? १९ बच्चों को कैसे सुधारें ? २० ब्रह्मचर्य कैसे सधे ? हरेक का मूल्य तीन पैसे।

मंगाने का पता—ज्ञान भण्डार, जोध...

सफलता कैसे प्राप्त हो ?

जीने को तो कीड़े मकोड़े भी जीते है। कुत्ते और शूकर भी अपना पेट भर लेते हैं। पर जीना और कमाना उसी का सफल है जो पराये काम आवे। जिसे संसार को सुखी बनाने की धुन हो। जो उचित और अनुचित का विवेक रखता हो। यही व्यक्ति अपने कुल का दीपक, अपने समाज का स्तम्भ और अपने राष्ट्र का कर्णधार बन सकता है जो स्वस्थ, उच्च हृदय और नागरिकता के उत्तम गुणों से विभूषित हो। जो सबल व्यक्तित्व रखता हो। जिसे कठिनाइयों मे भी आनन्द का अनुभव होता हो। जो काम पड़ने पर सर कटाने मे भी सौभाग्य समझता हो। पर ऐसे पुरुष विरले ही होते हैं। गली गली मे हीरे नहीं मिलते, हाँ कङ्कर बहुतायत से मिलेंगे।

ऐसे सफल आदर्श व्यक्ति वास्तव में सच्चे कर्म-योगी होते हैं। वे आलस्य से कोसों दूर भागते हैं। उत्तम गुणों को अपनाते हैं और परिश्रम पूर्वक अभ्यास करके अच्छी आदतें बनाते हैं। कष्ट सहिष्णु होकर भयानक परिस्थिति मे भी अपने चित्त को दृढ़, विचार को उच्च और कार्य को उत्साह पूर्वक जारी रखते हैं। वे परम् विश्वास पात्र होते हैं। स्वप्न में भी विश्वासघात नहीं करते। बड़ों की उचित आज्ञाओं का रुचिपूर्वक पालन करते है भूल कर भी अवज्ञा नहीं करते। उनका निर्णय निष्पक्ष और खरा होता है पक्षपात की आंख से वे नही देखते। वे समय

पर नियमित काम कर पल भर की भी अकारण देरी नहीं करते। निज की सूझ से काम कर लेते हैं, पराए भरोसे बैठे व्यर्थ समय नहीं गुज़ारते। उनके व्यक्तिगत स्वभाव पवित्र और अनुकरणीय होते हैं, अशिष्टता की मात्रा उनमें तनिक भी नहीं होती। उद्यम के वे पुतले होते हैं, प्रमाद उनके पास नहीं फट-कता। समाज के वे सहयोगी और अगुआ होते हैं, समाज को कदापि भुलावा नहीं देते। आत्म संयम के दृढ़ अभ्यासी होते हैं, अपना आपा कभी नहीं भूलते। मितव्यय के आदी होते हैं; द्रव्य, समय और शक्ति को व्यर्थ बरबाद नहीं करते हैं।

प्रत्येक पाठक स्वभावतः ऐसा आदर्श नागरिक बनने को लालायित होगा परन्तु मात्र चाहने से कुछ नहीं होता। प्राप्ति के लिये प्रयत्न की आवश्यकता है। सफलता प्राप्त करने के लिये अच्छे गुणों को प्राप्त करना अनिवार्य है। जिन महा पुरुषों ने सफलता प्राप्त की है उनके जीवन चरित्रों के मनन से हम सहज ही में उस पथ के अनुगामी बन सकते हैं। परन्तु इतनी जीव-नियों को पढ़ने से आपको सफलता के मूल तत्व एक तरह के ही मिलेंगे अतः पाठकों की सुविधा के लिये मैं सब जीवनियों का सार इस ट्रैक्ट में लिखना चाहता हूँ। जो इन गुणों को अपना-यँगे वे अवश्य कृत कृत्य होंगे।

[१] विश्वासपात्रता

संसार के व्यवहार का आधार विश्वास है। विश्वास के बिना व्यापार, शासन और अन्य महत्वपूर्ण काम एक मिनट भी नहीं चल सकते। अतः सफलता प्राप्ति बिना विश्वासपात्र बने

कठिन ही नहीं असम्भव है। योरप और अमेरिका का व्यवसाय विश्वास के बूते पर ही पनपा है। बालचरों की संस्था के कार्य व लाभ तो आज सारा संसार जानता है। उनकी भी पहली प्रतिज्ञा है 'स्काउट विश्वास पात्र होना है'। वही व्यक्ति विश्वास पात्र हो सकता है जो सत्य कहे, कहने के अनुसार ही काम करे, अपने वादे अथवा वचन को निभावे और गोपनीय वार्ता को पेट में पचा सके। उदाहरण के लिये डाक और तार का प्रबन्ध ही लीजिये। यदि कर्मचारी विश्वासपूर्वक काम न करें तो राष्ट्र का तख्ता पलट जाय।

विश्वसनीय व्यक्ति लोगों की अनुपस्थिति में भी ठीक उसी ढंग से काम करेगा जैसा कि वह सब के समक्ष करता है। वह अपने उत्तरदायित्व के महत्व को समझता है और उसे उत्तम तरीके से निभाता है। विश्वसनीय नौकर की ही पहले पूछ होती है और तरक्की उसे ही शीघ्र मिलती है। विश्वसनीय दुकान पर ही ग्राहकों की अधिक भीड़ रहती है। अतः सफलता प्राप्त तभी हो सकती है जब विश्वसनीय बनने की योग्यता हो। विश्वासघाती व्यक्ति कानी कौड़ी के मोल का भी नहीं। वह निश्चय रूप से असफलता के गहरे गढ्ढे में गिर कर अपने अस्तित्व को खोदेता है। जिन देशों के व्यवसाय नहीं पनपते, उसका प्रधान कारण है विश्वासघातकता। सफल बनने के लिये प्रतीति योग्य बनो; सच्चाईपूर्वक ही विचार, कथन और कार्य करो। अतिशयोक्ति न करो। अनुचित सहायता न तो लेने आकांक्षा रखो न देने की उदारता दिखाओ। दूसरे के

को छीनने का घृणित कार्य न करो। अनुचित काम करने में किसी से भी प्रभावित न हो और जहां 'नहीं' कहने की आवश्यकता हो दृढ़ता पूर्वक कहो "मैं यह भेद नहीं बता सकता।" सच्चाई पर साहस पूर्वक दृढ़ रहो।

[२] आज्ञापालन

घर, मुहल्ले, समाज, सभा, राज्य, देश और प्रकृति के नियमों का पूरी तरह पालन करने से ही मानव समाज की व्यवस्था क़ायम रह सकती है। वयोवृद्ध, अनुभवी और भुक्तभोगी जो आदेश करें विनय पूर्वक पालन कर लाभ उठाओ। अपनी योग्यता के थोथे अभिमान में मस्त रह कर उनके अनुभवों से लाभ उठाने में वंचित न रहो। प्रकृति की अवहेलना न करो। नींद आवे तो सो जावो, चाय पी पी कर रातें मत भांको। हाजत होती हो तो निवट लो आलस्य से रोग न बढ़ाओ। जो उचित प्रार्थनाओं की अवज्ञा करता है उसे महा मूर्ख समझिये। उनको सुनो और शीघ्रता, प्रसन्नता और उत्तमता से यथासाध्य पूरा करो। दूसरों की उचित आज्ञा मान कर अपने अनुचरों और बच्चों के सामने आदर्श नमूना रखो।

ख्याल करिये यदि एक सिपाही कप्तान की आज्ञा को सुन कर पालन करने के बदले आना कानी करे तो सेना का अस्तित्व ही मिट जाय। नेता की आज्ञा पालन करने का जो महत्व है उसका मूल्य नहीं आंका जा सकता। जो बहुमत से स्वीकृत नियमों की अवहेलना करता है वह बागी और असभ्य समझा

प्रवल होंगी वे गाना, तैरना या वायु सेवन आदि का काम चुनेंगे अन्यथा नशेवाजी, गप्प शप्प, निन्दा और आलस्य ही में वहु मूल्य समय नष्ट हो जायगा। निर्णय के अभाव में परोपकार तो दूर रहा निजकी भलाई भी नहीं वन पड़ती। पुस्तकों, खेलों और फिल्मों के चुनाव में सुनिर्णय नहीं होने से पतन के द्वार खुल जाते हैं। कितना सोना, क्या खाना और क्या खरीदना ये रात दिन के ऐसे काम हैं जिनमें निर्णय करने की अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है।

जो आदमी अच्छा निर्णय कर सकता है वही नेता वन सकता है। जिनका निर्णय अधूरा होता है वे आकस्मिक दुर्घटनाओं और ख़तरे के समय में विशेष घवड़ा जाते हैं। अतः निर्णय शक्ति के विकास की ओर ध्यान देने की वहुत ज़रूरत है। जीवन में पद पद पर चुनाव करने की आवश्यकता पड़ती है यदि निर्णय शक्ति निर्वल हुई तो दर दर ठोकरें खानी पड़ेंगी। लोगों के सामने उन्हें हास्यास्पद वनना पड़ेगा और वे किसी को सलाह देने के काम के एक दम अयोग्य होंगे। अन्य गुणों को अपनाने की ओर तो आम लोगों का ध्यान है परन्तु निर्णय शक्ति के विकास की ओर कत्तई ध्यान नहीं। जिन लोगों को महत्व और उत्तरदायित्वपूर्ण काम करने पड़ते हैं उन्हें इस शक्ति को विकसित किये विना सफलता नहीं मिल सकती। सबसे अधिक महत्वपूर्ण निर्णय है धन्धे का चुनाव। इस निर्णय पर सफलता का अधिकांश भाग निर्भर रहता है।

[४] समय पालन

जगत् मे यदि कोई चीज़ अपेक्षाकृत थोड़ी हिस्से मे आई है तो वह समय है और उसी का सब से अधिक दुरुपयोग होता है। समय की पाबन्दी के बिना समय का नाश होता है। निश्चित समय के पहले या देर में पहुँचना परम भूल है। समय की पाबन्दी न होने से समय पर काम आरम्भ ही नहीं होता। फिर उसका पूरा होना तो और भी कठिन हो जाता है। जो समय काम के लिये नियुक्त किया हो उसी समय काम आरम्भ करना चाहिये और काम की सामग्री को इस तरकीब से जमा कर रखना चाहिये कि उसके तलाश करने मे समय की हत्या न हो। सामग्री के लिये स्थान नियुक्त होने से लेने और देने में समय की बचत होती है।

जब किसी को मिलने का समय देदिया जाय तो अवश्यमेव उस समय मिलना चाहिये। अन्यथा प्रतीक्षा में सब का समय नष्ट होता है और वायदा करने वाला झूठा सिद्ध होता है। सिवाय बीमारी के कारण के कभी ऐसा अवसर नहीं आना चाहिये कि समय पर न पहुँचने को क्षमा मांगनी पड़े। जब काम से छुट्टी मिले तो सीधा घर पहुँचना चाहिये। बहुधा लोग काम से लौटते हुए बहुत अधिक समय व्यर्थ ही खर्च करदेते हैं। जब एक बार किसी का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया जाय तो निश्चित समय पर पहुंच जाना चाहिये। दुबारा बुलाने की राह देखना समय के मोल का घात करना है। जो सज्जन समय के महत्व से परिचित हैं कभी किसी को प्रतीक्षा मे नहीं रखते।

यदि समय की पाबन्दी न हो तो डाक, तार, और रेल वगैरह के काम किस प्रकार चलें। व्यवस्था के लिये समय का नियन्त्रण अनिवार्य होता है अतः समय की सम्भाल पूर्वक परवाह करनी चाहिये और समय पर काम आरम्भ न करने की बुरी आदत से बचना चाहिये टालमटूल करने की टेव महा घातक है। जीवन थोड़ा और काम अधिक है। इस बात को ध्यान में रख कर एक एक क्षण को भी काम में लाना चाहिये। समय की पाबन्दी बिना कोई भी काम पूरा नहीं हो सकता और अधूरे काम से सफलता का सम्बन्ध हो क्या ? यदि किसी कारणवश मुकर्रिर किये हुए समय में तबदीली करनी पड़े तो उसकी खबर संबंधित व्यक्तियों को ज़रूर भेजदेनी चाहिये। इस नियम को इस हदतक पालन करने की आदत डालनी चाहिये कि अगर आप अपने कार्यालय से किसी दिन वापिस घर पर नियमित समय पर न पहुंच सके तो इसकी खबर घरवालों को कर देनी चाहिये।

हमारा बहुमूल्य समय प्रतीक्षा में ही चला जाता है इसलिए प्रत्येक काम ठीक समय पर आरम्भ करदेने की टेव डालनी चाहिये तभी जाकर जीवन के समस्त कामों का इच्छानुसार सम्पादन हो सकता है। समय के उपयोग को सीखे बिना सफलता की आशा करना बालू में से तेल निकालना है।

[५] आत्म प्रेरणा

दूसरों के हाथों की कठपुतली बनकर किसीने आज तक काम नहीं साधा। खुद के आपे पर ही हर काम को उठाना चाहिये पराये भरोसे रहने वाले पछताते ही हैं। निज की सूझ

से काम करना चाहिये तभी प्रतिभा प्रस्फुटित होती है। यदि जिज्ञासा उत्पन्न हो तो अधिकारी व्यक्तियों से प्रश्न पूछने मे हिचकिचाहट नही करनी चाहिये। काम को आरम्भ करने के पहले ही आने वाली सम्भव बाधाओ के निराकरण का प्रबन्ध सोच रखना चाहिये। और जो जो हिदायतें या परामर्श देना हो वह अपने आप पहले दे दिया जाय ताकि बीच में काम न रुक सके दूरदर्शिता से काम आरम्भ करो, तन्मयता से उसमें लगे रहो और दृढ़ता से उसे पूरा करके ही विश्राम की सुखमई सांस लो। अपने धन्धे के सम्बन्धमें जो नये, नये आविष्कार हों, नये नये लेख प्रकाशित हों या नवीन घटनाए घटें; उनपर चौकन्नी दृष्टि रखो। और जब अवकाश हो तो अपने हमजोलियों को मनोविनोद के काम में लगा कर उत्साह पूर्वक नेतृत्व करो। स्वयं करो करके दिखाओ।

जो काम उपयोगी हों और उनको करने का अवसर सामने आवे तो बिना किसी के सुझाये स्वयं उन्हे करने में लग जाओ। औसत व्यक्ति से अधिक काम करो और आवश्यकता से कुछ अधिक ही करो ताकि कभी घाटेमे न रहो। उपयुक्त अवसर पर बिना बताए ही उचित काम करने में लग जाने से आत्मजागृति वृद्धिगत होती है और स्वावलंबन का व्यवहारिक सबक मिलता है। सभा में आत्मविश्वास पूर्वक सभ्य वाणी मे बोलने का अभ्यास करो ताकि झिझक दूर हो और हौसला बढ़े।

जो काम आप स्वयं कर सकते हो उसको करने के लिये अपने पूज्य आत्मीयों को कष्ट क्यों दिया जाय। यदि आपको

विश्वास हो कि आप अमुक काम अच्छी तरह कर सकेंगे तो उसको शीघ्र करलो। काम करने से ही सीखा जाता है। जितना काम अपनी रुचि से स्वयं करोगे उतनी ही योग्यता विशेष बढ़ेगी। और निश्चय जानिये कि आत्म प्रेरणा ही सफलता की ओर अग्रसर कर उसके स्वादु फलों का रसास्वादन कराती है। खुद सोचो, कहो, करो और परिणाम देखने और भुगतने को उद्यत रहो। तब कोई कारण नहीं कि सफलता न मिले।

[६] अच्छी आदतें

कोई भी काम बार बार रुचि पूर्वक किया जाता है तो वह बाद में शीघ्र, बढ़िया और आसानी से हो जाता है। अतः जो जीवनोपयोगी काम हों उन्हें कई बार करके पक्की आदत डाललो। काम का उद्देश्य तय करो और तब उसे निरन्तर करते रहो। जब तक आदत पक्की न पड़ जाय अपवाद न होने दो। उदाहरणार्थ स्वच्छ और पुष्ट बनने के लिये नित्य स्नान करो। नित्य दांत साफ़ करो और उनकी रक्षा का !सदैव ध्यान रखो। अपने वस्त्र, बैठक के कमरे और काम में आने वाली चीज़ों को स्वच्छ रखो। इतना ही नहीं विचार और वाणी भी पवित्र रक्खो। पुस्तकों को ठीक ढंग से थामो। और कभी झुक कर न बैठो। रास्ते में चलते चलते कुछ चूसो या खाओ मत। अपनी उँगली या पेन्सिल मुँह में मत डालो। और अपना काम करने के लिये सामान सहित तुरन्त जुट जाने की अवस्था में तैयार रहो। काम करने के औजारों के लिये किसी के आश्रित न बनो।

सभा में या राह चलते चलते ज़ोर ज़ोर से न बोलो। सदैव नम्रता और भद्रता का व्यवहार करो। अपने घर और कमरे को व्यवस्थित रक्खो और अपनी सब वस्तुएँ वहां इस ढंग से रखो कि दृश्य भव्य मालूम हो। यद्यपि ये बातें दीखने में छोटी और साधारण हैं पर इनके द्वारा अच्छी आदतें डालने का अभ्यास हो जाता है।

अपने तकिया कलामों को तिलांजली दो। थूक से किताब के सफ़े मत बदलो। कई प्रकार की सुटेवें पड़ने पर सारे काम सहज ही में हो जाते है। और अच्छी आदतें क्या सुफल देती है यह सब जानते ही हैं। घर के काम को बनाई हुई आदतें अपने धन्धे के काम मे भी मदद पहुंचाती है। अच्छी आदतों वाला व्यक्ति सब जगह आदर की दृष्टि से देखा जाता है और सद्गुण के कारण उस व्यक्ति का सम्पर्क बहुत से विद्वानों और गुणवानों से हो जाता है। फिर सफलता मिले इसमें संदेह नहीं रह जाता।

[७] उद्योग

अविरल अध्यवसाय ही सफलता की जननी है। आलसी व्यक्ति अपने सब गुणों पर पानी फेर देता है। पड़ा हुआ बड़े तलाब का पानी भी गन्दा हो जाता है और चलता हुआ छोटे नाले का पानी भी निर्मल दिखाई देता है। जो लोग अपने उठाए हुए काम को पूरा करना चाहते हों, उन्हें चाहिये कि अपने काम पर जुट जाँय फिर कोई कारण नहीं कि उचित यत्न करने पर दुनियां में कोई काम न सधे। जब महनत करके लोगों ने वायु-

यान और वेतार के तार तक का आविष्कार कर लिया है तो फिर अन्य काम क्यों न पूरे होंगे। बुद्धि युक्त महनत से हर काम सध जाता है। अविरल परिश्रम से अपने काम पर कमर कसकर लग जाओ और संसार को आश्चर्य में डालने वाले कार्य करके दिखा दो। मैं कहता हूँ, चन्द्रलोक की यात्रा सम्भव है, मिट्टी के धन्धे से क्रोड़पति बनना सम्भव है, ससार भर की एक भाषा होना संभव है, क्षय रोग का लोप होना मुमकिन है, पर हो कोई उद्योग करने वाला। आवश्यकता है डट कर काम के पीछे पड़ने वाले की।

अपने कार्यालय में पहुँचते ही काम पर लग जाओ। समय के मूल्य को आंक कर उसका उपयोग काम करने में करो। जब एक काम समाप्त होजाय तो दूसरा ढूँढ निकालो पर किसी भी दशा में सुस्त न रहो। और जो काम ज़्यादा ज़रूरी है उसे पहले करो। कठिन काम को विशेष खुशी से करो। यदि कोई काम करने को दिया जाय तो उसे ज़रूर करो। किसी कारण से काम इच्छानुकूल पूरा न हो तो हताश न होकर पुनः उस काम पर टूट पड़ो। नया काम हाथमें न लो जब तक अगला काम पूरा और सन्तोषजनक न हो। भारी काम देख कर चीं चीं न करो अपनी ताकत के मुताबिक बढ़िया तरीके से उसे करो। मुश्किलात का सब तरह से मुकाबिला करो उन्हें टालो नहीं।

जीवन का प्रत्येक क्षण काम में बिताओ। विश्राम को भी काम समझो—नहीं नहीं काम से भी महत्वपूर्ण। क्योंकि विश्राम से ही काम करने की शक्ति बढ़ती है। आपकी योग्यता वाले

जो काम कर सकते हैं वह आप जरूर करो। अपने आपको अहदी मत बनने दो, चुस्त और सचेष्ट बनो। बढ़िया काम करने की आदत डालो। कभी जान बूझ कर घटिया या अधूरा काम न करो। उद्यम करने से और तो और मौत को भी कुछ अर्से तक जीता जा सकता है। ए महनती पुरुषो! परिश्रम करो, सफलता हाथ बांधे चेरी की तरह खड़ी रहेगी।

[८] सामाजिक सहयोग

चूंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है उसे अगर सफलता प्राप्त करना है तो अपने सह कार्यकर्ताओं के साथ प्रसन्नतापूर्वक काम करना चाहिये और सदैव एक ही दृष्टिकोण से घटनाओं पर विचार न करना चाहिये अनेकान्त दृष्टि कोण से विचार करना चाहिये। सहयोगियों को सहयोग दिया जाय और दूसरों के भरोसे न छोड़ा जाय। यह बात ज़रूरी है कि दूसरों की मदद करते समय धीरज और नम्रता से व्यवहार किया जाय। अपने पूज्यों की एवं बड़ों की आज्ञाओं का पालन शीघ्रता पूर्वक रूचि से किया जाय। जब कोई दूसरा बोल रहा हो तो बीच में कुछ न कहा जाय। पहले उसका पूरा अभिमत सुन लिया जाय और बाद में अपनी राय प्रकट की जाय। सदैव दूसरों के हितों का और परिस्थितियों का ध्यान रखा जाय। और जो लोग आपके अधीनस्थ होकर काम करते हों उनकी सुविधाओं पर ध्यान रखा जाय। बीमार, निर्बल और वृद्ध स्त्री पुरुषों की विशेष परवाह की जाय। दूसरों की सम्पत्ति की कद्र की जाय और कुतूहल वश भी किसी बाग़ में फूल या पत्ती तोड़ कर हानि न

पहुंचाई जाय। यदि कोई प्रश्न पूछे तो उसका नम्रता पूर्वक उत्तर दिया जाय।

इस प्रकार का पारस्परिक व्यवहार करने से सहयोगियों की कमी नहीं रहती और जब सहयोग प्राप्त हो तब चाहे हुए काम को करना कोई कठिन बात नहीं है। सामाजिक शिष्टाचार का पालन किया जाय। व्यर्थ लोगों के साथ गप्प शप्प न लड़ाया जाय। और इस बात का ध्यान रखा जाय कि सर्वोत्तम कर्तव्य दूसरों की सेवा करना है। जो बात अपने सुनने के लिये न हो उसे सुनने का प्रयत्न न किया जाय। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति को अपने कार्य करने के लिये स्वतंत्र होना चाहिये तथापि दूसरों की सलाह सुनने की क्षमता भी होनी चाहिये। व्यवहार करते समय दयालु और विनीत बनो। सदैव कृतज्ञ बनो। अपने माता पिता के उपकारों को जन्म भर न भूलो। तथा अपने समाज में अपनी जिम्मेदारी को पहचानो और उसका पालन करो। अपने कामों को अपने माँ बाप से न छिपाओ। इस प्रकार की सामाजिक सहयोग की प्रबल अभिरुचि सफलता प्राप्त करने में सफल सिद्ध हुई है।

[६] आत्म संयम

प्रत्येक दशा में प्रसन्न और नम्र बनो। जब आपकी भूल को कोई सुधारे तो कभी उस समय गुस्सा न करो। क्रोध को त्यागो और धीरज को धारो। असफलता होने पर हिम्मत हार कर चिल्लाओ नहीं उसके नतीजे को साहस पूर्वक सहो और दुगुने उत्साह से पुन काम पर जुट जाओ। जब किसी मेल में

भाग लो तो सजग हो और दूसरों को भी खेलने का अवसर दो। सदैव सही खेलो। हारने पर न तो पछताओ न गुस्सा लाओ। नवीन वातावरण के मुताबिक अपने आप में शीघ्र और सुखद तबदीली करो। भाषा पर नियन्त्रण रखो। अश्लील और बुरे शब्द कभी जबान पर मत लाओ। कार्यालय में अनावश्यक बात चीत न करो। ऐसा करने से दूसरों को बाधा पहुँचती है।

अपने आप को संभालो। क्रोध मारो और आफत में घबड़ाओ मत। किसी से अपराध बन जाय तो दीर्घ दृष्टि से विचार करो। गुस्सा आने पर १०० से १ तक उल्टी गिनती गिनो। ठंडा पानी पीलो अथवा स्नान करलो। कमीनों के व्यवहार पर मत कुढ़ो। यदि संसार पर विजय प्राप्त करना चाहते हो तो पहले स्वयं अपने पर विजय प्राप्त करो। जो व्यक्ति अपने आपको काबू में रख सकता है वही दूसरों पर अपना काबू जमा सकता है। आत्मसंयम के बिना सफलता का मात्र हवाई क़िला बनाना है।

[१०] मितव्यय

सफलता प्राप्त करने का अन्तिम रहस्य परिमित व्यय करना है। मितव्यय का नाम सुनते ही लोग पैसे टके का विचार करते हैं परन्तु असिल में मितव्यय शक्ति और समय का होना चाहिये पैसे का मितव्यय तो गौण है। कभी एक क्षण भी किसी का बरबाद न करो। काग़ज़ या किसी तुच्छ पदार्थ को भी नष्ट न करो। सार्वजनिक सामग्री को विशेष सावधानी से काम में लाओ। संसार के सारे पदार्थ दाम देने से या मेहनत से मिलते

है अतः किसी भी वस्तु को बरबाद न करो। किसी दीवार या इमारत पर लिख कर उसको विरूप मत बनाओ। अपने निजी छड़ी, छाते, रूमाल, चाकू, पेन्सिल और टोपी आदि का कहीं न भूलो। रवाना होने के पूर्व सम्भाल लो। प्रति मास अथवा सप्ताह अपनी आमदनी में से कुछ भविष्य के लिये बचाओ। बेकारी, बीमारी और सङ्कट के समय बचाया हुआ एक रुपया एक मुहर से भी अधिक मोल का होता है। हर प्रकार से मितव्ययी बनो। फैशन और दुर्व्यसनों में पसीने की कमाई को मत उड़ाओ। जूए से बचो। नाच रंग के प्रेम को घटाओ। पैसे देकर पजल (Puzzle) भेजने की नई बुरी लत से बचो।

यद्यपि ऊपर लिखी हुई कई बातें दीखने में छोटी और विचारने में नगण्य हैं परन्तु उनका बहुत बड़ा महत्व है। विद्यार्थियों और विशेष कर नवयुवकों से मेरी यह प्रार्थना है कि इस पुस्तिका को बार बार पढ़ें इस पर विचार करें और बताए हुए उत्तम गुणों को अपनाकर अपने जीवन को सफल बनायें। सफलता प्राप्ति के निम्न सात सोपानों पर चढ़िये और अपने जीवन संग्राम की दौड़ में आगे बढ़िये।

१ स्वास्थ्य २ सुटेव ३ सफाई ४ परिश्रम ५ मितव्यय ६ ज्ञान ७ सबल व्यक्तित्व।

यदि इस रास्ते को नहीं पकड़ोगे तो आपको असफलता की कटीली राह पकड़नी होगी। जीवन प्रगति शील है। एक स्थान पर आप नहीं रह सकते यदि गुण न अपनाओगे तो नीचे गिरोगे, बीमारी, कुटेव, बेईमानी, आलस्य, अपव्यय, अज्ञान और निर्बल व्यक्तित्व के कुफल सहने होंगे। जागो।

ज्ञान माला के नियम

१ इस माला द्वारा समय समय पर कला, धर्म, विज्ञान, शिक्षा, समाज व साहित्य विषयक उपयोगी एवं ठोस ट्रैक्ट प्रकाशित होंगे। राजनैतिक विषयों से इस माला का कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा।

२ सब ट्रैक्ट इसी आकार प्रकार के होंगे। (आकार २०×३० सोलह पेजी और चार पृष्ठ रंगीन मुख पृष्ठ विशेष)

३ स्थाई ग्राहकों से १ से लेकर ३२ ट्रैक्टों को घर बैठे पहुँचाने का मूल्य सिर्फ १॥) वी० पी० से १॥=)

४ स्थाई ग्राहकों को अपने पते के परिवर्तन की सूचना अवश्य दे देनी चाहिये।

५ स्थाई ग्राहकों के नाम पूरे पते सहित ट्रैक्टों में एक बार छपेंगे

६ जीवनोपयोगी ठोस निबन्ध भेजने वाले लेखकों को पारश्रमिक अवश्य दिया जायगा। प्रकाशन का सर्व अधिकार ज्ञान भण्डार जोधपुर को रहेगा।

७ फुटकर पुस्तक लेने वालों को प्रति ट्रैक्ट तीन पैसे और डाक खर्च प्रति ट्रैक्ट एक पैसा देना होगा। बाहर वालों को प्रति ट्रैक्ट एक आने के हिसाब से डाक टिकिट भेजने चाहिये। तीन ट्रैक्ट से कम नहीं भेजे जावेंगे।

८ जो सज्जन प्रचारार्थ बाँटने के लिये सात सेट के स्थाई ग्राहक बनेंगे उनसे सिर्फ १०) लिये जावेंगे और उनका नाम हर ट्रैक्ट पर संरक्षक श्रेणी में छपता रहेगा। १०) में ३२० पुस्तकें बाँट कर साहित्य प्रचार में सहयोग दीजिये।

९ स्थानीय एजेण्ट मेसर्स डी. आर. शर्मा सोजतीगेट जोधपुर

० ज्यों ज्यों ट्रैक्ट छपेंगे स्थाई ग्राहकों को डाक से भेज दिये जावेंगे।

पत्र व्यवहार इस पते से करिये—

ज्ञान भण्डार जोधपुर।

विपदायें आओ आओ !

हां ए प्यारी विपदायें, आती हो आवो आवो । टेर ॥ पत्थरसा मुझे बनावो, दृढ़ताका पाठ पढ़ावो । साहस सुकर्म सिखलावो, पथ उन्नति का दिखलावो । सत पथ पर मुझे चलाओ । आती० ।१। मैं जो कब बड़ा कड़ा हूँ, मत कहना धृष्ट बड़ा हूँ । स्वागत के लिये खड़ा हूँ, निज हठ पर आज अड़ा हूँ ॥ मुख घूंघट में न छिपावो । आती०२। तुमसे कुछ अहित न होगा, हित होगा अहित न होगा । यश शशि क्या उदित न होगा, फिर क्या मन मुदित न होगा । हां हां हौसला बढ़ावो ॥ आती० ॥३॥ तुम दो न दया की भिक्षा, है मुझे न इसकी इच्छा । बस देदो ऐसी शिक्षा, करलूं मैं पास परीक्षा ॥ कुछ ऐसा गुर बतलाओ । आती० ॥४॥ तुम अगर न जगमें होती, सब पड़ी जातियां सोती । निज समय स्वर्ण सा खोती ॥ जगती तब दुखड़ा रोती । जीवन रक्षार्थ जगावो ॥ आती० ॥ ५ ॥ तुम जिनके पास गई हो, उनकी मति भई नई हो । वे सभी हुए विजयी हो, तुम उनको सुधा हुई हो । आंखें न मुझे दिखलाओ । आती० ॥६॥ हां ऐसा सबक पढ़ाना, दिल दूना रोज बढ़ाना । भ्रममें न मुझे भटकाना, सद् ज्ञान सदैव जताना । जीवन की जांच कराओ आती० ॥७॥ यदि पड़ता विषम न पाला, गरमी का कठिन कसाला जल मूसलाधार से पाना, ये भवन न बनते आला । आकार विशद बढ़ाओ ॥ आती० ॥ ८ ॥ यदि राम न वन को जाते, क्या इतनी कीर्ति कमाते । क्या ईसा सूली पाते, यदि तुम्हें न वे अपनाते ॥ संसार में सुयश खिलाओ ॥ आती० ॥ ९ ॥ यदि सूख न इनमें स्नाती, क्यों करते सेवा पाती । मेधा विकास क्या पाती, यह ममता कहां से आती ॥ नित नई सूझ उपजाओ ॥ आती० ॥१०॥ निर्भय हूं या कि डरा हूँ, डूबा हूँ या कि तरा हूँ । जीवित हूँ या कि मरा हूँ, खोटा हूँ या कि खरा हूँ ॥ कसकर परखाओ लखाओ ॥ आती० ॥ ११ ॥ थोड़े दिन से हो आई, साथ में हो सुखद सवाई । हो सुमति साथ ही लाई, हो रसी लिये मन भाई ॥ यह मंत्र हमें कराओ ॥ आती० ॥ १२ ॥ (सरस्वती से)

ज्ञान—माला

मालवीयजी सर्वप्रिय क्यों?

लेखक

श्री० सुरेन्द्रदत्त दुवे बी० ए०

सम्पादक

श्रीनाथ मोदी "विशारद"

इन्सट्रक्टर

गवर्नमेण्ट टीचर्स ट्रेनिङ्ग स्कूल,

जोधपुर (राजपूताना)

(सब घटनाएं मालवीयजी के निजी मन्त्री श्री पन्तजी द्वारा अनुमोदित होने से प्रमाणिक हैं।)

'मद न मोह न, श्लाघनीय।
मदन मोहन मालवीय॥'

प्रकाशक—

चीरजमल चन्डावत

ज्ञान भण्डार, जोधपुर.

[illegible]न १९३७ } { तीन पैसे

ज्ञान माला के नियम

१ इस माला द्वारा समय समय पर कला, धर्म, विज्ञान, [illegible] समाज व साहित्य विषयक उपयोगी एवं ठोस [illegible] प्रकाशित होंगे। राजनैतिक विषयों से इस माला का [illegible] सम्बन्ध नहीं रहेगा।

२ सब ट्रैक्ट इसी आकार प्रकार के होंगे। (आकार २०×[illegible] सोलह पेजी और चार रंगीन मुख पृष्ठ विशेष)

३ स्थाई ग्राहकों से १ से लेकर ३२ ट्रैक्टों का घर बैठे पहुंचाई का मूल्य सिर्फ १॥) वी० पी० से १॥[illegible])

४ स्थाई ग्राहकों को अपने पते के परिवर्तन की सूचना [illegible] दे देनी चाहिये।

५ स्थाई ग्राहकों के नाम पूरे पते सहित ट्रैक्टों में एक बार छपेंगे

६ जीवनोपयोगी ठोस निबन्ध भेजने वाले लेखकों को पारश्रमिक अवश्य दिया जायगा। प्रकाशन का सर्व अधिकार ज्ञान भण्डार जोधपुर को रहेगा। शीर्षक प्रभावाची हों।

७ फुटकर पुस्तक लेने वालों को प्रति ट्रैक्ट तीन पैसे और डाक खर्च प्रति ट्रैक्ट एक पैसा देना होगा। बाहर वालों को प्रति ट्रैक्ट एक आने के हिसाब से डाक टिकिट भेजने चाहिये। दो ट्रैक्ट से कम नहीं भेजे जावेंगे।

८ जो सज्जन प्रचारार्थ बाँटने के लिये सात सेट के स्थाई ग्राहक बनेंगे उनसे सिर्फ १०) लिये जावेंगे और उनका नाम हर ट्रैक्ट पर संरक्षक श्रेणी में छपता रहेगा। ०) में [illegible] पुस्तकें बाँट कर साहित्य प्रचार में सहयोग दीजिये।

९ स्थानीय एजेण्ट मेसर्स डी. आर. शर्मा सोजतीगेट जोधपुर

१० [illegible] ट्रैक्ट छपते ही स्थाई ग्राहकों को डाक से भेज दिये जावेंगे।

तमाम पत्र व्यवहार इस पते से करिये—

ज्ञान भण्डार जोधपुर।

* ॐ *

मालवीयजी सर्वप्रिय क्यों?

वैदेशिक सरकार और भारतीय राष्ट्र, देशीनु नरेश और जन साधारण, सुधारवादी और कट्टरपन्थी, आर्य समाजी और सनातनी विद्वन्मण्डली और पण्डे पुजारियों की श्रद्धा का केन्द्र यदि कोई भी आज भारत में विद्यमान है तो वह है पूजनीय महामना पं० मदनमोहन मालवीय। उनकी सर्व प्रियता एक जानने और अनुकरण करने की वस्तु है। उनके व्यक्तित्व पर गुणों की नहीं वरन् अनेक गुणों पर उनके व्यक्तित्व की छाप है। उनके एक एक गुण का स्वतन्त्र रूप है और इन स्वतन्त्र रूपों से बना है उनका एक विराट् स्वरूप। आदर्श जीवन के इस प्रणेता से अपने जीवन को जीवन देना चाहने वाले आवें और सीखें।

जन्म और शिक्षाः—पं० मदनमोहन मालवीय के पूर्वज लगभग ४०० वर्ष पहिले मालवा से आकर प्रयाग में बसे थे। आपके पिता पं० ब्रजनाथजी मालवीय अपने समय के संस्कृत के अच्छे विद्वानों में समझे जाते थे। श्री मद्भागवत् तथा अन्य पुराणों की कथा कहने में आप बड़े प्रवीण थे। आपका कथा कहने का ढंग बड़ा ही ललित और मनोहारी होता था। आपका

सन्मान काशी और दरभंगा के राज घरानों में भी था। माल-वीयजी कई भाई बहिन थे। इनके पिताजी की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी न थी, इस कारण उनको अपनी सन्तानों को शिक्षित बनाने मे बहुत प्रयत्न करना पड़ा।

मालवीयजी का जन्म २५ दिसम्बर सन् १८६१ ई० में प्रयाग में हुआ था। आपकी शिक्षा पहिले संस्कृत पाठशाला से प्रारम्भ हुई। इसके बाद आप अंग्रज़ी स्कूल में भेजे गये। प्रयाग ज़िला स्कूल से सन् १८७६ ई० में कलकत्ता विश्व-विद्यालय की एन्ट्रेन्स परीक्षा पास की। उन दिनों इलाहाबाद यूनीवर्सिटी का जन्म भी नहीं हुआ था। फिर आप म्योर सेन्ट्रल कालेज मे प्रविष्ट हुए। आपने सन् १८८१ ई० मे एफ० ए० पास किया और सन् १८८४ ई० मे बी० ए० की डिग्री प्राप्त की। थोड़े दिन तक आपने एम० ए० क्लास में भी पढ़ा, परन्तु किन्हीं कारणों वश आपको इसे छोड़ना पड़ा। इसके सात वर्ष बाद आपने एल. एल० बी० की परीक्षा पास की।

<u>अध्यापन-और सम्पादन</u>-सन् १८८४ ई० में आप गवर्नमेंट हाई स्कूल प्रयाग में सहायक मास्टर हो गये। इस जगह पर आपने तीन वर्ष तक कार्य किया। इसके बाद कालाकांकर के परलोकवासी राजा रामपालसिंह के अनुरोध वश आपने 'हिन्दुस्तान' नामक पत्र का सम्पादन आरम्भ कर दिया और अध्यापकी से इस्तीफ़ा दे दिया। आपने इस पत्र का सम्पादन बड़ी ही योग्यता और गम्भीरता से किया। यहाँ तक कि

सरकार की ओर से गवर्नमेण्ट एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट में इस पत्र की सार्वजनिक उपयोगिता स्वीकार की गई।

'हिन्दुस्तान' पत्र का सम्पादकत्व छोड़ने पर आप 'इंडियन ओपीनियन' नाम के पत्र का अंग्रेज़ी में सम्पादन करने लगे। यह पत्र किन्हीं कारणों वश दीर्घजीवी न हो सका। पर मालवीयजी का समाचार पत्रों की उपयोगिता पर सदा विश्वास रहा है। राष्ट्र-निर्माण में समाचार पत्रों का एक विशेष स्थान होता है। यह प्रजा तथा शासक दोनों को पथ-प्रदर्शन कराने वाली वस्तु है। अतः आपने हिन्दी में 'अभ्युदय' और अंग्रेज़ी में 'लीडर' नामी दैनिक पत्र निकलवाए। 'लीडर' ने इस क्षेत्र में जो उन्नति की है तथा जिस अच्छी नीति को ग्रहण कर वह लोक-सेवा कर रहा है, उसे शिक्षित समाज भलीभांति जानता है। 'लीडर' अपने जीवन के २५ वर्ष पार कर चुका है और उसकी लोक-प्रियता प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है।

वकालतः— जब मालवीयजी 'हिन्दुस्तान' के सम्पादक थे तभी आपके कतिपय शुभ-चिंतकों ने आपको वकालत पास करने की राय दी। कांग्रेस के जन्म दाता प्रसिद्ध सिविलियन मि० ए० ओ० ह्यूम आपकी कुशाग्र बुद्धि की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। स्व० पं० अयोध्यानाथ राजा रामपालसिंह और सर सुन्दरलाल आपके घनिष्ठ मित्रों में से थे। इनका कहना मालवीयजी को मानना ही पड़ा। अतः आप 'लॉ' क्लास में सम्मिलित हो गये। सन् १८९१ ई० में एल. एल० बी० की डिग्री प्राप्त की और सन् १८९३ ई० में इलाहाबाद हाई कोर्ट में

वकालत प्रारंभ करदी। "मि० मदन मोहन, ईश्वर ने तुम्हें महान् बुद्धि प्रदान की है, यदि तुम दस वर्ष लग के वकालत कर जाओ तो निश्चय ही वकालत की चोटी पर पहुँच जाओगे उस समय तुम्हारी कीर्ति चारों ओर फैल जायगी।" यह मि० ह्यूम की भविष्यवाणी मालवीयजी की वकालत के बारे में थी। पर जीवन के प्रारम्भ से ही उदय होने वाली आपकी पब्लिक सम्बन्धी कार्यों में विशेष भाग लेने की प्रवृत्ति ने आपको वकालत में अधिक समय न दे सकने के लिये ही बाध्य किया। इसी कारण आपको इस पेशे की दो तीन सीढ़ियां चढ़ने को शेष रह गईं। आप वकालत केवल निर्वाह मात्र के लिये ही करते थे और शेष समय देश-हित-साधन में लगाते थे। अपने बड़े लड़के पं० रमाकान्त मालवीय के वकालत प्रारम्भ कर देने पर आपने इस कार्य से अवकाश ग्रहण कर लिया और अपना सारा समय देश, जाति और समाज के लिये अर्पण कर दिया।

सार्वजनिक जीवन:—मालवीयजी अपने विद्यार्थी जीवन से ही सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने लगे थे। इलाहाबाद लिटरेरी इन्स्टीट्यूट आपका प्रारम्भिक क्रिया-स्थल था। पहिले पहल पब्लिक-कार्य करना आप यहां से सीखे। स्थानीय हिन्दू समाज के आप बड़े क्रिया शील मेम्बर थे। आपकी समाज-सेवा का आरम्भ घर से ही हुआ और उसका विस्तार बढ़ते बढ़ते इतना बढ़ गया कि विश्व शान्ति तथा विश्व-प्रेम के इच्छुकों तक में आपका नाम संसार के किसी भी श्रेष्ठतम नागरिक से नीचा स्थान नहीं रखता। आपकी युवावस्था की

एक घटना पर ध्यान दीजिये। आपके पड़ोस के एक मकान में आग लग गई। आप उस समय घर ही पर थे, जैसे ही ज़ोर का धुआँ देखा, सब लोगों को उस दुर्घटना की सूचना दे दी और स्वयं पानी के घड़े लेकर आग बुझाने लगे। मकान की ऊँची दीवार पर पानी भरा घड़ा लिए अपने गिरने का थोड़ा भी ध्यान न कर मालवीयजी बड़ी शीघ्रता से आग बुझा रहे थे। उस समय उस दृश्य को देख कर इस बात का पूर्ण रूप से आभास होता था कि देश तथा जाति की सेवा में भारत-माता का यह लाल वास्तव में अद्वितीय सिद्ध होगा।

देश, जाति तथा समाज के लिये किए गये आपके कार्यों की यदि संक्षेप में भी सूची तैयार की जाय तो एक छोटीसी पुस्तक बन जाये। इन कार्यों से सम्बन्ध रखने वाली छोटी से छोटी भी कोई ऐसी संस्था न होगी जिससे मालवीयजी किसी न किसी रूप से संबंधित न हो, इनमें से प्रयाग म्यूनिसिपैलिटी, कांग्रेस, हिन्दू बोर्डिंग हाउस, प्रयाग का विश्व विद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, लैजिस्लैटिव कौंसिल, एसेम्बली, हिन्दू महासभा, 'लीडर' एसोसिएशन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन और सेवा समिति बॉय स्काउट एसोसिएशन और अखिल भारतीय सनातन धर्म महासभा प्रमुख हैं।

प्रयाग म्यूनिसिपैलिटी—अपने नगर की म्यूनिसिपैलिटी के मेम्बर होकर आपने प्रयाग निवासियों की सेवा की। आप इस संस्था के सीनिअर वाइस चेअरमेन भी रह चुके हैं। नगरों की घनी आबादी के कारण होने वाली स्वास्थ्य हानि

किसी भी समझदार नागरिक से छिपी नहीं है। अतः मालवीयजी ने आदर्श मुहल्ले बसाने का प्रयत्न किया। गवर्नमेन्ट से इस संबंध में प्रार्थना की गई और सफलता भी मिली। प्रयाग का लूकर गंज आपके इस प्रयत्न का जीवित उदाहरण है। बादको ऐसे ही प्रयत्न लखनऊ कानपुर आदि नगरोंमें भी हुये।

कांग्रेस—इस देशव्यापी संस्था से मालवीयजी की सहानुभूति इसके जन्म काल से ही रही है। पर स्पष्ट रूप से आप इसमें सन् १८८६ ई० में इसके द्वितीय अधिवेशन में कलकत्ता में शामिल हुए। इस अवसर पर आपका 'व्यवस्थापक सभा में सुधार' नाम का भाषण हुआ। आपके पहिले ही व्याख्यान का लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। मि० ह्यूम ने अपनी कांग्रेस की रिपोर्ट में उसका इस प्रकार उल्लेख किया था, "जिस स्पीच का कदाचित् बड़े उत्साह के साथ स्वागत हुआ वह पं० मदन मोहन मालवीयजी की थी। ये एक उच्च कुल के ब्राह्मण हैं, इनके गोरे रंग सुडौल अंगों और सूझ बूझ ने प्रत्येक पुरुष के चित्त को अपनी ओर आकर्षित कर लिया है।' इसी विषय पर आप दूसरे साल मद्रास की कॉंग्रेस में भी बोले, और वहां भी आपकी स्पीच बड़े मार्के की हुई। राजा सर टी० माधवराव, दीवान बहादुर राजा रघुनाथ राव और पी० आई० नार्टन ने इसकी बड़ी प्रशंसा की थी।

थोड़े ही दिनों में मालवीयजी कांग्रेस के चुने हुए आदमियों में समझे जाने लगे। सन् १८८८ और सन् १८९२ ई० में प्रयाग में होने वाली इतिहास प्रसिद्ध कांग्रेस की सफलता का श्रेय बहुत कुछ आप ही को है। सन् १९०९ ई० में आपने लाहौर

की कांग्रेस में सभापति के आसन को सुशोभित किया और सन् १६१८ ई० मे दिल्ली कांग्रेस के सभापति बने।

कांग्रेस के जन्म के थोड़े ही दिनों बाद उसके अनुयायी नेताओं मे दो दल होगये (१) गरम दल (२) नरम दल। मालवीयजी सदा ही स्व० गोखले की भांति नरम दल में रहे। प्रत्येक कार्य में कानून के द्वारा (कान्स्टीट्यूशनल ढंग से) सफलता प्राप्त करने का आपका उद्देश्य सदा ही रहा है। गरम और नरम दल दोनों को मिलाने और देश हित के लिये साथ साथ ले चलने का श्रेय आप ही को है।

सन् १६२१ ई० वाले राष्ट्रीय आन्दोलन में आपने प्रमुख भाग लिया। स्वदेशी आन्दोलन में आपने पूर्ण रूप से कार्य-किया। फिर १६३० ई० के सिविल डिस ओबिडियन्स मूवमेन्ट में जब आपने यह देखा कि देश सेवा के कर्त्तव्य का पूर्ण रूप से पालन करने से जेल जाना अनिवार्य हो रहा है तो उसका भी आपने प्रसन्नता के साथ स्वागत किया। मालवीयजी आज भी कांग्रेस के साथ हैं और प्रत्येक रूप से कार्य कर रहे हैं

गोल मेज-परिषद्—इसमें भाग लेने के लिए आपने इस वृद्धावस्था मे भी महात्मा गांधी के साथ विलायत यात्रा की थी और वहाँ जाकर वहाँ के लोगों तथा स्वयं स्व० सम्राट् के समक्ष भारत की वास्तविक स्थिति का परिचय दिया था।

पृथक् निर्वाचन (कम्यूनल अवार्ड)—जब नये शासन-विधान के अनुसार पृथक् निर्वाचन पास होगया तो मालवीयजी देश की राजनैतिक स्थिति तथा भविष्य का ध्यान

घातक नीति का घोर विरोध किया अपनी अस्वस्थावस्था में दौरे किये और इसके द्वारा होने वाली हानियों को समझाया। पर शोक है कि देश की बढ़ी हुई साम्प्रदायिकता के कारण आपको इस कार्य में पूरी सफलता न मिल सकी।

ऐक्य सम्मेलन (यूनिटी कान्फ्रेन्स):—सन् १९३२ ई० मे जब कांग्रेस अनुयाई नेताओं में पारस्परिक वैमनस्य बढ़ गया। जिसके फल स्वरूप पार्टी बन्दी हो गई और प्रत्येक कार्य में बाधा उपस्थित होने लगी। उसे दूर करने के लिये प्रयाग मे ऐक्य सम्मेलन का आयोजन किया गया। उस कान्फ्रेन्श मे भी आपका कार्य उच्च कोटि का था।

कौंसिल और असेम्बली की सदस्यता—आपकी कौंसिल की मेम्बरी का प्रारम्भ सन् १९०२ ई० से हुआ इस साल स्व० पं० विश्वम्भरनाथ ने अपनी वृद्धावस्था के कारण व्यवस्थापक सभा से अपना सम्बन्ध त्याग दिया तब मालवीयजी उस स्थान की पूर्ति के लिये उनके स्थानापन्न हुये। तभी से आप समय समय पर इसके मेम्बर होते चले आ रहे हैं। कौन्सिल में आप के कई व्याख्यान बड़े मार्के के हुये हैं। अपनी प्रतिभा और सार्वजनिक सेवा के ही कारण आपको एसेम्बली के लिए चुना गया।

एसेम्बली में आपका जीवन बड़ा कर्त्तव्य-पूर्ण रहा है। उस सभा के भी आप कई बार मेम्बर रह चुके हैं। प्रजा के लिये हितकारक कानून पास कराने वाले लोगों में आपका स्थान सदा ऊंचा रहा है। पंजाब के रौलेट बिल के परिणाम स्वरूप होने वाली घटना पर आपके लगभग ५ घण्टे वाले

भाषण पर भारत के ही नहीं वरन् इंगलेण्ड तक के धुरन्धर विद्वानों तथा राजनीतिज्ञों ने भी दांतों तले उंगली दबाई थी। आपका इन्डेम्निटी बिल पर दिया गया भाषण अति उच्चकोटि का है।

शिक्षा प्रेम--मालवीयजी का शिक्षा प्रचार से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। विद्यार्थी समाज के लिये आपका हृदय सदा ही प्रेम और सहानुभूति से ओत प्रोत रहा है। प्रयाग में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये बाहर से आये हुये विद्यार्थियों को ठहरने का बड़ा कष्ट था। यह देख कर आपने एक छात्रालय बनवाने का संकल्प किया। स्व० सर सुन्दरलाल ने आपकी सहायता की। मालवीयजी ने घूम घूम कर चन्दा एकत्र किया और मेकडानेल्ड हिन्दू बोर्डिंग हाउस बनवाया। यह संस्था विद्यार्थी समाज को काफी लाभ पहुँचा रही है।

काशी हिन्दू विश्व विद्यालय—अपनी युवावस्था में मालवीयजी एक दिवः स्वप्न देखा करते थे वह था हिन्दुओं की प्राचीन विद्या-भूमि काशी में एक शिक्षा का केन्द्र स्थापित करने का। वैसे तो काशी सदा ही संस्कृत विद्या का केन्द्र रही है पर १९ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा २० वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के इस महापुरुष ने अपने ज्ञान चक्षुओं से देखा कि भविष्य सन्तान के लिये यह आवश्यक होगया है कि वह पूर्व और पश्चिम दोनों की संस्कृतियों और विद्याओं का भले प्रकार अध्ययन करे। सभ्यता के शिखर पर युगों पहिले पहुंचा हुआ भारत बिना इसके नवीन विज्ञान की दुनिया की चकाचौंध में भौंचका सा रह जायगा और केवल पश्चिमीय नवीनता को

ही ग्रहण कर वह पतन के गहरे गर्त में गिर कर सदा के लिये नष्ट हो जायगा। अतः आपने प्राची और प्रतीची दोनों के ज्ञान भांडार को एक ही विद्या मन्दिर में स्थापित करने का प्रयत्न किया। यह विचार मित्रों के समक्ष रखा गया, मार्ग की कठिनाइयाँ समझी गईं और फिर सब पर विचार प्रकट किये गये। देश के सभी राजा महाराजाओं, धन कुबेरों, सरस्वती के वरद पुत्रों तथा गण्य मान अधिकारियों को काशी में आमन्त्रित किया गया। इस सभा से काफी प्रोत्साहन मिला। एक व्यवस्था तैयार की गई और मालवीयजी तथा श्रीयुत् दरभंगा नरेश चन्दे की झोली लेकर निकले। ये लोग जहां कहीं भी गए लोगों ने उदार हृदय से सहायता दी। सारे भारत के भ्रमण में लग भग एक करोड़ रुपया एकत्र हो गया और काशी के सेण्ट्रल हिन्दू कालेज को हिन्दू-विश्व विद्यालय में परिणत करदिया गया। बाद को नगवा पुण्य सलिला भागीरथी के तट पर काशी के उत्तर में एक से एक सुन्दर विद्या मन्दिर बने जिनमें प्राचीन तथा नवीन साहित्य, इतिहास, गणित, अर्थ शास्त्र, राजनीति शास्त्र, शिल्प विज्ञान, भूगर्भ शास्त्र, वनस्पति शास्त्र, जीव शास्त्र, खनिज शास्त्र, आयुर्वेद, रसायन, इंजिनियरिंग प्रभृति सभी विषयों की शिक्षा बड़े ही अच्छे ढंग से दी जाती है। यहां के विद्वान् अध्यापकों की कीर्ति कौमुदी भारत ही नहीं वरन् विदेशों तक फैली हुई है, देश का कोई ऐसा भाग नहीं जहां यहां के स्नातक न हों। सादा जीवन और उच्च विचार यहां के गुरुओं तथा स्नातकों का मुख्य ध्येय रहता है।

पुण्यतोया भगवती भागीरथी के पवित्र तट पर बसा हुआ लग भग दो वर्ग मील के क्षेत्र फल में, विशाल और सुन्दर हिन्दू वास्तु कला के बने हुए भव्य भवनों से सुशोभित गोल्ड मुहर और आम्र कुँजों से आच्छादित नवीन ढंग के सभी साधनों से सजा हुआ नगवा-नगर (युनिवर्सिटी टाउन) संसार के बहुत ही शान्त और सुन्दर स्थान का एक नमूना है। बाहर के यात्रियों को यहां पहुँचने पर अद्भुत शांति मिलती है और उनके मुख से यह शब्द अपने आप निकल पड़ते हैं कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति का सर्वोत्कृष्ट महान् केन्द्र यही है।

विदेशों के प्रसिद्ध विद्वानों ने जैसे जर्मनी के प्रो० सोमर फील्ड, फ्रांस के मि. सिलवन लैवी, मैनचेस्टर के प्रो. रामजेम्योर और अमेरीका के डा० ह्यूम ने इस स्थान को देखा है और यहां होने वाले कार्य की प्रशंसा की है। कर्नल वैजवुड के शब्दों में "हिन्दू यूनिवर्सिटी इस शताब्दी के भारतवासियों का सब से बड़ा कार्य है।"

अभी इसमें लगभग ३५०० विद्यार्थी हैं। मालवीयजी इसके सत्रह वर्ष से कुलपति (वाइस चांसलर) हैं। इस वृद्धावस्था में भी आपका विचार है कि इसकी इतनी उन्नति करलेंगे कि इसमें भी नालन्दा और तक्षशिला के 'इतिहास प्रसिद्ध विश्व विद्यालयों की भांति १० हजार विद्यार्थी अध्ययन करने लगें। भगवान् विश्वनाथ उनकी इस इच्छा को पूरा करें।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन—'मातृ भाषा का माता समान आदर करना चाहिये' इस तथ्य को मालवी५

पहिले से अपनाया है। हिन्दी को देशव्यापी बनाने के लिये उपयुक्त संस्था की प्रयाग में स्थापना की गई थी। इस सभा के ही प्रयत्नों के फल स्वरूप कचहरियों में हिन्दी में भी अर्जियां लिखे जा सकने की आज्ञा मिल सकी है। इसके कार्यों में मालवीयजी का सदा ही हाथ रहा है और पहिले और नवें अधिवेशन के आप सभापति रह चुके हैं। हिन्दू महासभा को साम्प्रदायकता के गर्त में गिरते हुए बचाने में इसी प्रकार आपका पूरा हाथ रहा है।

<u>सेवा-समिति बॉय स्काउट एसोसिएशनः</u>—न मुझे साम्राज्य चाहिये न स्वर्ग और न मोक्ष मेरी केवल यही इच्छा है कि मैं दुःख में पड़े हुए प्राणियों की सेवा करूँ। यह भावना मालवीयजी के सार्वजनिक जीवन की आधार शिला है। किसी न किसी प्रकार की सेवा-समिति का आपने प्रत्येक अवसर पर आयोजन किया है चाहे वह कुंभ का अवसर हो अथवा और कोई सार्वजनिक कार्य। फिर जब इंगलैंड में लार्ड बेडेन पावेल ने अपनी स्काउटिंग संस्था की उपयोगिता सारे जगत् के सामने रखदी तो मालवीयजी ने उसका खुले हृदय से स्वागत किया। पर आपके विचार से उसका भारत के लिये भारतीय करण आवश्यक प्रतीत हुआ। फलतः आप से ही प्रोत्साहित होने पर पं० श्रीराम वाजपेयी ने स्काउटिंग को भारतीय परिस्थिति के अनुकूल बनाकर उसे उसके वर्तमान रूप में प्रस्तुत किया। इस संस्था ने आशातीत उन्नति की है। आज देश के कोने कोने में इसकी शाखायें हैं। जिन्होंने कुंभ आदि के अखिल भारतवर्षीय मेलों में

इस संस्था का कार्य देखा है, उन्होंने इसकी उपयोगिता और महत्ता को प्रशंसात्मक शब्दों में स्वीकार किया है।

स्वदेशी व्रतः—अपने विद्यार्थी जीवन से ही मालवीयजी का ध्यान स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग की ओर रहा है। आप तभी से स्वदेशी वस्तुओं और वस्त्रों का उपयोग कर रहे हैं। फिर स्वदेशी आन्दोलन के चलने पर आपने अथक परिश्रम से इस कार्य में हाथ बटाया। लोगों में इसका प्रचार करने तथा देशी कारीगरी की उन्नति तथा रक्षा लिये आपने पूर्ण प्रयत्न किया है।

धर्मः—मालवीयजी एक धर्म प्रधान व्यक्ति हैं। जीवन के प्रत्येक कार्य में धर्म आपकी प्रधान वस्तु है। सनातन धर्म पर आप पक्के रूप से आचरण करने वाले हैं। यही नहीं वरन् धर्म की उन्नति के लिये आपने सदा ही प्रयत्न किया है। आचार विचार में कट्टर से कट्टर होने पर भी आपका धर्म आपके हृदय की कोमलता तथा उदारता के कारण एक अत्यन्त उच्च कोटि का सनातन धर्म है। आपमें पण्डितों तथा मुल्लाओं की सी कट्टरता नहीं है और न आर्यसमाजियों की सी हठयुक्त धुन। समय के साथ प्रगति शीलता ही आपके धर्म का मुख्य अंग है।

रहन-सहनः—बिना किसी धब्बे या सिकुड़न के श्वेत अचकन और पाजामा, सिर पर वही चाँदनी सी निर्मल पेटेन्ट डिज़ाइन की पगड़ी और गले में दुपट्टा धारण किए-आपको इस वेष में भारत का शायद ही कोई शिक्षित पुरुष हो जो न पहिचान ले। इस सादा पर पूर्ण रूप से व्यवस्था युक्त

वेष में आपका दुबला पर स्वस्थ शरीर, गोरा रंग, ओज पूर्ण आनन तथा चन्दन चर्चित प्रशस्त ललाट नेत्रों के सामने भारतीय संस्कृति का एक सुन्दर सा चित्र खड़ा कर देता है। इसी वेष में आप लगभग ५० वर्ष से प्रत्येक राष्ट्रीय कार्य में भाग ले रहे है, और इसी में आपने पिछली गोल मेज़-परिषद् में इंगलड-यात्रा भी की तथा स्वर्गीय सम्राट् से भेएट की थी।

प्रभावशाली वक्तृत्वः— आपकी वाणी में वह मधुरता है कि जनता मंत्र-मुग्ध सी रह जाती है। आपका प्रत्येक शब्द हृदय के भीतरी कोने से आता है फलतः उसका प्रभाव मस्तिष्क पर ही नहीं वरन् हृदय पर भी पड़ता है। चन्दा एकत्रित करने में तो निस्सन्देह भारत में आपका जोड़ नहीं। उन धनवानों से जिनके पास गए हुए धन ने फिर सूर्य का प्रकाश नहीं देखा, आपने बड़े ही ढंग से थोड़ा नहीं वरन् लाखों की संख्या में रुपया लिया है काशी के उस विद्या मन्दिर के लिये। जनता इसी कारण आपको भिक्षु सम्राट् कहती है।

व्यक्तित्वः—'महात्मा गांधी का आत्मा प्रधान कहा जाता है, स्व० पं मोतीलाल नेहरू को मस्तिष्क प्रधान और मालवीयजी को हृदय प्रधान।' आपका हृदय नवनीत सा कोमल है, कोई भी करुण घटना आपके हृदय को द्रवीभूत कर सकती है। चाहे वह यूनीवर्सिटी के किसी अच्छे और योग्य विद्यार्थी की सहायता के लिए प्रार्थना हो अथवा देश की दरिद्रता के कारण कोई दुर्घटना। देश, समाज तथा जाति की सेवा की ओर अपना सारा जीवन लगाने में आपके हृदय की कोमलता ने आपको अपना

सर्वस्व निछावर करने के लिए बाध्य किया है यदि किसी कार्य को करने में आपको नियमों की कठोरता के कारण कोई कठोर व्यवहार करना पड़ता है तो उससे आपको हार्दिक कष्ट होता है।

चरित्र की स्थायी सम्पत्तिः—चरित्र के कांटे पर सोलह आने उतरने वाले महापुरुष ही गौरव और सन्मान के शिखर पर अधिक समय तक टिक सकते हैं। मालवीयजी का प्रत्येक कार्य स्थायी मूल्य रखता है। उनके कार्यों और शब्दों में अन्तर नहीं होता। उनका चरित्र किसी भी दृष्टि से विचारिये उस धवल वस्त्र के समान है जिसमें कलंक की कालिमा कभी छू तक नहीं गई।

दीर्घ जीवनः—संसारके महान् कार्यों के करने के लिए काफ़ी समय चाहिये। बहुत से लोग तो अपने सामाजिक जीवन के प्रभात में ही चल बसते हैं और अपने कार्यों का भार दूसरों पर छोड़ जाते हैं। ऐसे पुरुषों के कार्य संसार को अधिक लाभ नहीं पहुँचा पाते। यद्यपि जीवन और मरण का प्रश्न मनुष्य की शक्ति के बाहर की बात है तो भी बहुत सी ऐसी बातें होती हैं जिनका प्रभाव हमारे कार्यों पर पूर्ण रूप से पड़ता है मान लीजिये कोई अधिक समय तक भी जीवित रहे पर अस्वस्थ रह कर तो वह जीवन किस उपयोग का? मालवीयजी के जीवन में संयम, ब्रह्मचर्य, कार्य और विश्राम की उपयुक्त व्यवस्था, व्यायाम, स्वाध्याय, मनोरञ्जन सभी अपना उचित स्थान रखते हैं, यह नहीं कि एकको कम करके दूसरे को अधिकतम की जाय। इन्हीं बातों के फल स्वरूप आप अपने जीवन के ७५ वसन्त देख चुके हैं, और वह भी सदा ही पूर्ण स्वास्थ के साथ।

उपसंहार ।

एक अंग्रेज विद्वान् के कथनानुसार कुछ लोग 'महान्' पैदा ही होते हैं, कुछ स्वयं महानता प्राप्त करते हैं, और कुछ ऐसे होते हैं जिनके सिर महानता जबरदस्ती रख दी जाती है। मालवीयजी द्वितीय श्रेणी के अर्थात् अपने कार्यों द्वारा महानता प्राप्त करने वाले लोगों में हैं। एक साधारण स्थिति के परिवार में पैदा होकर जो मनुष्य इस भांति सार्वजनिक श्रद्धा का पात्र बन जावे, तथा जिसके जीवन काल में ही उसकी कीर्ति-स्तम्भ इतनी दृढ़ता के साथ गड़ जाय कि भविष्य की सैकड़ों सदियां उसे और भी अक्षय बनावें और इतिहास के पृष्ठ उसकी रक्षा करें उसमें वास्तव में कुछ ऐसे विशेष गुण अवश्य होने चाहिये जिनके कारण उसने इतनी उन्नति प्राप्त की हो। मालवीयजी के जीवन पर दृष्टिपात करने से उनमें कुछ ऐसे ही गुणों का समूह मिलता है।

एक कहावत है 'अपना लक्ष ऊंचा रखो और तुम्हें सफलता प्राप्त होगी।' आप इसका स्वयं एक आदर्श उदाहरण हैं।

"उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूति कर्मसु।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः॥"

अर्थात्, "जागो, उठो और अपने आपको बिना रुके और पूर्ण साहस के साथ उन्नति दायक कार्यों में लगाओ, साथ ही

और भारत-माता गौरवान्वित हो" यह विचारसंग्रह मालवीयजी का जीवन मंत्र रहा है।

विचारों की उच्चता के साथ आपमें दृढ़ इच्छा शक्ति भी है, यह नहीं कि आज यह कल्पना-भवन बनाए और कल वह। अपने इन्हीं विचारों को आपने घोर कर्मठता के साथ कार्यरूप में परिणत किया है। जिस कार्य को आपने प्रारंभ किया उसमें अपनी मधुर वाणी से दूसरों को भी प्रभावित कर उन्हें अपना साथी बना लिया। आपकी जादूभरी वाक्शक्ति ने लोगों पर वह प्रभाव डाला कि उन्होंने तन, मन और धन सभी प्रकार से पूर्ण सहायता दी। जनता को आपके निर्मल चरित्र के कारण आप पर सदाही पूर्ण विश्वास रहा है।

ऊपर लिखे गुणों के कारण आप अपने जीवन काल में ही अपने कार्य-क्षेत्र के आशा वृक्षों को पूरे रूप से फलता फूलता देख रहे हैं। पर इन सब बातों के साथ साथ आपका स्वास्थ्य एवं दीर्घ जीवन भी इन सब कार्यों की सफलता में एक विशेष स्थान रखता है।

आपके पूर्ण सफल जीवन से हमें शिक्षा मिलती है कि हम किस तरह अपने जीवन को उपयोगी बनावें और हिन्दी, हिन्दू और हिन्द की सेवा करते हुए मनुष्य जीवन को सार्थक बनावें। भगवान् देश की इस उज्ज्वल विभूति की, इस शताब्दी के इस सच्चे कर्मवीर की, शतायु होने की इच्छा को पूर्ण करें।

मुद्रकः—कुँवर सरदारमल थानवी,
श्री सुमेर प्रिंटिंग प्रेस, फुला-रोड, जोधपुर।

जापानके गाँधी कौन ?

लेखक-
विशाल-भारत-सम्पादक
श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी

सम्पादक—
श्रीनाथ मोदी 'विशारद'
इन्स्ट्रक्टर, गवर्नमेण्ट टीचर्स ट्रेनिङ्ग स्कूल जोधपुर.

ज्ञान माला के ट्रैक्टों पर कुछ अभिमत.

सरस्वती—ट्रैक्ट जनता में वितरित होने चाहिये।

सैनिक सभी पुस्तकें शिक्षाप्रद और उपयोगी हैं।

सुधा—विश्वास है ट्रैक्टों का समाज स्वागत करेगा।

नव-राजस्थान—ट्रैक्टों का प्रचार होना चाहिये।

१॥) भेजकर घर बैठे ज्ञान-माला के ३२ ट्रैक्ट पढ़िये।

प्रकाशक—
धीरजमल बच्छावत
ज्ञान भण्डार जोधपुर.

...-१ १९३८ ई० } कागावाँक (पृष्ठ २८) { प्रचारार्थ तीन पैसे

मुद्रक—कुं० सरदारमल थानवी.
श्री सुमेर प्रिंटिंग प्रेस, फुल्लारोड़ जोधपुर.

ज्ञान-माला के नियम

१ इस माला द्वारा समय समय पर कला, धर्म, विज्ञान, शिक्षा, समाज व साहित्य विषयक उपयोगी एवं ठोस ट्रैक्ट प्रकाशित होंगे। राजनैतिक विषयों से इस माला का कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा।

२ स्थाई ग्राहकों से १ से लेकर ५२ ट्रैक्टों को घर बैठे पहुंचाने का मूल्य सिर्फ १॥

३ स्थाई ग्राहकों को अपने पते के परिवर्तन की सूचना अवश्य दे देनी चाहिये।

४ स्थाई ग्राहकों के नाम पूरे पते सहित ट्रैक्टों में एकबार छपेंगे।

५ जीवनोपयोगी ठोस निबन्ध भेजने वाले लेखकों को पारश्रमिक अवश्य दिया जायगा। प्रकाशन का सर्व अधिकार ज्ञान भण्डार जोधपुर को रहेगा। शीर्षक प्रश्नवाची हों।

६ फुटकर पुस्तक लेने वालों को प्रति ट्रैक्ट तीन पैसे और डाक खर्च प्रति ट्रैक्ट एक पैसा देना होगा। बाहर वालों को प्रति ट्रैक्ट एक आने के हिसाब से डाक टिकिट भेजने चाहिये।

७ जो सज्जन प्रचारार्थ बांटने के लिये सात सेट के स्थाई ग्राहक बनेंगे उनसे सिर्फ १०) लिये जायेंगे और उनका नाम हर ट्रैक्ट पर सहायक श्रेणी में छपता रहेगा। १०) में ३२४ पुस्तकें बांट कर साहित्य प्रचार में सहयोग दीजिये।

८ ज्यों ज्यों ट्रैक्ट छपेंगे स्थाई ग्राहकों को डाक से भेज दिये जावेंगे। सूची अन्तिम पृष्ठ पर देखिये।

तमाम पत्र व्यवहार इस पते से करिये—

ज्ञान भण्डार, जोधपुर

जापान के गांधी कौन ?

ई० १६१४

कोबेका एक गिरजाघर आज खूब सजा हुआ है। पादरी डाक्टर मेयर्स और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मेयर्स बडी खुशी में इधर-से-उधर घूम रहे हैं। आज उनके एक जापानी शिष्य और मित्रका विवाह है। गिरजेमें सुन्दर-से-सुन्दर पुष्प इकट्ठे किये गये हैं। फूल बेचनेवाली लडकियाँ रंग-बिरंगे कपड़े पहने हुए एक पंक्तिमें खड़ी हैं। वह देखिये, दूल्हा और दुलहिन भी आ पहुँचे। वैवाहिक शपथकी क्रिया समाप्त हुई। बाजे बजने लगे। चारों ओर हर्षका साम्राज्य है। दूल्हेके चेहरेसे प्रकट होता है कि वह दृढ़प्रतिज्ञ पुरुष है, और दुलहिनके मुखपर विनम्रता तथा आज्ञाकारिता झलक रही है। दो रिक्शा-कुली इस दम्पति को घर पहुँचानेके लिए बुलाये गये।

दूल्हेने रिक्शेवालोंसे कहा—"चलो भाई, ले चलो शिकावा बस्तीको।"

रिक्शेवालों के आश्चर्यकी सीमा न रही। उन्होंने एक बार सुशिक्षित दूल्हेको देखा और फिर दुलहिनको, और तब सोचने लगे—'कहाँ ये भले आदमी और कहाँ शिकावाकी गन्दी बस्ती, जहाँ निर्धन मजदूर, वेश्याएँ, चोर उठाईगीरे और उचक्के रहते हैं! मामला ज़रूर कुछ गड़बड़ है।' रिक्शेवालोंने एक दूसरेकी ओर देखा और साफ़ मना कर दिया! पर यह दम्पति शिकावा को ही गये। दूल्हेका नाम था कागावा और दुलहिनका स्प्रिंग (बसन्ती देवी)।

श्रीमती वसन्ती देवीने आकर पतिकी कोठरी देखी। उसका विस्तार था ६ फीट लम्बाई × ६ फीट चौड़ाई ! और उनकी ससुरालमें कितने व्यक्ति थे ? ७० वर्ष का एक बूढ़ा और ६०-६५ वर्षकी एक बुढ़िया १८ वर्षका एक अपराधी लड़का, एक अनाथ माता और उसके चार बच्चे और एक भिखारिन ! वहाँ तो खड़े होनेको भी जगह नहीं थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह सारा कुटुम्ब 'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्'के सिद्धान्त के अनुयायी कागावाका परिवार था। किसी नई वहूके सामने ऐसी जटिल समस्या शायद ही उपस्थित हुई हो।

शिकावाकी एक झलक

कागावाकी आमदनी कुलजमा तीन पौण्ड यानी करीब पैंतालीस रुपये थी, और इतने ही में ११ प्राणियों का पेट भरना था। सबसे पहला काम वसन्ती देवीने यह किया कि बाज़ारसे सस्ते-से-सस्ते दरके चावल लाई और बिना माँड निकाले उन चावलोंको सस्ती तरकारियोंके साथ भोजनके समय देना प्रारम्भ किया। अब ज़रा शिकावा बस्तीका हाल भी सुन लीजिए। चारों तरफ गन्दगी और दुर्गन्धिका राज्य था। पाखाना एक था और उसका प्रयोग सौ आदमियों द्वारा होता था। कपड़ोंको एक छोटी सी गलीमें धोना पड़ता था और उनके सुखाने के लिए कोई जगह नहीं थी। खटमलोंकी भरमार थी, और वे अमर थे—जितने ही मारो, उतने ही बढ़ते थे।

भिखारी हर वक्त दरवाज़ेपर खड़े ही रहते थे। कभी कोई गुण्डा शराब पिये उधर से आ निकलता था, तो कभी कोई बदमाश छुरी खींचकर कहता था कि इतने रुपये धर दो, नहीं तो

तुम्हारा अभी खातमा करता हूँ ! कागावाके लिए उन लोगोंको समझाना बुझाना कठिन हो जाता था, और वे कुछ दे-दिलाकर अपना पिंड छुड़ाते थे। अतिथियोंका क्या पूछना। कभी कागावा किसी ग़रीब को अपने घर ले आते, तो कभी किसी बीमारको, कभी कोई अपराधी बालक आता, तो कभी जेलसे छूटी हुई कोई चिड़िया; कभी बीमार वेश्याएँ आश्रय लेतीं, तो कभी कोई पागल आ विराजता। एक मुश्किल और भी थी। कागावा Strict vegetarian (पूर्णतया शाकाहारी) हैं, और दूसरे जापानी उनके इस सिद्धान्तके अनुयायी नहीं थे। पर पतिव्रता बसन्ती देवीने कभी चूँ तक नहीं की, और सहृदयतापूर्वक वे अपना सारा काम करती रहीं। वे आसपासके ग़रीब पड़ोसियोंके घरपर जाती, बीमारों की सेवा-शुश्रूषा करतीं, प्रसूतिके समय माताओं को मदद करतीं, नन्हे-नन्हे बच्चोंकी देखभाल करतीं और इसके सिवा समय-समय पर उन्हे उपयोगी सलाह-मशविरा भी देतीं। बसन्ती देवी यद्यपि शिक्षित थीं, पर उनको उच्चशिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। अब उन्होंने इस कमीको भी पूरा करने का प्रयत्न किया। कागावा दो मज़दूर विद्यार्थियो को प्रातःकालमें ६ से ७ बजे तक और शाम का ५ से ६ बजे तक अंकगणित, रेखागणित, बीजगणित तथा अन्य विषय पढ़ाते थे। श्रीमती कागावा इस कक्षामें शामिल हो गईं और तीसरे पहर को कोबे-स्त्री-समाजके स्कूल में जाकर बाइबिल पढ़ने लगीं। आगे चलकर उन्होने बड़ी उम्रमें मैट्रिक परीक्षा पास की और याकोहामा में तीन वर्ष अध्ययन करके ग्रेजुएट बन गईं। उन्होंने दो पुस्तकें भी लिखी हैं। एक में तो उन्होंने फैक्टरी में काम

करने वाली लड़कियों का हाल लिखा है और दूसरी में गन्दे मुहल्लों का चित्र खींचा है। इन गन्दे मुहल्लोंमें जो भयकर वेश्या-वृत्ति चलती है, उसके विषय में उन्होंने एक लेख किसी पत्र में लिखा था। इससे किसी वेश्यालयके स्वामी को क्रोध आ गया और मौका देखकर वह कागावाके घरपर आया और श्रीमती कागावाको अकेली पाकर ख़ूब पीटा !

साधना का परिणाम

अपने जीवनके पन्द्रह वर्ष कागावाने इस कोठरीमें बिताये थे, और उसका परिणाम जो हुआ, वह भी सुन लीजिए। कागावाके ग्रन्थों को पढ़कर, उनके व्याख्यानों को सुनकर और उनके जीवन को देखकर जापान की जनता का ध्यान इन गन्दे मुहल्लों की ओर आकर्षित हुआ। सन् १९२६ में जापान-सरकार ने यह निश्चय किया कि २ करोड़ ४० लाख रुपये ख़र्च करके जापानके ६ बड़े-बड़े नगरोंके (टोक्यो, ओसाका, योकोहामा, कोबे, क्योटो और नागोयाके) गन्दे मुहल्लोंको साफ़ कर दिया जाय। आज इन नगरोंमें से किसीमें गन्दे मुहल्लोंका नामो-निशान नहीं रहा। कागावाकी वह ६ वर्गफीटकी कोठरी चली गई और अपने साथ ही ६ महानगरोंके गन्दे मुहल्लोंको भी लेती गई! उस महान साधकका, जिसकी तपस्याने यह सब सम्भव किया, पुण्यचरित संक्षेपमें 'ज्ञान-माला' के पाठकों को सुनाया जाता है।

जन्म और बाल्यावस्था

कागावाका जन्म १० जुलाई सन १८८८को कोबेमें हुआ था। उनका पूरा नाम है टोयोहिको कागावा। उनके पिता पहले

अवा प्रान्तमे उन्नीस गॉवोंके मुखिया थे, और बादमें बढ़ते-बढते वे प्रिवी कौन्सिलके सेक्रेटरी बना दिये गये। उनका यह पद उतनाही उच्च समझा जाता था, जितना मन्त्रिमण्डलके किसी सदस्यका। इस पदपर रहते हुए उनका परिचय बड़े बडे लोगोसे हुआ, पर भाग्यके वे ओछे थे। थोड़े दिनों बाद उन्होंने व्यापार करना शुरू किया और परिणाम-स्वरूप पासकी जमा-पूँजी भी गँवा बैठे। कागावाका चरित्र उस ज़मानेके बड़े आदमियोंकी तरहका था। पञ्चमकारके वे बड़े प्रेमी थे। उन्होंने अपनी पत्नीको तो घरपर रख छोड़ा था और कोबेमें कई औरतें रखली थीं। इन रखेलियोंमें एक स्त्री बड़ी सुन्दर थी। इससे उनके चार सन्तानें हुई, जिनमें एकका नाम पडा टोयोहिको। टोयोहिको बडा होनहार बालक था, इसलिए पिता-जीने उसे जारज सन्तान बनाये रखना पसन्द न किया और क़ानूनन गोद ले लिया। भोगविलासपूर्ण जीवनका जो परि-णाम होना था, वही हुआ। जब यह बालक चार वर्षका ही था कि पिताजीका देहान्त हो गया और माता भी उसी समय चल बसी। कागावा अपनी बड़ी बहनके साथ अपनी सौतेली मा तथा दादीके पास रहनेके लिए गाँवको भेज दिये गये।

दादी का निर्दय शासन

ये दोनों स्त्रियाँ बिलकुल एकान्तमे नीरस जीवन व्यतीत कर रही थीं। घर क्या था, उजड़ा हुआ बगीचा था। पुत्रहीन मा और विधवा पत्नीकी दशा दयनीय थी। उन दोनोंको इन भाई-बहनका आना भार-स्वरुप प्रतीत होने लगा। सौतेली मा तो कभी कागावासे बोलती ही नहीं थी, और दादीकी गाली-

गलौजके मारे दोनों बच्चोंकी जान आफतमें थी। कभी कागावा सोतेमें बिस्तरपर ही पेशाब कर देता था। इसके लिए बेचारे चार वर्षके बच्चेकी काफी पिटाई होती थी, और किसी गरम चीजसे वे झुलसाये भी जाते थे, जिससे उनकी यह आदत छूट जाय। बहन कुछ झक्की-सी थी। घरके पिछवाड़े कोनेमें बैठे-बैठे आँसू बहाना उसका नित्यप्रतिका काम था। वह निरन्तर बीमार रहा करती थी। कागावाको बेचारी प्रेम भी क्या कर सकती थी। दादी उसे मज़दूरनी समझकर कठोर-से-कठोर काम लेती थी और हर रोज़ उसे पीटती भी थी। बहनको निर्दयतापूर्वक पिटते देखकर कागावाका हृदय विचलित हो उठता था; नतीजा यह होता था कि दादी उसे घरके बाहरकी अँधेरी कोठरीमें बन्द कर देती थी! उन जेलखानोंकी याद कागावाको इतने दिनों बाद भी आ जाती है। उन दिनों बेचारा कागावा घरसे भागकर पासके वेणु-कुंजमें आश्रय लेता अथवा नदी तटपर घूम घूमकर अपना वक्त काटता। हाँ, जब कभी कोई अतिथि घर पर आता, तो सौतेली मा और दादी दिखावटके लिए उनके सामने कागावाको बड़ा प्रेम करने लगतीं। उस समय तो वे दयाकी अवतार बन जातीं। कागावाके अन्धकारमय जीवनमें उन दिनों प्रकाशकी एक किरण झलक जाती।

स्कूल में

चार वर्ष नौ महीनेकी उम्रमें वे एक प्रारम्भिक पाठशालामें भर्ती कराये गये और वहाँ अन्य बच्चोंके साथ पढ़ने लगे। चूँकि घरपर उनके साथ अत्यन्त कठोरताका बर्ताव किया जाता था,

इसलिए उनके हृदयमें अपनेको अत्यन्त क्षुद्र समझनेकी भावना इतनी छोटी उम्रमें ही पैदा हो गई थी, जिसका परिणाम यह हुआ कि वे अन्य बच्चोंके साथ हिल-मिल नहीं सके। हाँ, एक किसानके लड़केसे, जो उनसे दो वर्ष उम्रमे बड़ा था, उनकी मित्रता अवश्य हो गई। इस लड़केका पिता कागावाकी ज़मीनपर ही खेती करता था और वही एक कच्चे मकानमे रहता भी था। यद्यपि सांसारिक पोज़ीशनके ख़यालसे दोनोमे महान अन्तर था; पर आत्माओंके राज्यमे इस प्रकारकी असमानताका अस्तित्व ही नही रहता। कनफ्यूसिश्के ग्रन्थ पढ़नेके लिए वे बौद्ध मन्दिरोंमें भेजे जाते थे, और उनके जीवनपर इस शिक्षाका काफ़ी प्रभाव पड़ा है।

जब कभी कोई बौद्ध त्यौहार आता, तो उन्हें एकाध पैसा मिल जाता। आज भी कागावा उस प्रसन्नताका स्मरण कर लेते हैं, जो उन्हें पैसा मिलनेपर होती थी। वे भागते हुए मन्दिरपर जाते और कोई खिलौना ख़रीद लेते। बच्चोंको मिठाईका शौक हुआ ही करता है, कागावाको भी था। इसलिए वे चोरीसे दियासलाईकी डिबियामें शक्कर भरकर ले जाते और किसी खेतमें जाकर खाते! यद्यपि कागावाको स्कूलकी पढ़ाईका काम पसन्द थी; पर उनकी रुचि खेतीकी ओर थी, और धानकी बुआईके वक्त वे बराबर किसानोंके लड़कोंके साथ ही रहते थे। धानकी कटाईके समय भी छोटा-सा हँसिया लिये हुए वे बराबर मौजूद रहते थे। धानके पौधोंसे वे खड़ाऊँ बनाते थे और अपने पहननेके लिए कपड़ा भी बुन लेते थे। मछली पकड़ना

गलौजके मारे दोनों बच्चोंकी जान आफतमें थी। कभी कागावा सोतेमें बिस्तरपर ही पेशाब कर देता था। इसके लिए बेचारे चार वर्षके बच्चेकी काफी पिटाई होती थी, और किसी गरम चीजसे वे झुलसाये भी जाते थे, जिससे उनकी यह आदत छूट जाय। बहन कुछ झक्की-सी थी। घरके पिछवाड़े कोनेमें बैठे-बैठे आँसू बहाना उसका नित्यप्रतिका काम था। वह निरन्तर बीमार रहा करती थी। कागावाको बेचारी प्रेम भी क्या कर सकती थी। दादी उसे मज़दूरनी समझकर कठोर-से-कठोर काम लेती थी और हर रोज़ उसे पीटती भी थी। बहनको निर्दयतापूर्वक पिटते देखकर कागावाका हृदय विचलित हो उठता था, नतीजा यह होता था कि दादी उसे घरके बाहरकी अंधेरी कोठरीमें बन्द कर देती थी! उन जेलखानोंकी याद कागावाको इतने दिनों बाद भी आ जाती है। उन दिनों बेचारा कागावा घरसे भागकर पासके वेणु-कुंजमे आश्रय लेता अथवा नदी तटपर घूम घूमकर अपना वक्त काटता। हाँ, जब कभी कोई अतिथि घर पर आता, तो सौतेली मा और दादी दिखावटके लिए उनके सामने कागावाको बड़ा प्रेम करने लगती। उस समय तो वे दयाका अवतार बन जाती। कागावाके अन्धकारमय जीवनमें उन दिनों प्रकाशको एक किरण झलक जाती।

स्कूल मे

चार वर्ष नौ महीनेकी उम्रमें वे एक प्रारम्भिक पाठशालामें भर्ती कराये गये और वहाँ अन्य बच्चोंके साथ पढ़ने लगे। चूँकि घरपर उनके साथ अत्यन्त कठोरताका वर्ताव किया जाता था,

इसलिए उनके हृदयमें अपनेको अत्यन्त क्षुद्र समझनेकी भावना इतनी छोटी उम्रमें ही पैदा हो गई थी, जिसका परिणाम यह हुआ कि वे अन्य बच्चोंके साथ हिल-मिल नहीं सके। हाँ, एक किसानके लड़केसे, जो उनसे दो वर्ष उम्रमे बड़ा था, उनकी मित्रता अवश्य हो गई। इस लड़केका पिता कागावाकी ज़मीनपर ही खेती करता था और वहीं एक कच्चे मकानमें रहता भी था। यद्यपि सांसारिक पोज़ीशनके ख़यालसे दोनोंमे महान अन्तर था; पर आत्माओंके राज्यमें इस प्रकारकी असमानताका अस्तित्व ही नहीं रहता। कनफ्यूसियसके ग्रन्थ पढ़नेके लिए वे बौद्ध मन्दिरोंमें भेजे जाते थे, और उनके जीवनपर इस शिक्षाका काफ़ी प्रभाव पड़ा है।

जब कभी कोई बौद्ध त्योहार आता, तो उन्हे एकाध पैसा मिल जाता। आज भी कागावा उस प्रसन्नताका स्मरण कर लेते हैं, जो उन्हें पैसा मिलनेपर होती थी। वे भागते हुए मन्दिरपर जाते और कोई खिलौना ख़रीद लेते। बच्चोंको मिठाईका शौक हुआ ही करता है, कागावाको भी था। इसलिए वे चोरीसे दियासलाईकी डिबियामें शक्कर भरकर ले जाते और किसी खेतमें जाकर खाते! यद्यपि कागावाको स्कूलकी पढ़ाईका काम पसन्द थी; पर उनकी रुचि खेतीकी ओर थी, और धानकी बुआईके वक्त वे बराबर किसानोंके लड़कोंके साथ ही रहते थे। धानकी कटाईके समय भी छोटा-सा हँसिया लिये हुए वे बराबर मौजूद रहते थे। धानके पौधोंसे वे खड़ाऊँ बनाते थे और अपने पहननेके लिए कपड़ा भी बुन लेते थे। मछली पकड़ना

और पक्षियोंका पालना भी उनके ही सुपुर्द था। घरके घोड़ेके लिए घास खोदनेको कागावा ही भेजे जाते थे, और यह काम उन्हे पसन्द भी था। घोड़ेसे उन्हें प्रेम था, और सिरपर घास का गट्ठा लादे हुए जब वे घर लौटते थे तब उनके मनमें स्वभावतः यह इच्छा उत्पन्न होती थी कि शाबाशीका एक शब्द भी उन्हे माता या दादीके मुँह से सुननेको मिल जाता; पर वहाँ तो इसका भी टोटा था।

निर्दोषपर अपराध

इन दिनों कागावाके जीवनमे एक ऐसी दुर्घटना हुई कि उसकी याद वे अभी तक नहीं भूले। पड़ोसकी एक लड़कीके कहीं जोरकी चोट आ गई थी और वह उसकी वजहसे मृत्यु-शय्यापर लेटी हुई थी। गाँववालोंने झूठमूठको कागावाका नाम ले दिया। इस सोलह-आने असत्य समाचारसे—अनभ्र वज्रपात से—कागावाके हृदयको बड़ा धक्का लगा। उनके कोमल हृदयमें मानो किसीने पैनी कटारी चुभा दी। उन्हें पता लग गया कि घरवाले हो नहीं, गाँववाले भी उनसे घृणा करते हैं। एक दिन तो उन्होंने खाना छुआ भी नहीं और तीन दिन तक बराबर रोते रहे। कागावाके पास उस समय सात-आठ रुपये थे, सो उन्होंने जाकर उस लड़कीको दे दिये, यद्यपि वे जानते थे कि वे सर्वथा निरपराध हैं। लड़कीके माता-पितासे उन्होंने क्षमा-याचना भी की। कागावा उस समय दस-ग्यारह वर्षके थे; पर अड़तीस-उनतालीस वर्ष पहलेकी यह दुर्घटना उन्हें आज भी याद है। बेकसूर होनेपर जो इलज़ाम उनपर लगाया था, उसने उनके हृदयको घायल कर दिया, और आज भी वह घाव पूरा नहीं है।

कागावाके एक बड़ा भाई भी था; पर वह ज़मींदारीके व्यसनोंमे फँसा हुआ था, और थोड़े ही दिनोंमे उसने सारी जमीन-जायदाद फूँक डाली। कागावाने अपने भाईसे कहा—"मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं इस ग्रामको छोड़कर बाहर जा रुकूँ। यहाँ मेरा मन नही लगता।" आज्ञा मिलनेपर कागावा निकटके टोकूशिमा नामक नगरको चले आये।

मिडिल स्कूलमे

अब छोड़कर कागावा टोकोशिमाके मिडिल स्कूलमें भरती हो गये। यहाँ भी उन्हें कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। उनकी उम्र अन्य लडकोंके देखे कई वर्ष कम थी, इसलिए उन्हे मजाक का पात्र बनना पड़ता था। बड़े लड़कोंकी चारित्रिक कमज़ोरियो को देखकर उनके हृदयमें घृणाका संचार हो गया। कागावाने सोचा था कि स्कूलमें नये-नये लड़कोंसे मित्रता करनेका सौभाग्य प्राप्त होगा, और इस प्रकार उनकी आत्माको प्रेमकी जो भूख वर्षोंसे लगी हुई थी, उसकी तृप्ति कुछ अंशोंमें तो हो ही जायगी, पर यहाँ मामला उल्टा ही हुआ! अपने ग्रामपर उन्हें प्रकृति माताकी गोदमें रहने का अवसर तो प्राप्त होता था, वहाँ वह भी हाथसे चला गया और छात्रालयके लड़कोंसे भी प्रेमपूर्ण सम्बन्ध भी स्थापित न हो सका। यह काल कागावाके जीवनमें अत्यन्त निराशाका था।

पादरियोंका प्रेमपूर्ण व्यवहार

इन दिनों कागावाका परिचय अपने स्कूलके ईसाई शिक्षक श्री काटायामासे हुआ; और कुछ दिनों बाद उनका सम्बन्ध डाक्टर मायर्स और डाक्टर लोगनसे हो गया। दोनों पादरियोंने

कागावाके जीवनमें एकदम क्रान्ति ही उत्पन्न कर दी। इन दोनों पादरियोंके यहाँ कागावाका हृदयसे स्वागत होता था। पादरी साहब बड़े प्रेमके साथ उन्हें चाय पिलाते, रोटी खिलाते और गाना भी सुनवाते। कहाँ तो छात्रालयका शुष्क जीवन और कहाँ पादरियोंके घरका प्रेमपूर्ण व्यवहार ! यहाँ कागावा बाइबिल भी पढ़ने लगे। जब यह समाचार उनके चाचाको लगा (कागावा अब उन्हींके अतिथि थे),तो उन्होंने कागावाको बहुत समझाया-बुझाया, डराया-धमकाया कि अगर तुम ईसाईयोंके चक्करमें पड़े, तो पिताकी बची खुची जायदादसे भी वंचित कर दिये जाओगे। पर कागावाने उनकी एक न सुनी, और चाचाने उन्हें अपने घरसे निकाल दिया !

कालेजमें अध्ययन

सन् १६०५ में कागावा टोकयो के प्रेसबीटेरियन कालेजमें भर्ती हो गये। उन्हे पढ़नेका ख़ब्त था, और दो वर्षके भीतर उन्होंने कालेजकी लाइब्रेरीके प्रायः सभी महत्वपूर्ण ग्रन्थ पढ डाले। क्लासमें उनकी उपस्थितिसे अनेक शिक्षक घबराते थे, क्योंकि कई विषयोंपर उनका ज्ञान अनेक अध्यापकोंकी अपेक्षा अधिक था। कागावाके साथी विद्यार्थी तो उन्हें देखकर आश्चर्य करते थे। कागावा जुंगी आदमी थे, जिस विषयसे प्रेम होता उसे पढ़ते और जिस विषयके प्रति रुचि न होती उसे छोड़ देते। नतीजा यह होता कि किसी-किसी विषयमें वे क्लासमें फिसड्डी रह जाते। इसके सिवा कागावामें एक झक और भी थी; जो सद्भाव उनके मनमें आते, उन्हें वे कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए भी उद्यत रहते थे। कहींपर एक बिल्ली का बच्चा मोरीमें

डूब रहा था। आप उसे उठा लाये और नहलाकर उसे अपने कमरेमें रख लिया! एक मरघिल्ले कुत्तेको भी, जो न घरका था और न घाटका, आपने अपनी संरक्षकतामें लेलिया! जब साथके छात्रोंने इस पागलपनका विरोध किया, तो आपने कहा—"किसी सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट कुत्ते को तो चाहे जो प्रेम कर सकता है, पर इस अभागे लेंडी कुत्तेकी चिन्ता कौन करेगा?" कुत्ते और बिल्ली तक तो ग़नीमत थी; पर अबकी बार कागावाने एक और भी अधिक आपत्तिजनक काम किया। आप रास्तेपर से एक भिखारी को ले आये और उसे अपने कमरेमें स्थान दे दिया और उसे अपने पाससे भोजन भी कराने लगे, मानो वह उनका भाई ही हो। जो थोड़ेसे रुपये उन्हे मिलते थे, उनमें से भी वे दान दे देते थे; यहां तक कि अपने जूते और कपड़े भी दे डालते थे। अपनेसे भी ग़रीब विद्यार्थियोंकी सेवा करनेके लिए वे उद्यत रहते थे।

विद्यार्थियों द्वारा मरम्मत

टाल्सटायके ग्रन्थोंको पढ़कर कागावा अहिंसावादी बन गये। उन दिनों रूस-जापानका युद्ध हो रहा था। कालेजकी मीटिंगमें कागावाने युद्धका विरोध और शान्तिका समर्थन किया। नतीजा यह हुआ कि साथी विद्यार्थियोंने उन्हें देशद्रोहीकी उपाधि दे डाली और उनसे सब सम्बन्ध तोड़ दिया। विद्यार्थियोंको यह आशा थी कि कागावा दब जायँगे; पर वे दबनेवाले नहीं थे। आखिर उन्होंने एक षड्यन्त्र किया। रातके वक्त वे कागावाको भरमाकर कालेजके बाहर खेलनेकी जगहपर लेगये, और वहाँ बीस विद्यार्थियोंने उनकी अच्छी तरह मरम्मत की। "इस विश्वास-घाती" 'देशद्रोही', 'शान्तिवादी' की अच्छी तरह ख़बर लो।"

कहकर जब उनके साथी उनपर घूँसोंकी बौछार कर रहे थे, उस समय कागावा हाथ जोड़े हुए खड़े थे और कह रहे थे— "परम पिता! इन्हें क्षमा करो, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे है?" इन पीटनेवालोंमें धर्म-विज्ञान-कक्षाके विद्यार्थी भी थे!

क्षयरोग

कालेजमें जब वे द्वितीय वर्षमे थे, तब उन्हे क्षयकी बीमारी हो गई। मुँहसे खून गिरने लगा, इसलिए उन्हे कालेज छोड़कर समुद्रतटके एक ग्राममें जाकर रहना पड़ा। यहाँ रहते हुए उन्होने अपने प्रथम उपन्यासका प्रारम्भ किया। जिस उपन्यासने आगे चलकर उन्हे जापानके सर्वश्रेष्ठ लेखकोंकी श्रेणीमें बिठला दिया, वह अत्यन्त निर्धनताकी दशामें लिखा गया था, यहाँ तक कि उस समय उनके पास लिखनेके लिए कागज़ भी नही था। पुराने रद्दी मासिक पत्रोंके पृष्ठोंपर कूचीसे यह उपन्यास लिखा गया था। अपनी दृढ़ इच्छाशक्तिके कारण ही कागावा क्षय-जैसी भयंकर बीमारीके चक्करसे छूट सके।

गन्दी वस्तीकी ओर

सन् १९०९ का बड़ादिन कागावाके जीवनका एक महत्वपूर्ण दिवस है। उस दिन उन्होंने अपनी गठरी उठाकर गाड़ीपर रख दी और कालेज से सीधे शिंहकावाकी गन्दी वस्तीकी ओर चल पड़े। जिस कोठरीको उन्होंने अपना निवास-स्थान बनाया, उसका क्षेत्रफल था ३६ वर्ग फीट, यानी वह दो गज लम्बी थी और दो गज चौड़ी। उस कोठरीमें कुछ दिन पहले एक खून हो चुका था। लोगोंमें यह भी अफवाह फैली हुई थी कि उसमें भूत रहते है, और वह इसी लिए खाली पड़ी हुई थी।

व्यापारमें मन्दी आ जानेके कारण भिखमंगोंकी संख्या और भी बढ़ गई थी। उन्होंने कागावाको घेरना शुरू किया। कैसे-कैसे आदमियोंको कागावाने आश्रय दिया, उनका ब्यौरा भी सुन लीजिए:—

एक लड़केके तमाम शरीरपर खुजली हो रही थी। उसने शरण ली। कागावाने उसे अपनी कोठरीमें रख लिया। नतीजा यह हुआ कि कागावा को भी खुजली हो गई।

एक शराबी आदमी कई महीने इस कोठरीमें रहा।

एक हत्यारा था जो जेल भी काट चुका था और जिसके दिलमें यह भय बैठ गया था कि मेरे द्वारा मारा हुआ आदमी भूत बनकर पीछा कर रहा है। यह कागावाके पास ही सोता था और डरके मारे कागावाका हाथ किचकिचाके पकड़ लेता था!

एक आदमीने आकर कहा कि कई दिनसे मुझे पानीके सिवा कुछ भी नहीं मिला। उसे भी कागावाने आश्रय दिया।

इस प्रकार कागावाके कुटुम्बमें चार आदमी हो गये। उन्हें अपने धर्म-विज्ञान-कालेजसे कुलजमा २२ शिलिंग यानी सोलह रुपये प्रतिमासका वज़ीफा मिलता था। उसमें चार आदमियोंकी गुज़र करना मुश्किल हो गया। इसलिए उन्हें १५) महीनेपर लालटेन साफ़ करनेका काम करना पड़ा।

एक बार तो इस कोठरीमें दस आदमी आ घुसे! कहीं बैठने को भी जगह नहीं रही। आखिर एक दीवार तोड़ डाली गई। एक आदमी तो उनमें क्षयके रोगसे पीड़ित था, और उसके कपड़े कागावा खुद अपने हाथ से धोते थे। एकका दिमाग़

ठिकाने नहीं रहा था; गोकि वह काफी पढ़ा-लिखा था, पर उसके घरवालोंने तथा दोस्तोंने भी उसे छोड़ दिया था। एक बीमार वेश्या थी, जिसे सिफलिसका रोग था।

एक भिखारी था, जिसकी आँखोंमें ट्रेकोमाकी बीमारी थी। कागावाको भी यह भयंकर बीमारी लग गई और इससे उनकी दृष्टि अत्यन्त मन्द पड़ गई है!

एक भिखारीने आकर कहा—"तुम बड़े ईसाई बनते हो! तब तो मैं जानूँ, जब अपना कुरता मुझे दे दो!" कागावाने उसे अपना कुरता दे दिया। दूसरे दिन अपना कोट और पाजामा भी उसके हवाले कर दिया।

किसीने यह झूठी ख़बर फैला दी कि कहींसे कागावाको बहुत-सा रुपया ग़रीबोंकी सेवामें ख़र्च करनेके लिए मिला है। बस, फिर क्या था, जुआरियोंके सरदारने उनकी कोठरीपर धावा बोल दिया और ४५ रुपये माँगे। कागावा कुछ बहाना बनाकर बाहर निकले और वहाँसे भागे। उस धूर्तने पाँच गोली कोठरीके दीवारमें दागी और एक भिखारीसे कहा—"जब कागावा लौटकर आवे, तो कह देना कि मैं व्यर्थकी धमकी नहीं देता था।"

एक बार कागावा बुरी तरह फँस गये। एक गुण्डेने कहा-"तीस शिलिंग दो, नहीं तो अभी तुम्हारे प्राण लेता हूँ।" कागावाने ३० शिलिंग देकर जान बचाई।

कागावाके आसपासकी कोठरियोंमें दुराचारोंके अड्डे थे। उन्हें वेश्यालय कहना अधिक उपयुक्त होगा। कागावाने वेश्यागमनके विरुद्ध व्याख्यान देना शुरू किया। कई वेश्याओंने पश्चात्ताप

किया और अपना पेशा छोड़ मेहनत-मजूरी करनेका वचन दिया। जिन धूर्तों को वेश्यालयोंसे लाभ होता था, वे बड़े नाराज़ हुए, और एकने आकर कागावाको धमकाया और उनके खाने-पीनेके सारे बर्तन ही तोड़ डाले!

शिकावाकी गन्दी बस्तियोंमें ज़िन्दगीका कोई मूल्य ही नहीं था। हत्या कर डालना तो एक मामूलीसी बात थी। जो हत्या कागावाकी कोठरीमें उनके आनेके पूर्व हुई थी, उसका कारण थी सिर्फ पाँच आनेकी रकम! कागावाको पहले वर्षमे ही सात हत्याएँ अपने आसपास ही देखनी पड़ी! एक हत्या मुर्गीके बच्चेके लिए की गई थी। दो आदमियोंमें औरतके लिए झगड़ा हुआ; एक कहता था मेरी है, दूसरा कहता था मेरी। इसीमें एकका क़तल हो गया। तेरह बरसके एक बच्चेने इसी उम्रके दूसरे बच्चेको मार डाला।

इन गन्दी बस्तियोंका अधिक विवरण देनेकी आवश्यकता नहीं। इनमे प्रायः रिक्शा खींचनेवाले, सड़क खोदनेवाले, मज़दूर, कुली, सस्ती मिठाई बेचनेवाले, छोटे-मोटे ज्योतिषी, हत्यारे, वेश्याएँ और उनके दलाल रहा करते थे। चोरों और जुआरियों के अड्डे भी यहीं थे।

कागावाने जब २१ वर्षकी उम्रमें शिकावाकी गन्दी बस्तीमें प्रवेश किया, उस समय उन्होंने अपने मनमे कहा था—'मुझे किसी बातका डर नहीं है; न बीमारीका, न मारे जानेका और न चोर-डकैतोंका। आख़िर मरना तो है ही, मेरी उम्र भी ज़्यादा नहीं होगी, भय किसका करूँ?' एक अहिंसावादी वीर योद्धा-की भाँति वे इस क्षेत्रमें उतर पड़े और उनके १५ वर्ष तक युद्ध करनेका परिणाम क्या हुआ, उसे पाठक पढ़ ही चुके हैं।

ग्रन्थकार

अपनी अनुभूतियोंको कागावाने लिखना प्रारम्भ किया। क्षयरोगसे पीड़ित अवस्थामें उन्होने जो उपन्यास लिखा था, उसे उन्होंने कैज़ो नामक मासिक पत्रके प्रकाशकको दिखलाया। प्रकाशक महोदयको उसमें प्रतिभाके बीज दीख पड़े, और उन्होंने उसे २५० पौण्डमें ख़रीद लिया। पहले तो यह मासिक रूपमें निकला और फिर पुस्तकाकार छपा। पुस्तककी लोकप्रियताका इसीसे अनुमान हो सकता है कि थोड़े समयमें ही उसकी ढाई लाख कापियाँ बिक गईं!

१६३२ ई० तक वे पचास ग्रन्थ लिख चुके थे और उनकी बारह लाख प्रतियाँ खप चुकी थीं। तीस पुस्तिकाएँ उन्होंने लिखी थीं और ३५ पर्चे, जिनमें पहलेकी तीन लाख और दूसरेकी ५० लाख प्रतियाँ निकल चुकी थीं। दस किताबें उस समय उनके सामने थीं, कोई आधी लिखी हुई, कोई तिहाई, तो कोई चौथाई। इन पुस्तकोंके विषय हैं—धर्म, दर्शनशास्त्र, कविता, अर्थशास्त्र, राजनीति, मज़दूर-आन्दोलन, जीव-विज्ञान इत्यादि। उनके कई ग्रन्थोंने तो खपतके क्षेत्रमें सबसे ऊँचा स्थान पाया है।

Across the Death line की ढाई लाख प्रतियाँ बिकीं, The Shooter at the Sun की एक लाख ग्यारह हजार, Passing from Star to Star की एक लाख, और A grain of Wheat की एक लाख।

सफलताका कारण

कागावाकी सफलताका मुख्य कारण यह है कि वे जो-कुछ लिखते हैं, हृदयसे लिखते हैं, दिल खोलकर लिखते हैं और एक

उक्त उद्देश्यको लेकर लिखते हैं। अपने भाषणोंके संग्रहकी भूमिकामें उन्होंने लिखा है—

"मेरी पुस्तकोंके पढ़नेवाले बहुतेरे हैं; पर ग्रन्थ-रचना ही मेरे जीवनका उद्देश्य नहीं। मैं तो एक सिपाही हूँ, और सर्व-साधारणके अन्तःकरणको जाग्रत करनेके लिए आन्दोलन करना ही मेरा काम है। मेरे ग्रन्थोंमें मेरी अन्तरात्मा रोती है, और उसके रोनेको जो कोई सुनता है, वही मेरा सच्चा मित्र है।"

"जापानके साढे पांच सौ वेश्यालयोंको दफन करना है, १५ करोड़ पौण्ड की शराबकी धाराको रोकना है, ६४ लाख मज़दूरोंका उद्धार करना है और २ करोड़ किसानोंको स्वाधीन बनाना है। यही मेरे जीवनकी आशा है, और इसी आशासे मैं अपनी पुस्तक सर्वसाधारणकी सेवामे अर्पित कर रहा हूँ।"

"मनुष्यकी आत्मा ही राजनीति है, अर्थशास्त्र है, शिक्षा है और विज्ञान है, इसलिए अन्तरात्माको सुसंस्कृत बनाना ही सबसे अधिक आवश्यक है। यदि हम अन्तरात्माको सुसंस्कृत बना लें, तो राजनीति, अर्थशास्त्र, शिक्षा और विज्ञानके प्रश्न स्वयं ही हल हो जायँगे। मेरे ये भाषण अन्तरात्माकी पुकार है।"

अपरिग्रही कागावा

यद्यपि कागावाको अब तक तीन लाख रुपयेसे अधिक अपनी पुस्तकोंसे रायल्टीके रूपमें मिल चुका है; पर उन्होंने उसका पैसा अपनी तीन संस्थाओंपर ही व्यय किया है। अपना खर्च उन्होंने नहीं बढ़ाया। इस वक्त वे सौ रुपये महीनेमें अपनी स्त्री तथा तीन बच्चोंका पालन-पोषण करते हैं। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इसमे सिर्फ़ कुटुम्बकी गुज़र ही हो पाती है। टोक्यो

महानगरी के एक बाहरी स्थानपर उन्होंने अपने हाथसे काठका मकान बना लिया है। जब जापानमें महान भूकम्प आया था, उस समय निराश्रित लोगोंके लिए जो कामचलाऊ मकान बने थे, उन्ही के बचे-खुचे काठ-कबाड़ को ख़रीदकर ढाई सौ रुपये मे उन्होंने अपने हाथसे अपना मकान तैयार कर लिया है। टोक्योका ही नहीं, ज़ापानका सर्वश्रेष्ठ नागरिक सस्ते-से-सस्ते काठके मकानमें रहता है। यद्यपि कागावाको अपने ग्रन्थोंसे कभी-कभी ३० हज़ार रुपये सालकी आमदनी हो जाती है, पर वे अपने ऊपर उसे ख़र्च नहीं करते। जीवन-निर्वाहके विषयमे उनके विचार सुन लीजिए—

'जीवन-निर्वाहका सर्वोत्तम तरीक़ा यह है कि आदमी इतनी सादगीके साथ रहे कि उसे किसी दूसरेकी सेवा न लेनी पड़े, अपनी सेवा वह खुद कर सके। यदि कोई आदमी अपने हाथसे बनाई हुई झोपड़ीमें रहे, स्वयं ही उसमें अपना रसोईघर बनावे, अपने हाथसे उगाई हुई तरकारियाँ खावे, अपने करघेपर बुना हुआ कपड़ा पहने और सादगीके साथ अपने घरका प्रबन्ध खुद ही करे, तो उसे कितनी स्वाधीनता मिल सकती है! इस प्रकारके जीवनमें मनुष्य न तो किसीको अपना गुलाम बनाता है और न किसीको अपना शासक। वह खुद ही अपना शासक, रसोइया, कलाकार और मज़दूर बन जाता है। इस प्रकारके जीवनसे दुनियाके उलझे हुए प्रश्न सुलझ सकते हैं। यदि कोई मनुष्य किसी तालाबके किनारे मित्रतायुक्त वृक्षोंकी सघन छायामें अपनी झोपड़ी बनावे और पशु-पक्षी और वृक्ष-जगतसे अपना नित्यप्रतिका सम्बन्ध रखे, तो उसके लिए असह्य शोरगुलवाले नगरोंके जीवनका क्या आकर्षण रह सकता है?"

अमेरिकामें शिक्षा

गन्दी बस्तियोंमें काम करते-करते कागावाके मनमें यह ख़याल आया कि समाज-सेवाके कार्यमें अन्य लोगोंने जो-जो प्रयोग किये हैं, उनका अध्ययन करनेकी ज़रूरत है। इसी विचारसे सन् १९१४ में वे अमेरिकाके लिए रवाना हुए और दो वर्ष तक प्रिंसटन-विश्वविद्यालयमें अमेरिकाकी सामाजिक सेवा करनेवाली संस्थाओंका अध्ययन करते रहे। इन दो वर्षोंमे उनके जापानके स्कूल की तीन लड़कियाँ फुसलाकर वेश्याएँ बना दी गईं और तीस लड़के गठकटे बन गये, जिसके कारण उन्हे जेलकी हवा खानी पड़ी। गम्भीर विचार करनेके बाद कागावा इस परिणामपर पहुँचे कि जब तक मजदूरोंको स्वाधीनता नहीं मिलती, तब तक गन्दी बस्तियोंका प्रश्न हल हो ही नहीं सकता।

मज़दूर-संगठन

जापानमे मज़दूरोंके लिए एक संस्था कायम हो चुकी थी, जिसका नाम था 'मज़दूर-हितकारिणी सभा'। कागावाने पहले इस संस्थाको विकसित कराके 'जापान-मज़दूर-संघ' की स्थापना कराई, और तब अपने स्थानके मज़दूरोंकी समितिको उस की शाखा बना दिया। सन् १९२१ में कोबेके ३० हज़ार जहाज़ी मज़दूरोंने हड़ताल करदी। कागावाने उनका नेतृत्व ग्रहण किया। पुलिस ने यह हुक्म जारी कर दिया था कि मज़दूर लोग सभा न करें। कागावाने पुलिसकी आज्ञाका उल्लंघन करके मज़दूर-यूनियनकी स्थापना की। जापानकी यह पहली ही मज़दूर यूनियन थी। कागावाकी इस कार्रवाईसे पुलिसको बड़ा क्रोध आया और खुफिया-विभागके आदमी निरन्तर उनका पीछा करने

लगे। वे पकड़े गये। पुलिसके एक आदमीने उनका कपड़ा फाड डाला और उनके दो-चार डण्डे भी जमा दिये। उनको हथकड़ियाँ पहनाई गईं और बिना टोपीके नंगे पाँव वे थानेपर ले जाये गये। जज साहब रहमदिल आदमी थे, उन्होंने कागावाको सिर्फ तेरह दिनकी सज़ा दी। इन तेरह दिनोंमें उन्होंने अपने एक नवीन उपन्यासका पूरा-पूरा प्लाट अपने मस्तिष्क-पटलपर लिख डाला!

तेरह दिन बाद जब कागावाका जेलसे छुटकारा हुआ, तो उन्होंने उसका उत्सव बड़े विचित्र ढगसे मनाया। अपनी बस्तीके १०० ग़रीब बच्चोंको वे समुद्र-तटपर दिन-भरके लिए हवा खिलाने ले गये। वहाँ बड़ी दिल्लगी रही। कुछको अपनी माकी याद आई और रोने लगे। कितने ही कूदते-फाँदते फिरे और पेट भरके खाना तो सभीने खाया।

किसान-संघ

गन्दी बस्तियो के प्रश्नोंको हल करते समय कागावाका ध्यान किसानोंके सवालों की ओर गया। कागावाका मस्तिष्क वैज्ञानिक ढगपर काम करता रहा है, और वे उन बस्तियोंको अपनी प्रयोग शाला समझते रहे है। कागावाको तुरन्त ही पता लग गया कि गन्दी बस्तियोंके अधिकांश निवासी ग्रामोंसे आते हैं। खेती से गुज़र न होनेके कारण बेचारे बड़े-बड़े शहरोंमें आते हैं और यहाँ धक्के खा-खाकर आख़िर इन बस्तियोंमें आ पड़ते है। कागावाको वेश्यागमनका स्रोत भी ग्रामोंमे ही मिला। वेश्यालयों के लिए मालिक खास तोरसे किसान लड़कियोंको ही बहका-बहकाकर शहरोंमें लाते है, और फैक्टरियोंके मालिक भी इन्हीं

को अपना शिकार बनाते हैं। जापानमें जो - लाख ५० हज़ार क्षयके रोगी है, उनमें से अधिकांश ग्रामोंके ही निवासी हैं। सन् १९२१ में कागावा के घरपर किसान-सभाकी स्थापना हुई और उसकी शाखाएँ जापानके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें खोली गई। ज़मींदारोंके साथ किसानोंके जो झगड़े होते थे, उनमे इस सभाके द्वारा किसानोंकी सहायता की जाती थी। उन्ही दिनों 'भूमि और स्वाधीनता' नामक एक मासिक पत्र भी निकाला गया। सन् १९२१ के अन्तमें 'अखिल जापानी किसान-संघ' का अधिवेशन हुआ। इससे जापान-सरकार तथा ज़मींदारोंके कान खड़े हो गये। कागावाने किसानोंके हितके लिए देश-भरमें घूमना शुरू किया। कहीं-कहीं तो उन्हें बोलने ही नही दिया गया और अनेक स्थलोंपर उनके भाषणोंकी रिपोर्टपर पुलिसने अपनी कैंची चलाई। एक जगह पर तो पुलिसने उन्हे पकड़कर हिरासतमे रख दिया। कागावाने किसानोंकी जो महत्वपूर्ण सेवा की है, उसका वर्णन करनेके लिए यहाँ स्थान नही।

बीसवीं शताब्दीकी तीन बीमारियाँ

कागावाके मतानुसार बीसवीं शताब्दीकी बीमारियाँ तीन हैं:- (१) बड़े-बड़े नगरोंमे बहुसंख्यक आदमियों का जमघट। (२) मेशीनोंका बाहुमूल्य और मनुष्यपर मेशीनोंका प्रभुत्व। (३) पूँजीका थोड़ेसे आदमियोंके हाथमें केन्द्रित रहना। कागावा लिखते हैं:—

"पहली बीमारी—नगरोंमें जनसंख्याकी बढ़तीके साथ-ही-साथ मनुष्योंके लिए शारीरिक नैतिक और मनोवैज्ञानिक ख़तरे भी बढ़ जाते हैं। उन स्थानोंमें दृढ़ व्यक्तित्व और बुलन्द आवाज़-वाले आदमी पैदा ही नहीं हो सकते, जहाँ मनुष्योंको मित्रतायुक्त

वृक्षोंके संसर्गसे वंचित रखा जाता है, जहाँ वे नई ताजी घासकी सुगन्धिसे अपने दिमाग़को तरोताज़ा नहीं कर पाते, जहाँ वे कीट-पतंगोंकी मधुर ध्वनिको सुन नही पाते और जहाँ शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु उन्हें अपना संगीत नही सुना सकती। जहाँ मनुष्य शान्तिपूर्ण जलाशयोंके निकट रहकर एकान्तमें उनके स्वास्थ्यप्रद सम्पर्कमें नहीं आ सकता, जहाँ वह घाटियों, पहाड़ियों और पर्वततटीपर फैलनेवाली धूपमें स्नान नहीं कर सकता और जहाँ वह प्रकृतिकी रहस्यवादी छटाओंके साथ हार्दिक सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकता, वहाँ दृढ़ व्यक्तित्वका विकसित होना सम्भव नहीं।"

"नगरोंकी आवादी अधिक-से-अधिक चालीस हज़ार होनी चाहिए, और दो लाखसे ऊपरकी आबादीके नगर तो मानव समाजके लिए अत्यन्त भयंकर हैं।"

दूसरी बीमारी—मनुष्यपर मेशीनोंका प्रभुत्व है। इससे आदमीकी क्रियात्मक शक्ति नष्ट हो जाती है और वह खुद मेशीन बन जाता है। इससे उसमें स्वयं सोचकर किसी कार्यको प्रारम्भ करनेकी शक्ति नही रहती, एक दूसरेसे आगे बढ़नेका उत्साह नष्ट हो जाता है, उन्नतिकी इच्छाका विनाश हो जाता है और अन्ततोगत्वा मेशीन बनकर आदमी महकमा बेकारी में जा पड़ता है।

तीसरी बीमारी है—थोड़ेसे आदमियोंके हाथमें पूँजीका इकट्ठा होना। इससे धनका उपयुक्त विभाजन नहीं होता, गरीबों और निर्बलोंका शोषण शुरू हो जाता है और निर्धनता बढ़ती [illegible]ती है।

कागावाका मूलमन्त्र

सैकड़ों मीटिंगोंमें कागावा इस बातको कह चुके है कि—"सब से अधिक आवश्यक कार्य है किसानके जीवनका पुनर्निर्माण।"

कागावाके जीवनपर एक दृष्टि

कागावाका जीवन भारतीय युवकोंके लिए आदर्श है। जिन लोगोंको अपनी अस्वस्थतासे कुछ निराशा उत्पन्न होती हो, वे इस बातपर विचार कर सकते है कि कागावा आधे अन्धे हैं, उनको गुर्देकी बीमारी है, फेंफड़े उनके कमज़ोर हैं और दिल वक्त-बेवक्त फेल करनेकी धमकी दिया करता है! पर कागावा क्षत्रिय हैं। वे कहते हैं—"कई बार मैं मरते-मरते बचा; अब जो जिन्दगी मुझे मिली है, वह तो मुनाफेमें है। खाटपर पड़कर मैं नहीं मरना चाहता। दौड़के आख़िरी मील तक मै चलता ही रहूँगा, बीचमें नहीं बैठने का। रेल पर सफर करते हुए या समुद्र-यात्रामे परलोकसे मुझे बुलावा आवेगा, यह मैं नहीं जानता। मेरा काम निरन्तर चलना है। बाकी बात ईश्वरके हाथमें है।"

कागावासे बहुतसे लोगों ने कहा कि वे मज़दूर दलकी ओर से पार्लामेण्टकी मेम्बरीके लिए खड़े हो जायँ; पर उन्होंने इसे सदा अस्वीकार ही किया है। मज़दूर दलकी एकताके लिए वे तन-मन-धनसे प्रयत्न करते हैं। जो कुछ पैसा उनके पास बचता है, वे उसे इस दलको दे देते है; लेकिन जब मेम्बरीके लिए कहा जाता है, तो वे यही उत्तर देते हैं—"शक्तिशाली पुरुषोंकी पंक्तिमें मैं नहीं बैठना चाहता, क्योंकि उससे मेरे और ग़रीब आदमियों के बीचमें, जिनकी मैं सेवा करना चाहता हूँ, एक दीवार खड़ी हो जायगी।"

जब सन् १९३०-३१ में टोक्योके मेयरने उन्हें दो हज़ार रुपये मासिक वेतन (और मोटरकार अलग) पर समाज-सेवा करनेका अनुरोध किया, तो उन्होंने कहा—"मैं बिना वेतनके ही काम करूँगा, नगरपर मैं अपने वेतनका बोझ नहीं डालना चाहता।" और उन्होंने अवैतनिक ही कार्य किया। उस समयकी उनकी बनाई हुई योजनाएँ देश-भरके लिए आदर्श सिद्ध हुईं। कागावाके जीवन का सबसे आकर्षक गुण उनका भोलापन है। घरसे ओवरकोट पहने हुए निकले हैं, रास्तेमें कोई भिखारी मिल गया। उसने सर्दीसे बचनेके लिए कपड़ा मांगा, आपने ओवरकोट दे दिया। इस प्रकार न-जाने कितने ओवरकोट वे दान कर चुके हैं। वे कहते हैं—"छोटे-छोटे बच्चे नक्षत्रोंसे बात-चीत करते हैं; पुष्पोंसे मित्रता करते हैं, तालाबोंकी अन्तरात्मासे सम्भाषण करते हैं, वृक्षोंको अपना दोस्त बनाते हैं और टिड्डियाँ तथा तितलियाँ उनपर ख़ास तौरपर कृपा भाव रखती हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि मैं एक बार फिर वैसा ही बालक बन जाऊँ!" और दरअसल कागावा अब भी बालक ही बने हुए हैं—४९ वर्षके बालक!

निस्सन्देह कागावा जापानकी ही नहीं, संसारकी एक विभूति हैं। यदि आप ऐसे महापुरुषों के सदृश बनाना चाहते हों तो जीवन-निर्माण के असली रहस्य को बताने वाली ये पुस्तकें अवश्य पढ़िये * -(१) निपुण कैसे बनें ? (२) १०१ वर्ष कैसे जीवें ? (३) कार्य करने का बढ़िया तरीक़ा कौनसा ?
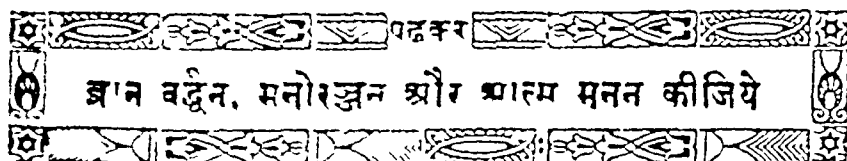
स्थाई ग्राहकों की पूरे पते सहित नामावली

२५ वें ट्रैक्ट से आगेः—५२२ सायरमलजी चौधरी अध्यापक श्री गोडी पार्श्व राजेन्द्र गुरुकुल तीखी पो० किशनगढ़ (मारवाड), ५२३ श्री गोडी पार्श्व राजेन्द्र गुरुकुल तीखी पो० किशनगढ़ (मारवाड), ५२४ जवाहरलालजी दफ्तरी पो० पीपाड शहर (मारवाड), ५२५ भालचन्द्रजी शर्मा अध्यापक ब्रह्मपुरी जोधपुर, ५२६ जैन वर्द्धमान सभा पो० समदड़ी (मारवाड) ५२७ गणपतचन्दजी भण्डारी बी० ए० अध्यापक दरबार हाई स्कूल जोधपुर, ५२८ ॐकारलालजी नवलखा छोटी सादड़ी (मेवाड) नीमच द्वारा, ५२९ प्यारी देवीजी जैन अध्यापिका शान्ति जैन कन्याशाला पो० सांडेराव (मारवाड) ५३० गुलाबचन्दजी अचलचन्दजी सेठिया रावतों का बास जोधपुर, ५३१ भूराचन्दजी दलीचन्दजी चायवाले दी इण्डिया वुलन मिल्स महालक्ष्मी स्टेशन के पास सात रास्ता बम्बई नं० ११, ५३२ पुनवानचन्दजी भण्डारी मोती चौक जोधपुर, ५३३ मूलचन्दजी मारु जैन टोपीवाले पता—मांगीलालजी मूलचन्दजी जैन नीमच छावनी, ५३४ सुरेन्द्रदत्तजी दुबे बी० ए० फफूँद (इटावा) यू० पी०—आगे २७ वे ट्रैक्ट में देखिये।

जैनों के दैनिक षट्कर्म

श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती

* श्री वीतरागाय नमः *

जैनों के लौकिक षट् कर्म

ट्रैक्ट नं० ९६

मूल बंगला लेखक—

श्री चिन्ता हरण चक्रवर्ती एम० ए० काव्यतीर्थ ।

अनुवादक—

श्री पंडित रामचरित उपाध्याय ।

प्रकाशक—

मन्त्री—श्री आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी,

अम्बाला शहर ।

वीर सं० २४५४
आत्म संवत् ३३

मूल्य =)

विक्रम संवत् १९८५
ईस्वी सन् १९२८

बाबू गणपत स्वरूप भटनागर के प्रबन्ध से
जैन प्रिंटिंग प्रेस, अम्बाला में मुद्रित ।

श्री वीतरागाय नमः

जैनों के दैनिक षट् कर्म।
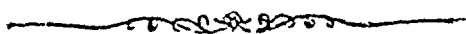
हिन्दू द्विजातियों में प्रति दिन पञ्च महायज्ञ करने की व्यवस्था है। निस्सन्देह इन सभी यज्ञों से ही देवताओं के लिए अग्नि के द्वारा घृतादि की आहुति नहीं दी जाती। इस महायज्ञ का अनुष्ठान एक दूसरे ही ढंग का है। वेदों का पढ़ना और पढ़ाना-ब्रह्मयज्ञ, पितरों का तर्पण-पितृयज्ञ, वैश्वदेव-हवन-देव-यज्ञ, पशु पक्षियों को अन्नदान करना भूत-यज्ञ, और अतिथि का पूजन-नृयज्ञ है। प्राचीन समय में प्रत्येक द्विज प्रति दिन नियमित रूप से इन्ही पञ्च महायज्ञों का अनुष्ठान करता था। यह पञ्च महायज्ञ द्विज मात्र का नित्य कर्म था।

इस पञ्चमहायज्ञ का वर्णन करना इस प्रबन्ध का उद्देश्य नहीं है। हिन्दू लोगों के इसी पञ्च महायज्ञ के तुल्य जैनों में प्रति दिन अनुष्ठान करने के योग्य षट्कर्म अथवा छै प्रकार के कार्य विशेषो के अनुष्ठान करने का नियम है। उन्ही विषयों की संक्षेप में किसी प्रकार आलोचना करने के अभिप्राय से ही यह प्रबन्ध लिखा जा रहा है। जैन शास्त्र कारों ने कहा है कि—

देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने॥

देवपूजा, गुरू की उपासना, स्वाध्याय–शास्त्रों का पढ़ना, संयम, तपस्या, और दान इन्ही छै कर्मों को प्रत्येक • ह
प्रति दिन करना चाहिए। यही जैन शास्त्र का विध

ये ही षट्कर्म जैनों के नित्य कर्मों में सर्व प्रधान हैं। जैन श्रावक प्रतिदिन अपने धर्म शास्त्रों की आज्ञानुसार दूसरे किसी काम को करें या न करें परन्तु इन षट्कर्मों का अनुष्ठान करना उन का अत्यावश्यक कर्तव्य है। लेकिन किसी प्रकार भी सबके लिए समान भाव से वह प्रयुक्त नहीं हो सकता। जो अच्छे ज्ञानी, विद्वान और समर्थ हैं, वे यथा साध्य प्रति दिन षट्कर्मों के प्रत्येक कर्म का अन्ततः आंशिक अनुष्ठान करेंगे। कार्य से भी देखने में आता है कि जैनों में सभी यथाशक्ति षट्कर्मों का अनुष्ठान करते हैं। फलतः हिन्दू प्रणाली के सन्ध्या वन्दनादि की तरह ये षट्कर्म जैनों के आवश्यक कर्तव्य हैं, और नित्य के कर्मों में परिगणित है। इन्हीं सब कर्मानुष्ठानों के विधान जो जैन शास्त्र में वर्णित हैं, के सम्बन्ध में कुछ आलोचना इस दफे करूंगा।

देव पूजा

देव (चतुर्विंशति अतीत जिन या तीर्थंकर, चतुर्विंशति वर्तमान तीर्थंकर और चतुर्विंशति होने वाले तीर्थंकर) गुरु (आचार्य, उपाध्याय, साधु, मुनि प्रभृति) और शास्त्र इन सबों को जैन लोग देवता मान कर पूजा करते रहते हैं। साधारणतः नित्य पूजा के लिए तीर्थंकरों की मूर्तियां स्थापित करके भक्ति के सहित जल आदि अष्ट द्रव्यों के द्वारा उन्ही मूर्तियों की पूजा करते हैं। किसी किसी के घर में ही इस प्रकार जिन देव की मूर्ति स्थापित है। इस प्रकार जिनके घर में जिन देव की मूर्ति स्थापित है, वे लोग अपने अपने घर ही पर नित्य पूजा कर लेते हैं। किन्तु जिनके घर में मूर्ति नहीं स्थापित है, वे लोग अपने घर के पास जैन मन्दिर में जा कर पूजा करते हैं। एक बात

देखा जाता है। हिन्दुओं की पूजा में यह बात नहीं है। पूजा के प्रारम्भ में कामना का उल्लेख करके संकल्प अवश्य करते हैं किन्तु तो भी पाद्यादि उत्सर्ग करते समय कोई कामना नहीं करते। परन्तु जैन लोग भिन्न भिन्न पदार्थों के द्वारा पूजा करते समय भिन्न २ प्रकार की मुक्ति की कामना करते हैं। उदाहरण से ही बात स्पष्ट होगी।

'ॐ ह्रीं वृषभादि वीरान्तेभ्यो जन्म मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामि ·· · भवताप विनाशाय चन्दनं निर्वपामि, अक्षत पद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामि, ·· कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामि, · ·· क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामि, ········ मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामि, · ·· अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामि, ·· मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्वपामि, ······ अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामि, ।

जैनों की इस कामना के सम्बन्ध में एक बात और भी देखनी होगी। पूजा अर्चा के समय हिन्दुओं की कामना का विषय पुत्र पौत्र, ऐश्वर्य, धन अक्षय स्वर्ग प्राप्ति इत्यादि है। किन्तु जैन लोग नित्य की देवपूजा के समय भी इन सब नश्वर वस्तुओं की कामना नहीं करते। प्रत्येक जैन के जीवन का एक मात्र लक्ष्य मुक्ति प्राप्ति है, इसी लिए वे उस मोक्ष-प्राप्ति के अनुकूल विषय को छोड़कर किसी भी दूसरे विषय की कामना कदापि नहीं करते। हिन्दुओं का भी चरम लक्ष्य मोक्ष अवश्य है, इसको कोई अस्वीकार नहीं करेगा—तो भी हिन्दू दार्शनिकों के मत से प्रारम्भ से मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रयास करने पर बहुधा वह प्रयास व्यर्थ हो जाता है।

जब तक संसार के प्रति मन में वैराग्य न उत्पन्न हो तबतक मोक्ष-प्राप्ति के लिए यत्न करना एक दम व्यर्थ है। इसी लिए

स्वर्गादि नश्वर वस्तु की प्राप्ति के लिए मनुष्य पहले अर्चन-पूजन का अनुष्ठान करे—इस तरह चित्त शुद्ध हो जाने पर और वैराग्य आने पर मोक्ष-लाभ के लिए यदि यत्न किया जाय तो वह थोड़े ही समय में सफल होगा। जैन लोग उसके उत्तर में कहते हैं—चित्त की शुद्धि ही यदि पूजा आदि का उद्देश्य हो और कामना द्वारा लोगों का चित्त पूजा आदि की ओर आकृष्ट करना भी यदि प्रयोजन समझा जावे तो दोनों ही कार्य पूजा के समय मोक्ष प्राप्ति के अनुकूल इन्द्रिय-जय आदि और मोक्ष प्राप्ति की कामना द्वारा सिद्ध हो सकते हैं।

जो हो, पूजा आदि के व्यापार में इस तरह के मोक्ष लाभ की भी कामना है और प्रारम्भ काल से ही सब चित्त-जीवन को इस चरम लक्ष्य की ओर ले जाने की जो यह चेष्टा है, इस की विशेष प्रशंसा है इस में सन्देह करने का स्थान नहीं है। जैनों के प्रत्येक धर्मानुष्ठान के बीच इस चरम लक्ष्य की ओर दृष्टि आकर्षन करने की चेष्टा करके जैन शास्त्रकारों ने प्रत्येक व्यक्ति के सामने सद समय के लिए एक उच्च आदर्श उपस्थित किया है, इसको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। जीवन का यही लक्ष्य होना चाहिए। यह बात इसी तरह सदा सब के हृदय में जागरूप रखने की उपकारिता और प्रयोजनीयता सभी पण्डित लोग एक स्वर से स्वीकार कर सकते हैं।

हमारा मुख्य विषय बहुत दूर छूट गया। अब उसी असली विषय का अनुसरण करना उचित है। पूजा प्रारम्भ करने के पहले जिस जिन अथवा तीर्थंकर की पूजा करनी है, उनका आवाहन, स्थापन और सन्निधीकरण* करना पड़ता है,

* आवाहन करने के समय "अत्र अवतर अवतर सम" कहे, स्थापन करने के समय "अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः" एवं सन्निधिकरण के समय "अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्" इन्हीं मंत्रों को पढा जाता है।

उसके बाद पूर्वोक्त मंत्र से जल, चन्दन, पुष्प, अक्षत, नैवेद्य, दीप, धूप और फल से इन्हीं आठ द्रव्यों की सहायता से पूजा की जाती है। इसी का नाम अष्टक या अष्ट द्रव्य पूजा है। इस के बाद पञ्च कल्याण का अनुष्ठान किया जाता है अर्थात् अर्चनीय तीर्थंकर के गर्भ, जन्म, तपस्या, ज्ञान-लाभ और मोक्ष की बातें स्मरण करके एक एक अर्घ्य दिया जाता है। इस के बाद स्तोत्रादि या जपमाला पढ़ते हैं। इस प्रकार स्तोत्रादि पढ़ते पढ़ते जिन-मूर्ति की प्रदक्षिणा की जाती है।

हिन्दुओं में जैसे किसी देवता की पूजा के समय मूल पूजा के पहले और पीछे गणेश आदि अनेक देवताओं की पूजा करनी पड़ती है, उस प्रकार की कोई विधि जैनों में नहीं देखी जाती। इसके अतिरिक्त हिन्दुओं में पूजा की सामग्री अधिक होने से षोडशोपचार, दशोपचार, और पंचोपचार ये कई एक भेद पाए जाते हैं। जैनों में केवल एक इस अष्टक की व्यवस्था है। किन्तु फिर भी इन्हीं आठ द्रव्यों से प्रति दिन पूजा की जायगी, ऐसा कोई विधान नहीं है। संक्षेप में अधिकतर लोग जिनमन्दिर में जाकर जिनदेव का दर्शन करके उनके उद्देश्य से अक्षत या पुष्प या कोई एक फल चढ़ा देते हैं। तब यदि कुछ भी अनुष्ठान कर सके तो कोई स्त्री या पुरुष प्रायः बाधा नहीं करते।
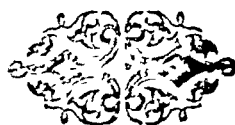
गुरु की पूजा

जिन्होंने संसार की माया त्याग दी-जिनको विषय का प्रलोभन नहीं हो सका; काम, क्रोध जिन से हार गए ऐसे मुनियों की सेवा करना भी प्रत्येक श्रावक के दैनिक कर्तव्यों में गिना जाता है। काया, मन और वाणी से इनकी सेवा अवश्य करनी चाहिए, यह जैन धर्म की आज्ञा है*। ऐसे मुनियों के पास बैठ कर उनसे श्रद्धा पूर्वक विविध विषय का उपदेश ग्रहण करना भी इसी गुरु पूजा के अन्तर्गत है। फिर ऐसे गुरु की विधिवत पूजा करके उनसे अपने किए हुए पापों की बात भी प्रकट कर देनी चाहिए + । इस तरह पर एक तो गुरु समस्त बातों को समझ कर कर्तव्य का उपदेश दे सकते हैं, और दूसरे अन्य श्रावकों के मन में इस कहने से पाप के प्रति घृणा स्वयं उत्पन्न हो जाती है और उस पाप को छोड़ने के लिए हृदय में प्रबल वासना उत्पन्न होती है। सारांश यह है कि अपने मन ही मन या दूसरे से अपने पापों की आलोचना करने से बड़ी सफलता प्राप्त होती है।

लेकिन आज कल साधारण रूप से वैसे निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि अधिकतर नहीं पाए जाते, इस लिए वैसे महापुरुषों की कथा स्मरण करना एवं जिनको सम्यक् दृष्टि और ज्ञान प्राप्त हुआ हो उन ऐलक क्षुल्लक* और ब्रह्मचारियों की सेवा करना

---

* सागार धर्मामृत—२—४६।

+ सागार धर्मामृत—६—११।

* उत्कृष्ट जैन श्रावकों में दो भेद हैं (१) ऐलक (२) क्षुल्लक। क्षुल्लक की अपेक्षा ऐलक का स्तर ऊंचा है। क्षुल्लक एक तरह का कौपीन और एक छोटे टुकड़े का उत्तरीय मात्र धारण करते हैं। जल

और उनके निकट बैठ कर उपदेश ग्रहण करना ही गुरुपूजा के स्थान में विहित है। (यह दिगम्बर संप्रदाय के लिये निर्दिष्ट है परन्तु श्वेताम्बर संप्रदाय में शास्त्रोक्त विधिका सम्यक्तया पालन करने वाले मुनि अब भी विद्यमान हैं। मुनियों में आचार्य, उपाध्याय और साधु जो तीन पद विशेष हैं उन के अधिकारी अब भी सर्वत्र देखे जा सकते हैं। अतः श्वेतांबर श्रावको का प्रथम कर्तव्य है कि यदि ऐसे पवित्रात्मा साधुवों का समागम मिला हुआ हो। अर्थात् वे साधु मुनिराज उनके नगर मे पधारे हुये हों या श्रावक स्वयं उनकी सेवा में उपस्थित हुये हों तो उनके मुखारविंद से धर्मोपदेश सुनना और सामायिक प्रति क्रमणादि नित्यकर्म उन के सानिध्य में करने चाहियें अन्यथा ऊपर लिखे अनुसार।—प्रकाशक)

स्वाध्याय

प्रत्येक जैन का कर्तव्य है कि प्रति दिन जहां तक हो सके जैन शास्त्र को पढे। पहले कहा जा चुका है कि जैन लोग शास्त्र ग्रन्थों की पूजा और भक्ति देवता की भांति करते हैं। इस लिए शास्त्र-पाठ भी दृढ़ भक्ति और श्रद्धा के साथ करना चाहिए इसे कहने की आवश्यकता नहीं। जिस ग्रन्थ को पढे और सुने उसे पवित्र भाव और भक्ति से यह काम करना होगा यही जैन शास्त्र की आज्ञा है। अपवित्र कपड़े पहन कर बिना

पीने के लिए उनके पास एक कमण्डलु रहता है! भोजन के लिए एक पात्र मिट्टी का, और कीट पतंगादि को बचाने के लिए मोर की पूछ की बनी हुई एक पिच्छिका रहती है। क्षुल्लक बड़े यत्न के साथ सामायिक प्रौषधोपवास स्वाध्याय और अन्यान्य धर्मानुष्ठान करते हैं।

नहाये धोये अपवित्र देह से अपवित्र और अस्वच्छ स्थान में बैठ कर अश्रद्धा से ग्रन्थों का पढ़ना और आलोचना करने से शास्त्र का अपमान होता है। ऐसे अध्ययन और आलोचना से पुण्य की प्राप्ति नहीं होती, इस लिए जैन शास्त्रकारों ने इस को निषिद्ध बतलाया है।

जैनों के स्वाध्याय शब्द से केवल शास्त्रों का पढना ही नहीं समझना चाहिए। पढ़ने के इलावा भी स्वाध्याय किया जा सकता है। इस बात को तनिक विस्तार के साथ कहने की आवश्यकता है। जैन शास्त्रकारों ने स्वाध्याय के कई भेद मान रखे हैं। उनके मतानुसार स्वाध्याय पांच प्रकार का है—वांचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, और धर्मोपदेश +। अति शुद्धता से ग्रन्थों के पढ़ने पढाने का नाम वाचना स्वाध्याय, वास्तव में यही यथार्थ स्वाध्याय है। शास्त्रों का कोई अंश न समझने पर ज्ञानियों से विनय पूर्वक उसके अर्थ पूछने का नाम पृच्छना स्वाध्याय है। गुरु से पढ़े हुए विषय की वार वार चिन्ता और अभ्यास करने का नाम अनुप्रेक्षा स्वाध्याय है। शुद्ध शुद्ध और स्पष्ट स्पष्ट (आप्त आम्नायानुसार अर्थ समझ कर) शास्त्र ग्रन्थ की आवृत्ति करने का नाम आम्नाय स्वाध्याय है। जन साधारण

ऐलक मुनि लोग भी न्याय श्रद्धा के सहित विविध धर्मानुष्ठान करते हैं। रात मे मौनावलम्बन पूर्वक ध्यानस्थ होना उनका विधान है। एक तरह का कौपीन, पिच्छिका और एक कमण्डलु के अतिरिक्त और किसी वस्तु को रखने के लिए ऐलकों का नियम नहीं है।

क्षुल्लक और ऐलक दोनों ही के भोजन का प्रवन्ध श्रावकों के दान के ऊपर निर्भर है। किन्तु यदि श्रावक उनसे स्वयं प्रार्थना न करे तो वे श्रावक के घर से मांग कर भोजन नहीं करते।

+ तत्वार्थाधिगम सूत्र — ९—२५

को कुपथ से सुपथ पर लाने के लिए और उन्हें पदार्थ का यथार्थ स्वरूप बताने के लिए धर्म-विषय का उपदेश देने का नाम धर्मोपदेश स्वाध्याय है।

इन पांच प्रकार के स्वाध्यायों में से किसी एक का अनुष्ठान करना प्रत्येक श्रावक के लिए प्रति दिन का कर्तव्य है। स्वाध्याय के कई प्रकार रहने से जैनों में दो सुन्दर वस्तुयें देखी जाती हैं। एक तो इन में चाहे पण्डित हो या मूर्ख, साक्षर हो या निरक्षर, उच्च जाति का हो या नीच जाति का अस्पृश्य, सभी एक न एक तरह का स्वाध्याय कर सकते हैं। दूसरे यह कि इस से प्रत्येक शास्त्र के प्रतिपाद्य विषय का कुछ कुछ ज्ञान समाज को हो जाता है। बंगाल में जिस समय कथा बाचने का अत्यधिक प्रचार हुआ था, उस समय जैसे बंगपल्ली के आबालवृद्ध, वनिता सभी हिन्दू के पुराण और हिन्दू-धर्म के सम्बन्ध में पूरा ज्ञान रखते थे। उसी प्रकार स्वाध्याय के इन विविध भेदों के होने से या प्रत्येक जैन के दैनिक कार्य्यों में स्वाध्याय के अवश्य कर्तव्य परिगणित होने के कारण जैन शास्त्रों के अनेक जटिल और गम्भीर तत्व के सम्बन्ध में भी साधारण जैन लोग उसी तरह पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। निपढ़े लोग भी दर्शन ग्रन्थों की कठिन से कठिन बातों का कुछ कुछ ज्ञान रखते हैं। ऐसे लोग जैनों को छोड़कर मेरी समझ में दूसरे किन्हीं धर्मावलम्बियों में नहीं पाए जाते। मुक्ति क्या है, वह कैसे मिलती है, तत्व कितने प्रकार के होते हैं, प्रमाण किसे कहते हैं, ज्ञान के कितने भेद हैं, जीव कितने प्रकार के हैं, इत्यादि प्रश्न करने पर प्रत्येक जैन श्रावक उसका कुछ न कुछ उत्तर दे सकता है इस में सन्देह नहीं। सच मुच इस बात को देख सुन कर मुझे बड़ा ही विस्मय और आनन्द

होता है। प्रत्येक धर्म में (स्वाध्याय) अर्थात् धर्म ग्रन्थों के पढ़ने पढ़ाने की ऐसी ही व्यवस्था होनी चाहिए।

संयम।

जैन शास्त्रकारों के मत से संयम दो प्रकार का है। एक इन्द्रिय संयम दूसरा प्राणि संयम। नेत्र आदि इन्द्रियों को उन के विषय से निवृत्त करने का नाम इन्द्रिय संयम है। प्राणि हिंसा से विरत होने का नाम प्राणि संयम है। पूर्वोक्त इन दोनों संयमों के अभ्यास करने के लिए प्रत्येक श्रावक को प्रति दिन यथा शक्ति चेष्टा करनी चाहिए। आज मैं उस वस्तु को नहीं खाऊंगा, आज मैं अमुक वस्तु को नहीं देखूंगा, इस तरह श्रावक को प्रति दिन एक एक प्रतिज्ञा या अपनी शक्ति के अनुसार एक से अधिक प्रतिज्ञा करके एवं उस प्रतिज्ञा के अनुसार ही कार्य करके अभ्यास करना चाहिए। यही संयम उन के लिए प्रति दिन का कर्तव्य है। इस प्रकार अभ्यास करने पर समय पाकर उनके दोनों प्रकार के संयम अभ्यस्त हो जायगे। सारांश यह कि धर्म के विषय में विशेष उन्नति करके वे साक्षात् मुक्ति के कारण मुनि-धर्म को धारण करने के योग्य हो जायगे।

तपस्या।

धर्म में प्रवृत्ति बढ़ाने के लिए प्रति दिन यथा शक्ति कुछ न कुछ तपश्चर्या, आत्म-ध्यान आदि का अनुष्ठान करना भी कर्तव्य है, इस क्रिया का दूसरा नाम सामायिक है। इस का अनुष्ठान आदि में कठिन नहीं है। "ॐ नमः सिद्धेभ्य" "श्री वीतरागाय नमः" "नमो अरिहन्ताणं" "नमो सिद्धाणं"

इत्यादि मन्त्रों में से चाहे जिस किसी एक मन्त्र का यथाशक्ति स्थिर चित्त में संयम और पवित्र भाव से जप करना ही इस अनुष्ठान का मुख्य कर्तव्य है, ऐसे जप से चित्त की पवित्रता और एकाग्रता सिद्ध होती है, और साथ ही धर्म में अनुराग बढ़ता है ।

इस तपश्चर्या में एक और कार्य का विधान है । श्रावकों ने जिन जिन पापों को किया है मन ही मन उनकी आलोचना, उनके लिए पश्चाताप और भविष्य में ऐसे कार्य न हों इस विषय की चिन्ता करना भी तपस्या के अन्तर्गत है । ऐसी चिन्ता और आलोचना से अनेक उपकार होते हैं इस में संदेह नहीं । जैनाचार्यों ने तपस्या के बारह भेद बतलाये हैं । उन में से छः बाह्य तप और छः आभ्यन्तर तप हैं । अनशन, अवमौदर्य वृत्ति परिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शैयासन, और कायक्लेश ये छः बाह्य तप हैं । खाद्य द्रव्य आदि बाह्य वस्तु के विषय में इन तपों का विधान है, इस लिए इन का नाम बाह्य तप है । प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छः आभ्यन्तर तप हैं । ये बारह प्रकार के तप मुनियों के मुख्य कर्तव्य हैं । श्रावक लोग यथा शक्ति इनका अनुष्ठान करें यही जैन शास्त्र की आज्ञा है ।

अब संक्षेप से इन तपस्याओं के लक्षण बतलाता हूँ । संयम का अभ्यास करने के लिए निर्दिष्ट समय के लिए खाद्य स्वाद्य, लेह्य पेय इन चार प्रकार के भोजन के त्याग को अनशन तप कहते हैं । विविध उत्सवों के उपलक्ष में हिन्दुओं के यहां जैसे उपवास का विधान है, उसी तरह जैनों के यहां भी अनेक अनशन तप हैं । उपवास में पूजा और ध्यान आदि के अनुष्ठान से चित्त की एकाग्रता बढ़ती है, इस बात को सभी मानते हैं ।

संयम के अभ्यास में इन्द्रियों का दमन और चित्त की

एकाग्रता के उद्देश्य से अल्प परिमाण में (पेट भर के नहीं) भोजन करने का नाम अवमोदर्य तप है। अधिक खाना जैसे स्वास्थ्य को हानि पहुंचाता है वैसे ही धर्मानुष्ठान के मार्ग में भी बाधा उपस्थित करता है। "आज केवल दो ही घर जांयगे, भोजन मिला तो अच्छी बात है, नहीं तो उपवास करेंगे' इस तरह प्रतिज्ञा पूर्वक कार्य करने का नाम वृत्तिपरिसंख्यान तप है। संयम के अभ्यास के लिए घी, दूध, दही, गुड़, नमक और तेल आदि में से प्रति दिन एक का या एक से अधिक रस का परित्याग करने का नाम रस परित्याग है*। चित्त की एकाग्रता के लिए निर्जन स्थान में सोने और बैठने का नाम विविक्त शैय्यासन है। शरीर के प्रति ममता छोड़ नाना रूप कष्ट सहने का नाम काय क्लेश है। ये सब तप संयमाभ्यास, इन्द्रियदमन, चित्त की एकाग्रता आदि साधन विशेष में अत्यन्त उपयोगी हैं, यह बात तनिक सा विचार करने पर समझ में आ जायगी। प्रायः नए सम्प्रदाय के लोग इसको अवश्य ही प्रशंसा की दृष्टि से नहीं देखेंगे। किन्तु संयम का अभ्यास करना ही यदि लक्ष्य हो तो बिना त्याग के योग से काम नहीं चलेगा यह निश्चित सा है।

सभी अभ्यन्तर तपों के लक्षणों को बतलाना आवश्यक नहीं प्रतीत होता। प्रायश्चित, विनय और ध्यान इनका अर्थ सभी लोग जानते हैं। स्वाध्याय की बात पहले कही जा चुकी है। मुनि आदि की सेवा करने का नाम वैयावृत्ति है। परिग्रह के परित्याग को व्युत्सर्ग कहते हैं।

---

* हिन्दुओं में भी इसी तरह संयमाभ्यास के लिए प्रतिदिन किसी न किसी द्रव्य का परित्याग करने की व्यवस्था है।

दान।

प्रति दिन नियम से जो श्रावक कुछ दान करता है और यथा शक्ति तप करता है वह जन्मान्तर में श्रेष्ठ लोक को जाता है इसी लिए सागारधर्मामृतकार ने श्रावक के प्रति दिन के आचार की वर्णना के प्रसंग में कहा है (उसके बाद भक्ति के सहित जहां तक बन पड़े सत्पात्र को दानादि से सन्तुष्ट करके और सभी आश्रित लोगों को सन्तुष्ट करके तब नियत समय पर स्वयं परिमित आहार करो)* । दान सत्पात्र को ही करना चाहिए अर्थात् दान ग्रहण करने का अधिकारी सत्पात्र ही है। जैनाचार्यों के मत में सत्पात्र तीन प्रकार के हैं, उत्तम, मध्यम, और जघन्य । संसार-त्यागी मुनि उत्तम पात्र है। सम्यग् दृष्टि सम्पन्न श्रावक मध्यम पात्र है और सम्यग् दृष्टि-हीन भूखे, प्यासे, दुःखी ही जघन्य पात्र है। उत्तम पात्र को दान करने से निस्सन्देह अधिक फल होता है। लेकिन उत्तम पात्र यदि न मिले तो विवश हो करके मध्यम या अधम पात्र को ही दान करना पड़ेगा यही जैन शास्त्र का मत और गृहस्थों का प्रति दिन का कर्म है।

जैनों के मत में दान चार प्रकार के हैं—अभयदान, आहार-दान, विद्यादान और औषधदान। इन चार तरह के दानों में से (सब यदि न हो सकें तो) कम से कम एक प्रकार का दान प्रत्येक श्रावक को प्रति दिन अवश्य करना चाहिए। सब लोगों का वाञ्छित धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष उत्कृष्ट सुखादि की सब का वाञ्छा रहता है परन्तु यह बिना प्राण रहे नहीं पाये जा सकते, इस लिए प्राण ही इन सबों का मूल है। उन मूल भूत

---

‡ सागार धर्मामृत—१।४९।

* सागार धर्मामृत—३।२५।

प्राण की रक्षा के लिए जो लोग अभयदान करते हैं वे लोग कौन सा दान नहीं करते ? अर्थात् उनका दान सब दानों से बड़ कर के है* । अभयदान के इस प्रशंसा—सूचक वाक्य से मालूम होता है कि जीव-रक्षा के लिए जो अहिंसा—व्रत किया जाता है, वह भी इसी अभय दान के अन्तर्गत है।

शास्त्रों के पाठ करने से ही कर्तव्य और अकर्तव्य का ज्ञान होता है, शास्त्र के पाठ से ही धर्म में अनुराग उत्पन्न होता है, पाप दूर होते हैं और चित्त पवित्र होता है, इस लिए ऐसे शास्त्र का दान करना परम कर्तव्य है. इसी शास्त्र-दान को विद्यादान कहते हैं ।

जिसके लिए लोग स्त्री, भाई, और पुत्र को भी छोड़ देते हैं, जिस के विना व्रत आदि सभी विनष्ट हो जाते हैं, जिस के अभाव से पीड़ित हो करके लोग भूख के मारे अखाद्य तक को खाने के लिए तैयार हो जाते हैं संयत साधु व्यक्ति को ऐसे आहार का दान करना परम कर्तव्य है + ।

शरीर नीरोग रहने पर ही तप और ध्यान आदि हो सकते हैं इसी कारण रोग—शान्ति के निमित्त साधु व्यक्ति को औषध दान करना चाहिए + । इस तरह इन चारों प्रकार के दानों का माहात्म्य जैन शास्त्रों में वर्णित है ।

श्रावकों के यथा शक्ति इन सब दान कार्यों के अनुष्ठान में प्रवृत्त होने पर समाज में किसी को कोई कष्ट नहीं रह सकता, मुनि लोग निश्चिन्त हो तपस्या आदि कार्य कर सकते हैं, उनके यहां यदि कोई अभाव अभियोग उपस्थित हो तो यदि और किसी बात के लिए नहीं तो कम से कम पुण्यार्जन के लिए

---

* सुभाषित रत्नसन्दोह—४७६ ।

+ सुभाषित रत्नसन्दोह— ४७८ । + ऐ ऐ । ४

श्रावकों को उसे दूर करना चाहिए। वास्तव में जैनों के ये षट् कर्म एक ओर जैसे अनुष्ठान करने वाले के धर्म की उन्नति के कारण है, उसी तरह दूसरी ओर जो लोग धर्मोपार्जन के लिए प्राण-पण से चेष्टा करते है, उन्हें जिस में कि कोई विघ्न न हो बल्कि वे जिस प्रकार सुख और निश्चिन्तता से धर्मोपार्जन कर के अपनी और दूसरों की उन्नति मे सहायता कर सकें, उस कार्य मे उन्हें प्रवृत्त करा कर श्रावक समाज का अशेष कल्याण साधन करता है।
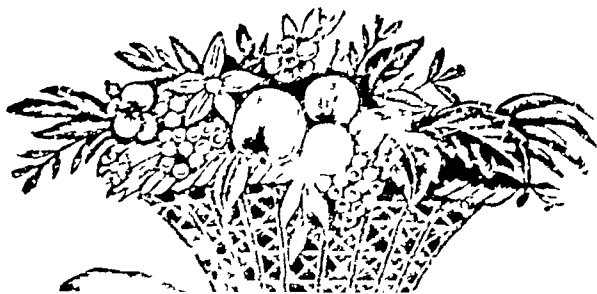
श्री आत्मानंद जैन ट्रैक्ट सोसायटी

अम्बाला शहर

की

नियमावली।

१—इसका मेम्बर हर एक हो सकता है।

२—फ़ीस मेम्बरी कम से कम २) वार्षिक है, अधिक देने का हर एक को अधिकार है। फ़ीस अगाऊ ली जाती है। जो महाशय एक साथ सोसायटी को ५०) देंगे, वह इसके लाइफ़ मेम्बर समझे जावेंगे। वार्षिक चन्दा उनसे कुछ नहीं लिया जावेगा।

३—इस सोसायटी का वर्ष १ जनवरी से प्रारम्भ होता है जो महाशय मेम्बर होंगे वे चाहे किसी महीने में मेम्बर बनें, चन्दा उनसे १ जनवरी से ३१ दिसम्बर तक का लिया जावेगा।

४—जो महाशय अपने खर्च से कोई ट्रैक्ट इस सोसायटी द्वारा प्रकाशित कराकर बिना मूल्य वितरण कराना चाहें उनका नाम ट्रैक्ट पर छपवाया जायेगा।

५—जो ट्रैक्ट यह सोसायटी छपवाया करेगी वे हर एक मेम्बर के पास बिना मूल्य भेजे जाया करेंगे।

प्रार्थी

मन्त्री।

माशूक की छूरी

स्टार आफ इण्डिया प्रेस, पांडे हौली बनारस सिटी

* श्री *

॥ माशूक की छुरी ॥

उर्फ़

* ज़ुल्फ़ पर पेंच *

* जिसमें *

निहायत बढ़ियाँ और चुनिन्दार
गजलें दिलको बिजुली की तरह
तड़पाने वाली दर्ज की गई हैं।

* जिसको *

मो० अब्दुल अजीज खां मो० मुं० उमर खां
बुक्सेलर लोहा बाजार भोपाल निवासी
ने संग्रह किया।

प्रकाशकः—
स्टार आफ़ इण्डिया प्रिंटिंग प्रेस,
पाँडे हौली, बनारस सिटी।

❀ श्रीः ❀

॥ माशूक की छुरी ॥

उर्फ़ ।

❀ जुल्फ़ पर पेंच ❀

गज़ल अब्दुलअजीज़ खां मो० उमर खां बुकसेलर भोपाल

परदेस में है दूर वतन ऐ चर्ख हमें बरबाद न कर । कुछ हद्द भी है रंजो मुसीबत की अब तर्जे सितम ईजाद न कर ॥ आये हैं वतन को छोड़ के हम घर बारके छुटनेका दिलपै है ग़म । मारे हुय हैं तक़दीरके हम तू हमपै नये बेदाद न कर ॥ हम हिन्दके रहनेवाले हैं दुख दर्द के सहनेवाले हैं, कुछ मुंहसे न कहनेवाले हैं तू जुल्म सितम जल्लाद न कर ॥ दुनियाँ के यही सब धन्धे हैं, हर सिम्त फरेब के फन्दे हैं । हम भी तो खुदा के बन्दे हैं, नाशाद को तू नाशाद न कर ॥ ऐ बशीर मुकद्दर सोता है रोने से कुछ नहीं होता है, क्यूँ हिन्द का नाम डुबोता है परदेस में तू फरयाद न कर ॥

(मुहम्मद उमर खाँ निजामुद्दीन खाँ बुकसेलर भोपाल)

बरसों ही होगये हैं हमको वतन से निकले।
फिर कर हुआ न आना ऐसे सखुन से निकले॥
रो रो कफ़स में बुलबुल गुलचीं से कह रही थी।
देखा नहीं है गुल को जबसे चमन से निकले॥
टुक देरको तो प्यारे वादे पै मेरे आजा।
जानों पै सर हो तेरा तब जान तनसे निकले॥
लाया था क्या सिकन्दर दुनियाँ से लेगया क्या?
थे हाथ दोनों खाली बाहर कफ़न से निकले॥

ग़ज़ल फ़साजान

जुदा तुमसे रहना गवारा नहीं है।
मगर क्या करें कोई चारा नहीं है॥
हूँ उम्मत मोहम्मद रसूले खुदा की।
मगर क्या करें देखा भाला नहीं है॥
ज़मीं से फ़लक तक वो जल्वानुमाँ है।
मगर क्या करें नज़रवाला नहीं है॥
हिलालो कमर दोनों चक्करमें आये।

मगर क्या करें वो सितारा नहीं है ॥
जो इस मयको पीले वो रोशन ज़मीर हो ।
मगर पीर कुदसी का प्याला नहीं है ॥

(फ़िरदौसी बेगम)

आइना रखके ये बात हुआ करती है ।
आमने सामने दिन रात हुआ करती है
देने वालोंका भी मुँह आपने देखा है कभी ।
एक बोसे की भी ख़ैरात हुआ करती है ॥
ग़म खिलाते हैं वह मेहमान बुलाकर मुझको ।
ये ज़ियाफ़त ये मदारात हुआ करती है ॥
फ़ातिहा को भी लहद पे नहीं आता कोई ।
जीते जी सबसे मुलाक़ात हुआ करती है
दाग़ साहबसे कभी गर्म थी सोहबत वो शराब ।
अब तो बरसों में मुलाक़ात हुआ करती है ॥

गज़ल (शाजहाँ बीबी)

मरता है कोई हसीनों पे शोहरत हो किसी की ।
मातम हो किसी की शबे अशरत हो किसी की ॥

तरज़ना कभी मिलना कभी आना कभी जाना ।
शोक हो शोक तबीयत हो किसी की ॥
गुस्से से वह कहते हैं इधर आवो न साहब ।
फ़रमाते हैं हम आयेंगे जागीर हो किसी की ॥
दिल तो तुम्हें देते हैं किसी गैर को न देना ।
देखो न अमानत में खयानत हो किसी की ॥

गज़ल (विनयाँ बेगम)

एक ज़माना हो गया उस यार को रूठे हुए ।
या खुदा तू जोड़ दे कुदरत से दिल टूटे हुए ॥
अपने दिल को ढूँढ़ने के वास्ते जब मैं गया ।
सैकड़ों दिल उनके कूचे में मिले टूटे हुए ॥
हाय दौरे आफतें हैं अकेली जान पर ।
वक़्त इधर बिगड़ा हुआ और वो उधर रूठे हुए ॥
ऐ नजूमी इतना बतलादे खुदा के वास्ते ।
आखिरश कब तक रहेंगे मुझ से ये रूठे हुए ।
देखिये मन्जर ज़माने की हवाका इन्कलाब ।
ग़ैर तो सच्चे हुवे और आशना झूठे हुए ॥

गज़ल खुरशेद बेगम ।

किसने ये तजल्ली रुखे रौशन की दिखादी ।
खुद आप मिटे और खुदी मेरी मिटादी ॥
ऐ वादे सबा क्यों मुझे बरबाद किया है ।
क्यूँ कूचये जाना से मेरी ख़ाक उड़ादी ॥
ऐ यार मैं जाऊँ तेरी रफ़तार के सदके ।
एक छोटी सी तुरबत थी ठोकर से उड़ादी ।
इस इश्क ने दो रंग रंगे आशिक और माशूक ।
परवाना नज़र आया वाँ शामा जला दी॥

गज़ल हुसेनी बेगम ।

कभी झलक कभी जल्वा दिखा नहीं सकते ।
वो सबके सामने महफिल में जा नहीं सकते ॥
इलाजे इश्कका मुश्किल है सख्त मुश्किल है ।
ये दर्द वो है जिसे हम मिटा नहीं सकते ॥
वो अपने अहद जवानी की क़द्र क्यूँ न करें ।
ये ऐसी शै है जिसे खोके पा नहीं सकते ॥
जज्ब मोहोब्बत का क्या हुआ या रब ।

वाहे कह रहे हैं तेरे घर हम आ नहीं सकते ॥
यही सबब है जो मरना मुझे कबूल नहीं ।
वो मेरी मौतका सदमा उठा नहीं सकते ॥
वह आयेंगे तो निगहवाँ भी साथ आयेगा ।
हम इस ख़याल से उनको बुला नहीं सकते ॥

गजल (मो० अब्दुल अजीजखां वु० लोहाबाजार भो०)

किसी की पर्दे में जान लेली किसीको दर २ फिराके मारा । तेरी अदाओंने रश्क लैला हर एकको मजनू बनाके मारा ॥ तुम्हारे एजाज के हैं कुर्बां तुम्हारे चितवन के हैं तसद्दुक । किसी को मारा दिखाके सूरत किसी को सूरत छिपाके मारा ॥ दिखाये मसाजिद में ऐसे जल्वे के जान खो बैठे सब नमाजी । खुदा के बन्दों को तूने जालिम ग़ज़ब है घर में खुदा के मारा ॥ वही हो तुम जानताहूं तुमको लगा के इल्जाम सौ तरह के । किसी की खिचवाई खाल तुमने किसी को सूली चढ़ाके मारा ॥ दिखा के सैयां को तुमने जल्वा गरीब अज़ीज़ की जान लेली ।

तुम्हैं न लाजिम था ये मेरी जाँ के अपने घर बुला के मारा ॥

गज़ल (नजमुन नेसाँ)

कुछ बात बन जायगी न तदबीर बनेगी ।
तेरे ही करमसे मेरी तकदीर बनेगी ॥
अब हिज्र में तुझपर फलक पीर बनेगी ।
मेरे दिले मुजतर की दुआ तीर बनेगी ॥
जिसने कभी देखी नहीं ऐ जाँ तेरी सूरत ।
किस तरह फिर इससे तेरी तसवीर बनेगी ॥
निकलेंगे जो जुज बताके अलफाज दहन से ।
हर लफ्ज से एक इश्क की तसवीर बनेगी ॥
खुश बाश उमर रंज का यह वक्त नहीं है ।
जुल्मों की तेरे वास्ते जंजीर बनेगी ॥

गजल (हबीबन बेगम)

इन पर न और कुछ कोई तासीर आहकी ।
इतना हुआ जुरूर कि फिर कर निगाह की ॥
ाखों अदायें देखकर उस रश्क माहकी ।

जब हो सका न सब्र तो हमने आहकी ॥
तुम आप अपने जुल्फ परेशाँ को देखलो ।
तसवीर ये है एक मेरे हाले तबाहकी ॥
यह भी बहुत है उनको जो इतना लिहाज है ।
देखा हमें तो शर्म से नीची निगाह की ॥
कहिये शबाबका तो जमाना गया गुजर ।
अब भी निगाह में हैं वो शोखी निगाहकी ॥
जाहिद बुतों की हिजो फिर शद्दोमद के साथ ।
छत फट पड़े न तुझपे कहीं खाने काह की ॥
अच्छी वो दोस्ती है जो मौके के साथ हो ।
वो दुश्मनी भी खूब हो जो हो राह राह की ॥

गजल (नूरजहां बेगम)

ग़म पे ग़म रंज पे सो रंज उठाये कोई ।
मगर उस शोख़ के काबू में न आये कोई ॥
दिलके सदमें उन्हें किस तरह जताये कोई ।
दर्द कुछ जख्म नहीं है कि दिखाये कोई ॥
ख़ो गर जुल्म भी हों खो गर आज़ार भी हों ।

कल सताता हो मुझे आज सताये कोई ॥
मेरी ये जिद्द के गले से वो लगाले मुझको।
उनकी ये हठ न मुझे हाथ लगाये कोई ॥
तेरे ही जज़्ब मुहब्बत में कमी है ए नूह ।
वायदा आने का करे और न आये कोई ॥

मि० शकूरन जान ।

बुलाके बातभी की और मुसकुरा भी दिया ।
किया शहीद भी कातिल ने खूं बहाभी दिया ॥
मैं वो चिराग़ हूँ जिसको फ़िराग़ हस्ती ने ।
क़रीब सुबह के रोशन किया बुझाभी दिया ॥
जनावे ख़तम दिया लाके नामेवर ने मुझे ।
कहाकि खतको किया चाक और जलाभी दिया।
किया है खेल कातिलने मेरी नीयत पर ।
मेरा मज़ार बनाके फिर मिटा भी दिया ॥

मिस महताब जान ।

मैं मुसल्मां हूं इस राज़ को जब जान लिया ।
उसने दिल लेने के पहले मेरा ईमान लिया ॥

अच्छी सूरत नहीं छिपती है छिपाये से भला,
दूर से देख के मैंने उन्हें पहचान लिया।
वादये वस्ल के इफ़ाकी तवक्के किसको,
यही क्या कम है कहा तुमने मेरा मान लिया॥
भेस भी ग़ैर का बदला तो हुवा क्या हासिल,
मुझको उसने मेरे आवाज़ से पहचान लिया।
दिल चुराया है तो आँखे न चुराओ हमसे,
अब कहाँ जाते हो क्यूँ छिपते हो पहचान लिया॥
ये न समझो कि समझती है खुदाई हमको,
ये न जानो कि ज़माने ने हमें जान लिया॥

मिस युसुफ़जहां।

जय हो रामचन्द्र सुखधाम सबके काम बनाने वाले।
आज्ञा पिताकी मानी आप मिटाया भक्तोंका संताप,
बने बनवासी श्रीरघुराज भूमि का भार हटाने वाले॥
अहिल्या तारी मारे नीच बनाया सुखी सखा सुग्रीव,
मारडाला रण में दशशीश जानते सभी जमाने वाले।
विभीषण बाँह गहे की लाज तुम्हीं ने राखी है रघुराज,

दिया लंका का उसीको राज रङ्क को राउ बनाने वाले।
शरण में आया राधेश्याम सुनी है निर्बलके बल राम,
हमारे करिये पूरण काम तुम्हारे यश हम गानेवाले॥

गज़ल अब्दुल अजीज खाँ बुक्सेलर भोपाल।

सिया राम अयोध्या बुलालो मुझे।
अपने चरणों का दास बनालो मुझे॥
जानू नहीं मैं ज्ञान को कैसा भजन और भाव है।
कर रहा कुकर्म मन में तेरा भी चाव है॥
पापी दुष्टा हूं नाथ निभालो मुझे॥
तुम बिना प्यारा नहीं मेरा कोई संसार में।
लौ लगाई तुमसे भगवन् कुछ नहीं संसार में॥
गिरा पर्वत से नाथ बचा लो मुझे॥
नित्त भटकताही फिरा संसार में न सुख मिला।
अब तो गोदी में नाथ सुलालो मुझे॥
मांगता हूँ आपसे भिक्षा में भक्ती की हरी।
पार कर दो नाव मेरी शोकसागर से हरी॥
छाया में नाथ बिठालो मुझे।

नाम से तेरे अजामिल भी तरा गणिका तरी ।
पार भवसागर से तुमने कर दिया सबको हरी ॥
उन सब में एक और मिला लो मुझे ॥
सियाराम० ॥

गजल मिस मुन्नीजान ।

हटा दे आइना ओ बेजरूरत देखने वाले ।
कहां तुझको है ताब हुस्न सूरत देखने वाले ॥
वफ़ाये वायदा दीदार का वह कौन मौका है ।
कयामत में तो लाखों होंगे सूरत देखने वाले ॥
धरा रह जायगा ज़ौक़ जफ़ा लुतफे सितम सारा ।
अगर देखेंगे मेरी दिलकी हसरत देखने वाले ॥
हमारा दिल न देखें इसका ऐसा मोलही क्या है ।
अगर देखेतो देखें अपनी कीमत देखने वाले ॥
चले चलकर थमे थमकर झुके झुक कर कमर देखी ।
मैं क्यों जाऊँ बहुत है उनकी हालत देखनेवाले ॥
बहुत अच्छा किया मुझतर उसे दिल में छुपा रक्खा ।
कलेजा थाम लेते वरना हसर देखने वा

गजल मिस जुबेदा ।

तरस खा जरा दिलको तरसाने वाले ।
इधर देखता जा उधर जाने वाले ॥
वो जागे शहर को तो लड़ते हैं मुझसे ।
कि ये कौन तुम ख्वाब में आने वाले ॥
वोह मेरा कहा किस तरह मान जाते ।
बहुत से हैं शैतान बहकाने वाले ॥
हमी पर उतरता है गुस्सा तुम्हारा ।
हमी खेलता हैं सज़ा पाने वाले ॥
जो अजीज़ के कहने से भी तोबा करलो ।
न कोसिंग क्या मुझको मैखाने वाले ॥
तुम्हीं ने चुराया है दिल वो तुम्हीं हो ।
पराई रकम लेके इतराने वाले ॥
सलामी है ऐ दाग़ उसके ही दर ने ।
न हम काबे वाले न बुतख़ाने वाले ॥

गजल (मैनेजर अजीज़ी प्रेस भोपाल)

इतना तो पसेमरदत तुम पास वफ़ा करना ।

हमराह जनाज़े के तकलीफ़ ज़रा करना ॥
इस चर्ख सितमगर का अदना ये करिशमा है ।
आज उससे मिला देना कल उससे जुदा करना ॥
बीमार मुहब्बत को गर होस में लाना हो ।
जानों पे लिटा देना दामन से हवा करना ।
ऐ मेरे सखी दाता फैला है मेरा दामन ।
खाली न फिरूं दरसे मंगते का भला करना ॥
सिद्दीक बुतों से तुम उल्फ़त न कभी करना ।
गर इश्क भी करना तो इश्के खुदा करना ॥

गज़ल (नजमुद्दीन खाँ बुकसेलर भोपाल)

सोखी है न वे बाकी अब उनका सबाब आया ।
आखों में हया आई नज़रों में हिसाब आया ॥
कुरबान हया ये दिल इस शरम क्या कहना ।
आये जो तसव्वुर में तो उनको हिसाब आया ।
देता हूँ तसल्ली मैं दिल को ये कह कर ।
अब नामावर आता है अब ख़त का जवाब आया ॥
सदमे से पसे तोबा हालत पै हुई मेरी ।

बेहोश रहा घर में जब नाम शराब आया ॥
शहदा है दिल उस बुतपर जो एकही झाकिम है
आया तो कहाँ अनवर ये खाना खराब आया

गजल नेयाज़ मोहम्मद खां (रामपुर)

चारा सोजे दर्दगमहो वा नये बेदाद हो ।
तुम मसीहा हो तुम्हीं मेरे लिये जल्लाद हो ॥
मुझको बैठा दरपे जो देखा तो वो कहने लगे ।
ख़ाक में मिल जाय तो मिट्टी तेरी बरबाद हो ॥
राह में यों कहके लाया हूँ उन्हें मैं अपने घर ।
तुमने कुछ वादा किया था तुमको शायद यादहो
तुम अगर पहलूमें आजाओ तो दिल को चैनहो
तुमको सीने से लगालूं तो मेरा दिल शादहो ॥
वस्ल से इनकार येतो एक पुरानी बात है ।
अब कोई ताज़ा सितम मुझपर सितम ईजादहो ॥

स्टार आफ इण्डिया प्रेस, पांडे हौली, बनारस सिटी।

सस्ती ज्ञानमाला

सम्पादक—श्रीनाथ मोदी

हमारा उद्धार कैसे हो ?

श्री सुबोधचन्द्र 'नूतन'

३०

बत्तीस ट्रैक्ट
१)

एक प्रति तीन पैसे

ज्ञान भण्डार,
जोधपुर।

हमारा उद्धार कैसे हो ?

उद्धार के लिये प्रयत्न करने के पहले यह जान लेना चाहिए कि "हम पतित क्यों हैं ?" इस प्रश्न पर विचार करने से पूर्व यह जानना भी आवश्यक है कि "क्या हम वास्तव मे पतित हैं ?"

कहते हैं प्राचीन काल मे हम उन्नति पर थे। हम बली थे। संसार में हमारी धाक थी। हमारे यहाँ धन-धान्य की प्रचुरता होने के कारण विदेशी लोग हमारे देश भारत को 'सोने की चिड़िया" कहते थे। रोगो का यहाँ नाम-निशान न था। सब लोग हृष्ट-पुष्ट रहते हुए आनन्दमय जीवन व्यतीत करते थे। शिक्षा की भी हमारे यहाँ कमी नहीं थी। तक्षशिला, नालन्दा और राजगृह सरीखे विद्यापीठ विद्यमान थे। इन विद्यापीठों में भारतीय विद्यार्थियों के अतिरिक्त सुदूरस्थ देशो के भी सहस्रों विद्यार्थी प्रति-वर्ष शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। उस समय हमारा देश सब प्रकार से उन्नत और ससार मे आदरणीय था।

हमने माना कि यह सब कुछ था। परन्तु अब हमारी क्या दशा है-ज़रा इस पर भी विचार करना चाहिए। आज हम दीन हैं, अधिकार-हीन हैं, असहाय हैं, परावलम्बी हैं। संसार में हमारा कोई स्थान नहीं, कुछ सम्मान नहीं, कोई नाम नहीं। हम पराधीन हैं। हमारा जीवन दूसरों के हाथ में है। यद्यपि हमारा लालन-पालन वीर-प्रसवा भारतमाता की गोद मे हुआ है, फिर

भी हम कायर है, दब्बू हैं और आत्म-विश्वास-रहित हैं। इतना ही नहीं-रत्नगर्भा भूमि पर निवास करते हुए भी हम दरिद्र हैं, भूखे हैं, नगे हैं। आज हमारे देश के लाखों व्यक्ति पेट की ज्वाला में जल रहे हैं। करोड़ों को पौष्टिक अन्न के दर्शन भी नहीं होते और ऊपर से रोगों का असह्य प्रबल प्रहार हो रहा है। इसी लिए हम में रोगियों और दरिद्रों की संख्या बरसाती मेंढ़कों की तरह बढ़ रही है। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी समय जो भारत 'स्वर्ग-सहोदर' होने का दम भरता था, आज वही 'घोर नर्क-तुल्य' बना हुआ है। क्या आप जानते हैं यह सब क्यों है? केवल इसीलिए कि हम पतित हैं।

हमारी इस वर्तमान दशा को देख कर-सरकार और नेता-सभी चिन्तातुर हैं और इस दयनीय दशा से हमारा उद्धार कैसे हो—दोनों ही इस समस्या के सुलझाने में लगे हैं। इसके साथ ही अब हम भी अपनी दुरवस्था का अनुभव करने लगे हैं। तुलना करने पर हमें इस बात का ज्ञान होने लगा है कि दूसरे कई देशों के निवासियों की और हमारी—आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक दशा में आकाश पाताल का अन्तर है। इसके फल-स्वरूप देशमें उद्धार के प्रयत्न भी दृष्टिगोचर होने लगे हैं। परन्तु हमारी सम्मति में उद्धार के प्रयत्नों से पूर्व हमें अपनी अधोगति के वास्तविक कारणों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है; अतः हम पहले अपनी वर्तमान दशा के नीचे लिखे कतिपय मुख्य कारणों पर संक्षेप में विचार करते हैं।

(१) दरिद्रता—हमारी इस वर्तमान अधोगति अथवा दुरवस्था का सर्वप्रधान कारण 'दरिद्रता' है। हमारे देश में किसान और मज़दूर—दो की ही अधिकता है। ये दिन-रात परिश्रम करते हैं, फिर भी अपनी और अपने परिवार की भूख को शान्त नहीं कर पाते। रूखा-सूखा अथवा सड़ा-गला जैसा भोजन मिल जाता है ये उसी में सन्तोष मान लेते हैं। ग़रीबी के कारण अपने शरीर, वस्त्रों और घरों की सफ़ाई का उचित प्रबन्ध नहीं कर सकते। आवश्यकता से अधिक परिश्रम, उचित उत्तम और पूर्ण भोजन के अभाव तथा स्वच्छता की कमी के कारण इन्हें अनेक रोग घेर लेते हैं। धन का अभाव तो है ही। उसके कारण ये योग्य चिकित्सकों से अपनी उचित चिकित्सा कराने में भी असमर्थ रहते हैं। इसके परिणाम में इन्हे अकाल मृत्यु का ग्रास बनना पड़ता है। यदि किसी प्रकार कुछ जीवित भी रहते हैं, तो अशक्त, क्षीण-शरीर, उदास एवं निरुत्साह होकर। हमारी सब प्रकार की अवनति में यह ग़रीबी ही मुख्य है। इसीके कारण हम तीनों प्रकार के-दैहिक, दैविक व भौतिक-कष्ट सहते हैं और यही हमारे देश के अनेक अनर्थों की जड़ है।

(२) अशिक्षा—हमारे पतन का दूसरा मुख्य कारण 'शिक्षा का अभाव' है। हमारे यहां नगरों की अपेक्षा ग्रामों की अधिकता है। देश की ९० प्रतिशत जनता इन्हीं ७½ (साढ़े सात) लाख ग्रामों में निवास करती है। इन ग्रामों में शिक्षा की बहुत कमी है। इसके कई कारण हैं प्रथम तो शिक्षा के प्रायः साधन—स्कूल, कालेज, यूनिवर्सिटी आदि—नगरों में

मान हैं। अतः इन शिक्षा-संस्थाओं से लाभ उठाने की विशेष सुविधा नागरिकों को ही प्राप्त है। दूसरे—ग्रामीणों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। इसलिये वे अपने बच्चों को खर्चीली शिक्षा से दूर रखकर अपने निजी व्यवसाय में सहयोग दिलाने के लिये बाधित होते है। तीसरे—वे स्वयं अशिक्षित है। शिक्षा के महत्व को नही समझते। शिक्षा क्या है, संसार मे क्यों इतनी आवश्यक मानी गई है और हमारे लिये उसकी कितनी आवश्यकता है—इन बातों को वे नही जानते। चौथे प्रारम्भिक शिक्षा व्यावहारिक, निःशुल्क और अनिवार्य नहीं है। पांचवीं बात यह है कि हमारा नागरिक जीवन बहुत महँगा, दूषित और विलासिता पूर्ण है। इस ग़रीबी की हालत में अपनी सन्तान बालक-बालिकाओं को शिक्षित बनाने के लिये गन्दे वातावरण के नगरों में भेजना ग्रामीण जनता की शक्ति से बाहर है। इसके अतिरिक्त उनके पास न तो इतना समय है कि वे अपने व्यवसाय को छोड़ कर शिक्षा प्राप्त कर सकें और न धन की ही। इतनी अधिकता है कि कहीं जाकर अथवा शिक्षक नियुक्त कर शिक्षित बन सकें। इन्हीं उपर्युक्त कारणों से हमारे देश की अधिकांश जनता में शिक्षा का पूर्ण अभाव है। उसका अनुमान इसी से हो सकता है कि जब अमरीका में ९५, ग्रेट-ब्रिटेन में ९२, और जर्मनी में ९९ प्रतिशत व्यक्ति शिक्षा सम्पन्न हैं, तब हमारे भारत-वर्ष में केवल ८ फी सदी आदमी पढ़े लिखे हैं। इस आठ प्रति सैकड़ा में 'नाम, गांव' आदि लिखना जानने वाले और स्कूलों में पढ़ने वाले भी शामिल हैं। शिक्षा के इसी अभाव के कारण इस उन्नति के युग में भी हम अवनत बने हुए हैं।

(३) भाग्यवाद—हमारे यहां विशेष कर हिन्दुओं में 'भाग्यवाद' की प्रबलता है। हम प्रत्येक कार्य में, प्रत्येक स्थान पर और प्रत्येक समय इसी को याद करते रहते हैं। इसी भाग्यवाद के प्रभाव से "अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम। दास मलूका कह गये, सब के दाता राम॥" और "भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्।"—इस प्रकार की कहावतें चल पड़ी हैं। इनका हमारे जीवन पर बड़ा ही अनिष्टकर प्रभाव पड़ा है। आलस्य, निरुद्यम, निरुत्साह आदि जो अभी तक हमारे यहां दीख पड़ते हैं, वे इसी भाग्यवाद के फल हैं। हमसे जब कोई कार्य बिगड़ जाता है या हमारी असावधानी से कुछ हानि हो जाती है अथवा हम रोगी हो जाते हैं, तो उसके वास्तविक कारणों की खोज न करके उसे हम अपने 'भाग्य' के मत्थे मँढ़ देते हैं। इतना ही नहीं, अपितु अपनी सभी प्रकार की अवनति में हम इसी को आधार मान बैठते हैं। इसलिये यह भाग्यवाद हमारी अकर्मण्यता का प्रधान कारण है और अकर्मण्यता अवनति का मूल है।

(४) अन्धश्रद्धा— भाग्यवाद के समान यह भी हमारे लिये घातक सिद्ध हुई है। हमारे जीवन के प्रायः सभी अंगों पर यह अपना अधिकार जमाए हुए है। समाज, धर्म, राष्ट्र कोई भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं है। सब में ही इसकी सत्ता पाई जाती है। हम दान देते हैं, मन्दिर बनवाते हैं पंडित-पुजारियों को पूजते हैं, साधु, सन्तों की सेवा करते हैं, देवी-देवताओं को मनाते हैं, मन्त्र-जन्त्र करवाते हैं तथा इसी प्रकार के न जाने कितने काम करते हैं। हमारे ये सब काम आँख-कान बन्द करके होते हैं। हम इनमें अपनी बुद्धि से काम नहीं लेते

उचित-अनुचित का विचार नहीं करते, पात्र-कुपात्र का ध्यान नहीं रखते। यही कारण है कि अन्य देशों के निवासी हमें मूर्ख और बुद्धू समझते हैं।

(५) स्वार्थपरता—हम में स्वार्थ की बड़ी प्रबलता है। प्रत्येक कार्य में, प्रत्येक बात में और प्रत्येक अवसर पर हम अपने ही मतलब का ध्यान रखते हैं। सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक—किसी भी क्षेत्र में कार्य करते समय हम समाज, धर्म और राष्ट्र के हित को गौण मानकर अपने ही स्वार्थों को प्रधानता देते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में हमारी असफलता और अवनति का यही प्रधान कारण है। हम बात-बात में समाज और धर्म की दुहाई देते हैं, जातीयता के गीत गाते हैं, राष्ट्रीयता का राग अलापते हैं और पारस्परिक सहानुभूति एवं सहयोग के लिये चिल्लाते हैं। यह सब कुछ करते हैं, परन्तु इनके लिये अपने तुच्छ से तुच्छ स्वार्थों का त्याग करना हमें नहीं आता—आत्म-बलिदान करना नहीं जानते। इस स्वार्थपरता की मोहिनी मदिरा में मस्त होकर हम अपने जीवन के लक्ष्य को भूल गये ध्येय को खो बैठे, उद्देश्य से विमुख हो गये। यही कारण है कि इस प्रगति-शील युग में भी हम अवनति का ही दुःखद अनुभव कर रहे हैं।

(६) कुप्रथाएँ—हमारे देश के—हिन्दू, मुसलमान आदि—सभी वर्गों में अनेक कुप्रथाएं प्रचलित हैं जैसे-कहीं गुड्डे गुड़ियों की तरह अबोध बालक-बालिकाओं का विवाह करके उत्तरदायित्वपूर्ण प्राचीन आदर्श विवाह-प्रणाली का उपहास किया जाता है; तो कहीं मृत्यु के मुख में जाने वाले बूढ़े-बूढ़े व्यक्ति छोटी-छोटी कन्याओं के साथ विवाह करके उनका अमूल्य

जीवन धूल में मिला रहे हैं। कहीं कई-कई विवाह किये जाते हैं, तो कहीं धन के लोभी भोली-भाली बालिकाओं को निर्दयता-पूर्वक पशुओं के समान बेच रहे हैं। कोई दहेज-टीके के लिये अपना सर्वस्व स्वाहा करते हैं, तो कोई मरे व्यक्ति के पीछे 'मृत्युभोज' करने में ही धन लुटा रहे हैं। कहीं शराब, भंग, गाँजा, धूम्रपान आदि में धन का धुआँ उड़ाया जा रहा है, तो कहीं बाहरी ठाटबाट बनाने में अपव्यय हो रहा है। इन कुप्रथाओं ने हमारे देश और समाज को बहुत हानि पहुँचाई है। हमारा जातीय जीवन निर्बल, निस्तेज और मृत-प्रायः हो गया; हमारे बाल-समाज में बालपने की वह उमँगें नहीं रहीं, युवक निरुत्साह एवं निस्तेज प्रतीत हो रहे हैं, वृद्ध अपने जीर्ण-शीर्ण शरीर लिये, नदी किनारे के वृक्ष बने हुए हैं। यह सब इन्हीं दुष्प्रथाओं का भयङ्कर परिणाम है। यद्यपि इन अनर्थकारी कुप्रथाओं की ओर हमारा ध्यान पहुंच चुका है और इनको समूल नष्ट करने के लिये प्रयत्न भी होने लगे हैं, परन्तु अभी तक इनका अनिष्टकर प्रभाव पूर्णतया शान्त नहीं हो पाया है।

(७) सामाजिक बन्धन—हम सामाजिक बन्धनों में बुरी तरह बन्धे हुए हैं। ये बन्धन भी उक्त कुप्रथाओं के समान ही हमारी उन्नति में बाधक हो रहे हैं। हमारी माताओं में शिक्षा का अभाव और अन्धश्रद्धा का साम्राज्य है; बालिकाएं पढ़ाई से वंचित हैं, युवतियाँ पर्दे की प्रबल परिधि के अन्दर मूर्खता के अन्धकार में पड़ी हुई हैं और हम दीन दरिद्र होकर 'कूएँ के मेंढ़क' बने हुए हैं। हमें अपनी रुचि, योग्यता और शिक्षा के अनुकूल व्यवसाय करने की स्वतन्त्रता नहीं। ये सब बातें हमारे सामाजिक बन्धनों

की कठोरता के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। यदि हमारे सामाजिक बन्धन इतने कड़े न होते, जातीय नियम इतने जटिल न होते और हमें अपने योग्य कार्य करने की कुछ भी स्वतन्त्रता होती तो हमारे भारतीय समाज को अपने पूर्व उन्नत आसन से पतित होकर आज ये दिन देखने न पड़ते।

(८) धार्मिक रूढ़ियाँ और छूआछूत—समाज के समान हमारे धार्मिक क्षेत्र में भी बड़ी गड़बड़ मची हुई है। सब से पहली बात यह है कि हमारे देश में सम्प्रदायों (मज़हबों) और जातियों की अधिकता है। हिन्दू, सिख, जैन, मुसलमान, ईसाई आदि अनेक मतमतान्तर फैले हुए हैं। इन में भी एक-एक की कई कई शाखाएँ, उपशाखाएँ और प्रशाखाएँ हो गई हैं।

इस अनेकता के साथ ही हममें बहुत-सी धार्मिक रूढ़ियाँ भी प्रचलित हैं। हम इन रूढ़ियों के अन्धभक्त, अनन्य उपासक एवं पक्के गुलाम बन गये हैं। आंख-कान बन्द करके इनके पीछे चलना हम अपना कर्तव्य मान बैठे हैं। यही कारण है कि इस 'विज्ञान' के युग में भी हमारी 'कूपमण्डूकता' दूर नहीं हो पाई है। हमने माना कि इन सामाजिक प्रथाओं और नियमों की भी किसी समय आवश्यकता होगी; परन्तु यह आवश्यक नहीं कि समय की प्रबल गति का कुछ भी ध्यान न रखकर हम अब भी उन्हीं—शताब्दियों पहली—प्रथाओं का पालन करते रहें। भला सांप के निकल जाने पर उसकी लकीर को पीटते रहना कहां की बुद्धिमानी है?

जाति और मतमतान्तरों की अधिकताओं और धार्मिक रूढ़ियों ने हमारे बीच में बड़ी विषम परिस्थिति उत्पन्न कर दी

हैं। और हमारी मानवी समानता को नष्ट कर के भेद-भाव अथवा भिन्नता की गहरी खाई बना दी है। इसी से हम सब एक होते हुए भी, एक-दूसरे से भिन्न है, पास रहते हुए भी दूर हैं और अपने होते हुए भी पराये बने हुए है। एक जाति दूसरी जाति को हीन समझती है—एक मजहब दूसरे मजहब को तुच्छ गिनता है। प्रायः सभी अपना बड़प्पन दिखाने के लिए अन्य जातियां और सम्प्रदायो मे अनहोने दोषों की उद्भावना करते है और दोष कहलाने वाली इन छोटी-छोटी बातो का विशालरूप देकर हमारे सामने रखते है। यह सब हमारी असमानता से उत्पन्न भेद--भावना का ही फल है। हमारी यह असमानता केवल विचारों तक ही सीमित नहीं है, वरञ्च हमारे नित्यप्रति के व्यवहार की बात बन गई है। पिशाचिनी की तरह हमारा पिण्ड न छोड़ने वाली "छूआछूत" और पारस्परिक कलह से हमारा सर्वनाश करने वाली "साम्प्रदायिकता" इसी असमानता के फल हैं। हमारी यह असमानता इतनी बढ़गई है कि हम मनुष्य को मनुष्य से ही नहीं वरञ्च पशु से भी गया बीता समझने लगे हैं। 'हिन्दू' कहलाने वालों में तो यह बात अपनी चरमसीमा को पहुँच गई है।

यह तो हुआ हमारी अवनति के कारणों का संक्षिप्त विवेचन। अब जिन बातों, गुणों अथवा उपायों से हम उन्नत बन सकते है—हमारा उद्धार हो सकता है, उन पर भी संक्षेप मे विचार किया जाता है। हमारे उद्धार के लिये नीचे लिखे गुणों की आवश्यकता है।

(१) शिक्षा—हमारे उद्धार के लिये सर्व प्रथम शिक्षा की आवश्यकता है। हमारे देश के ६० प्रति सैकड़ा मनुष्य ग्रामों में रहते हैं। इन ग्रामों मे शिक्षा का पूर्ण अभाव है इसलिये सबसे पहले गांवों मे शिक्षा प्रचार ज़रूरी है। इस ज़रूरत को पूरा करने के लिये प्रत्येक ग्राम में शिक्षा-मन्दिर स्थापित किये जाने चाहिए। ये शिक्षा-मन्दिर दो प्रकार के हों-एक दिन मे खुलने वाले और दूसरे रात को। अर्थात् ग्रामीण जनता की सुविधा के अनुसार दिन अथवा रात को शिक्षा दी जाय। हम अपने इस काम मे मन्दिरों और मस्जिदों से सहायता ले सकते है।

इन शिक्षा संस्थाओं में अक्षर-ज्ञान के साथ शारीरिक श्रम और हाथ के काम की शिक्षा को प्रधानता देनी चाहिए। हाथ के कामों मे ग्रामों के स्थानीय उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देना और उन्नत बनाना आवश्यक है। यहां पर यह भी बता देना होगा कि इन विद्यामन्दिरों मे सुयोग्य, अनुभवी, उत्साही, निःस्वार्थ, देशप्रेमी और आदर्श गुण सम्पन्न अध्यापक नियुक्त किये जांय।

हमारे उपर्युक्त कथनका अभिप्राय यह है कि हमे वह शिक्षा चाहिए जो सरल, जीवनोपयोगी, निःशुल्क और अनिवार्य हो। जो हमारी शारीरिक, मानसिक और मस्तिष्क-शक्तियों को विकसित कर सके, जो हमें अपने पैरों पर चलना सिखावे और हमारे देश तथा समाज को समृद्धिशाली बनाकर सुख-शान्तिमय जीवन व्यतीत करने योग्य बना सके। जिसके द्वारा हमारी आत्मा मे त्याग, संयम, विश्वास, स्वाभिमान, देशप्रेम तथा ...रिक सहानुभूति एवं सहयोग की सद्भावनाएँ उत्पन्न हों।

इस प्रकार की शिक्षा से शिक्षित होने पर ही हमारा उद्धार हो सकता है।

(२) स्वास्थ्य—हमारे देश में चेचक, हैजा, प्लेग, क्षय, इंफ्लुएँजा, मलेरिया आदि अनेक रोग घर बनाये बैठे हैं। देशके ८० प्रतिशत मनुष्य इनमें से किसी न किसी रोग से पीड़ित पाये जाते हैं। इन्होंने हमारे स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुँचाई है। यही कारण है कि संसार के अन्य देशों से हमारे देश मे मृत्यु संख्या अधिक और हमारी औसत आयु औरों से कम है।

हमे इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि हमारे सभी कार्य शरीर के द्वारा होते है। इसकी सहायता के बिना हम संसार में कुछ भी नहीं कर सकते, इसलिये शरीर को ठीक रखना हमारा प्रधान कर्त्तव्य है। शरीर नीरोग, हृष्ट-पुष्ट और शक्ति-सम्पन्न बना रहे—सभी अंग अपना-अपना काम उचित रीति से करते रहें—इन बातों को ध्यान मे रखते हुए, इनकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न भी करते रहना चाहिए। इसके लिये हमें शारीरिक रचना उसकी रक्षा के साधन और उपायों का साधारण ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त हमें यह भी मालूम होना चाहिए कि हमारे यहाँ रोग अधिक क्यों उत्पन्न होते हैं, वे कैसे फैलते है, उनसे बचने और उन्हे समूल नष्ट करने के क्या उपाय हैं? इस तरह की शिक्षा हमे बचपन से ही मिलती रहनी चाहिए और स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों के पालन तथा शरीर, वस्त्र, घर, ग्राम आदि की स्वच्छता में अभ्यस्त बना देना चाहिए। ऐसा होने से ही हम स्वस्थ एवं दीर्घजीवी होकर संसार में अपने जीवन को सफल बना सकेंगे।

(३) स्वाभिमान—हमें अपने देश, अपनी जाति और अपने पूर्वजों के--वीरता, पराक्रम, उदारता, मान-मर्यादा आदि-उत्तम गुणों का सच्चा गर्व होना चाहिए। इसी गर्व को 'स्वाभिमान' कहते हैं। यह स्वाभिमान हमें दब्बू बनने से बचाता है; गुलामी से हमारी रक्षा करता है और आत्म-निर्भरता तथा स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाता है। इसके द्वारा हम संसार में कुछ करके दिखा सकते हैं, अपने देश तथा समाज का उद्धार करने में समर्थ हो सकते हैं। यह हमारे मानव-जीवन में पथ-प्रदर्शक, रक्षक, शिक्षक और सहायक का काम करता है। इसके प्रभाव से हमारी दृष्टि सदा ऊँची रहती है-लक्ष्य उन्नत होता है और हमें अपना, अपने देश तथा समाज का प्रगति-पथ पर बढ़ते रहना ही अच्छा लगता है। संसार में क्या हो रहा है, उसका हम पर क्या प्रभाव पड़ेगा और हम उससे कैसे तथा क्या लाभ उठा सकते हैं? इन प्रश्नों पर विचार करना हमारे लिये आवश्यक हो जाता है। इसलिये स्वाभिमान की शिक्षा प्राप्त करना हमारे लिये बहुत ज़रूरी है। इसकी सच्ची शिक्षा संसार के आदर्श स्वाभिमानी व्यक्तियों के जीवन-चरित्रों के अध्ययन एवं मनन से प्राप्त हो सकती है और यही शिक्षा हमें उन्नत बना सकती है।

(४) स्वतन्त्रता—प्रत्येक देश, समाज और मनुष्य के लिये स्वतन्त्रता अनिवार्य है। यह उनकी आर्थिक, नैतिक और सामाजिक सभी प्रकार की उन्नति का मूलमन्त्र है। इसके बिना कोई भी देश, समाज अथवा व्यक्ति उन्नत नहीं हो सकता। यह [illegible]न्त्रता हमें अनेक गुण सिखाती है। स्वतन्त्र देशों के व्यक्ति

स्वाभिमानी, निर्भीक, उत्साही, स्पष्ट-वक्ता और आत्मविश्वासी होते हैं। वे किसीसे अपमानित होना या दबना नहीं जानते और अपनी आन, मान शान पर मर मिटना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। इसलिये यदि हम अपना उद्धार चाहते हैं तो हमें भी सामाजिक धार्मिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में स्वतन्त्रता प्राप्त करनी चाहिये। जब हमें अपनी शारीरिक शक्ति, मानसिक योग्यता और मस्तिष्क के विकास के अनुकूल व्यवसाय करने तथा विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता होगी तभी हमारा सच्चा उद्धार हो सकेगा। परन्तु यह ध्यान रहे कि हमारी यह स्वतन्त्रता, पशुओं की सी 'उच्छृङ्खलता' न होकर हमे एक सूत्रमें बांधनेवाली-एक लक्ष्य पर पहुंचानेवाली और पारस्परिक सहानुभूति एवं सहयोग सिखानेवाली होनी चाहिए।

(५) कर्तव्य और अधिकार-ज्ञान— हम जिस समाज, जाति अथवा देशमे रहते हैं, उसके साथ हमारा घनिष्ट सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध कभी नष्ट नहीं होता—आजीवन बना रहता है। इन सबकी उन्नति में हमारी उन्नति, इनके कल्याण में हमारा कल्याण और इनके सम्मान मे हमारा सम्मान है। इस नियम के अनुसार इनकी सब प्रकार की उन्नति का भार हम पर निर्भर रहता है। इसके सिवाय एक बात और है कि हम सब अपने समाज अथवा देशके अंग हैं। इनमें हमारा कोई न कोई स्थान अवश्य है। इस स्थान पर रहते हुए इनके प्रति हमारा कुछ न कुछ उत्तरदायित्व भी रहता है। शरीर, मन, आ
की शक्तियों के विकास के साथ समाज अथवा देश में ह
स्थान ऊँचा होता जाता हैं और स्थान की

हमारे उत्तरदायित्व में भी वृद्धि होती रहती है। इस उत्तर-दायित्व की वृद्धि के साथ हमारा कर्तव्य-क्षेत्र भी विस्तृत होता जाता है। इस कर्तव्य के अतिरिक्त समाज अथवा देशमें हमारे कुछ अधिकार भी नियत रहते है। कर्त्तव्यों के समान इनको भी जानना हमारे लिये आवश्यक है। अतः अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों के पालन में तत्पर रहना चाहिए।

(६) आत्म-त्याग—हम ऊपर कह चूके है कि समाज जाति और देशकी उन्नति के लिये हमे अपने कर्तव्यों और अधिकारों को जानना और पालन करना चाहिए। इन दोनों के पालन में आत्म-त्याग की आवश्यकता होती है। देश के हितों के सामने समाज विशेष को और सामाजिक भलाइयों के लिये व्यक्तिगत स्वार्थों को बलि चढ़ाना पड़ता है। इस प्रकार का त्याग किये बिना हम अपने समाज, जाति एवं देशका उद्धार करने में समर्थ नहीं हो सकते। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि देश, जाति और समाज के लिये अपने बड़े से बड़े स्वार्थों की परवाह न करें और निजी सम्मान धन आदि सर्वस्व न्यौछावर करने को कटिबद्ध रहें।

(७) आशा, कर्म और बुद्धिवाद—अभी तक हमारे देशमें 'भाग्यवाद' और 'अन्धश्रद्धा' का जोर रहता आया है। हम अपनी अवनति, क्षति, बीमारी आदि—सभी बातों में इनका आश्रय लेते आये है। वास्तव में ये ही बातें हमारी प्रगति में बाधक होती रही हैं। अब यदि हम उन्नत होना चाहते हैं-देश तथा समाज के उत्थान की आशा करते हैं, तो हमें जानना चाहिए कि संसार एक 'कर्म-क्षेत्र' है। हमारा जन्म यहां पर

कर्म करने के लिये ही हुआ है। अतः काम करते रहना हमारा मुख्य कर्त्तव्य है-प्रधान धर्म है। इसके विपरीत निराशा से पूर्ण आलस्यमय जीवन बिताना अधर्म है-घोर पाप है। इस सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए हमें अपने मनमें उच्च एवं महान् आशाओं को स्थान देना चाहिए और बुद्धि से उनके उचित अनुचित का विचार करके शरीर और मस्तिष्क की सहायता से उन्हें कार्य-रूप में परिणत करना चाहिए। कहने का अभिप्राय यह है कि हम निराशा को त्याग कर 'आशावादी' बनें; आलस्य से विमुख होकर 'कर्मवाद' का आश्रय लें और अन्धश्रद्धा के स्थान पर 'बुद्धिवाद' का अनुसरण करें।

(८) गुण-ग्राहकता—उन्नति चाहने वाले मनुष्य में इस गुण का होना अनिवार्य है। इसी गुण के सहारे मनुष्य अपने ज्ञान को व्यापक बना सकता है; उच्च आदर्श गुणों को सीख सकता है और अपनी उन्नति के साथ साथ अपने देश तथा समाज का भी उद्धार कर सकता है। गुण-ग्राही पुरुष किसी भी सम्प्रदाय, समाज अथवा देश से घृणा नही करता। उसे सर्वत्र गुण ही गुण दीख पड़ते हैं। वह सबकी उत्तम बातों को लेकर बुद्धि की कसौटी पर जाँचता है और संसार में अपने जीवन का ध्येय निश्चित करके उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है। ऐसे पुरुष की उन्नति अवश्यम्भावी है और ऐसे नर-रत्न जिस समाज अथवा देशमें हों उसके अहो भाग्य हैं। अतः अपना, अपने देश तथा समाज का उद्धार करने के लिये हमें गुण-ग्राही बनना चाहिए और उच्च, उत्तम एवं हितकारी शिक्षा कहीं भी मिलती हो उसे ग्रहण करने के लिए सदा तैयार रहना चाहिए।

(९) आत्म-विश्वास, धैर्य और दृढ़ निश्चय—मनुष्य में इन तीनों गुणों का होना आवश्यक है। उसके प्रत्येक कार्य में इनकी ज़रूरत होती है। इतना ही नहीं, वरन् प्रत्येक देश, समाज अथवा जाति की सब प्रकार की उन्नति इनके आश्रय पर ही अवलम्बित रहती है। जापान, जर्मन, इंग्लेंड, अमरीका आदि देशों के निवासी नित नये आविष्कार करते हैं, अनेक अनुसन्धान करते हैं और भाँति-भाँति के विस्मयजनक कार्य करके दिखाते हैं। स्थल पर दौड़ने वाली मोटर और रेलगाड़ी जल पर तैरने वाले जहाज़, हवा में उड़ने वाले वायुयान, बे-तार के तार, टेलीफ़ोन आदि जो अनेक यन्त्र दीख पड़ते हैं, वे सब उन के आत्म-विश्वास, धैर्य, और दृढ़ निश्चय के ही फल हैं। अतः हमें भी अपनी उन्नति के लिए अपनी शक्ति पर विश्वास-बल पर भरोसा करना चाहिये। कठिन से कठिन कार्यों में लग जाना, विपत्ति पड़ने पर धीरज से काम लेना और नयी से नयी समस्या उपस्थित होने पर भी पथ से न टलना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए।

(१०) पारस्परिक विश्वास, सहानुभूति और सहयोग—हम जिस जाति में जन्म लेते हैं, जिस देश में रहते हैं और जिस समाज में सम्मिलित होते हैं, उस देश, जाति अथवा समाज के मनुष्यों से हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। यही सम्बन्ध हमारे सब व्यापारों का मूल कारण, उन्नति का आधार और अस्तित्व का कारण है। इसके लिये हमें एक दूसरे का विश्वास करना चाहिए, सुख-दुःख में शामिल होना चाहिए और सब कामों में सहायता करते रहना चाहिए। ऐसा करने से ही हमारा यह समाज परिपुष्ट होकर चिरस्थायी बन सकता है और इसके

द्वारा हम अपनी, अपने देश तथा समाज की दशा सुधार सकते हैं।

(११) सार्वजनिक उत्सव—यों तो हमारे देश में उत्सवों की कमी नहीं है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी अपने-अपने उत्सव मनाते हैं। कोई होली–दिवाली पूजते हैं, तो कोई ईद और बड़े दिन की ख़ुशी मनाते हैं। फिर भी ये उत्सव समस्त भारत के न होकर भिन्न-भिन्न समाजों, सम्प्रदायों अथवा जातियों के ही माने जाते हैं। इसीलिये इनका प्रभाव-क्षेत्र देश-व्यापी न होकर संकुचित, सीमित एवं एकांगी है। इन उत्सवों के साथ ही अब हमें ऐसे उत्सवों की भी आवश्यकता है जो हिमालय से लेकर कुमारी अन्तरीप तक और सिन्ध तथा सीमाप्रान्त से आसाम तक–समस्त भारतवर्ष में समानता से मनाये जाँय और जिनमें हम सभी भारतीय–धनी-निर्धन, हिन्दू, मुसलमान, —ईसाई, पारसी आदि–अपनी वर्तमान भेद–भावनाओं को भुला कर सहर्ष सम्मिलित हो सकें।

(१२) राष्ट्रीयता—यद्यपि हमारा भारतवर्ष एक ही शासन सूत्र में ग्रथित है, फिर भी हम में एक देशीयता का अभाव है। इसके दो मुख्य कारण हैं। एक तो हमारे यहाँ जातियों और मत-मतांतरों की अधिकता है, दूसरे सम्पूर्ण देश बहुत से प्रान्तों और राज्यों में विभक्त है। चित्त की अनुदारता और विचारों की संकीर्णता ने इस प्रान्तीयता को और भी पुष्ट बना दिया है। हम पर इसका इतना गहरा रंग चढ़ा है कि जो प्रयत्न करने पर भी अभी तक दूर नहीं हो पाया। इससे छुटकारा पाने के लिये अब हमें अपनी राष्ट्रीयता को ध्यान में रखना चाहिए जो

बंगाली, मद्रासी अथवा हिन्दू, मुसलमान,
रूपों के स्थान पर अपने आपको विशेष व्यापक
हिन्दुस्तानी रूप में देखना और मानना चाहिए।
ही हम सब एक सूत्र में ग्रथित होकर अपनी
प्रेम को चिरस्थायी बना सकेंगे।

इस प्रकार जब हम अपने देश के
को शिक्षित बना देश की अज्ञानता को दूर कर सकेंगे,
उद्योग धन्धों को उन्नत बना कर भारत के जीवन-धन
तथा श्रम-जीवियों को आर्थिक-सामाजिक राजनैतिक--
दृष्टियों से शक्ति-सम्पन्न कर सकेंगे और उनके लिये
रक्षा के सब साधन उपस्थित कर हृष्ट-पुष्ट रहते हुए
जीवन व्यतीत करने योग्य बना सकेंगे, तभी हमारा सच्चा
हो सकेगा और संसार में कोई कार्य ऐसा न होगा जिसे हम
कर सकें। इस दशा में जीवन-संग्राम की विजय-श्री का हमारे
साथ होना अवश्यम्भावी है और वह समय दूर नहीं है जब
हम अपने पूर्व उन्नत गौरव-मय पद को प्राप्त कर संसार
सामने अनुकरणीय आदर्श जीवन का अनुपम उदाहरण उपस्थित
कर सकेंगे।

[illegible] , [illegible] जोधपुर के लिये कुं. [illegible]
[illegible] द्वारा श्री कुबेर प्रिंटिंग प्रेस, जोधपुर में
ता० १६-२-[illegible] को ११०० प्रतियाँ छपीं।